पक्षी

हमारे रोचक उपन्यास

पर्णा

लेखक
गोविन्दवल्लभ पन्त

१९५५
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य ४)

र
यूनीवर्सिटी ट्यू
काश्मीरी गे

दो शब्द

यह मेरा लिखा हुआ सत्रहवाँ उपन्यास है । दो अभी छपने में हैं। मैंने आज तक अपनी किसी पुस्तक की भूमिका नहीं लिखी। उसको मैं केवल एक रूढ़ि-पूजा मानता रहा, लेकिन भूमिका न लिखने से भी तो एक रूढ़ि बन गई !

आरम्भ से ही मेरा नाटक से प्रेम रहा । पढ़ना-लिखना छोड़ कर मैं एक नाटक-कम्पनी में भरती हो गया था । बाद को सिनेमा के चक्कर ने नाटक-कम्पनियों को समाप्त कर दिया और मुझे विवश होकर उपन्यास लिखने पड़े। मेरे एक आलोचक ने मुझे एक बार कोसा था कि मैंने अपने एक उपन्यास का कथानक पहले ही बना लिया था। आज भी मेरी वह दुर्बलता नहीं गई है । जोशुवा रैनल्ड के बारे में मैंने पढ़ा था वह पेंसिलिंग नहीं करता था । सीधे ही रंग उठाकर कैनवस के एक सिरे से दूसरे तक चित्र पूरा कर देता था । प्रयास कर ही रहा हूँ अभी।

प्रस्तुत उपन्यास का वातावरण मेरे नेवी के एक मित्र ने दिया था। कुछ तथ्य युद्ध के इतिहास से लिये गये हैं। दुर्बलताएँ सब मेरी हैं।

गोविन्दवल्लभ पन्त

रईस होटल, नैनीताल

नवरात्रि, पाँचवी रात, १९५५

लेखक के विषय में

उपन्यास-क्षेत्र में ही नहीं अपितु हिन्दी-साहित्य में श्री गोविन्द वल्लभ पन्त का एक विशिष्ट स्थान है। उनके लिखे "जल-समाधि", "मदारी", "अमिताभ", "यामिनी", "तारिका", "नूरजहाँ" आदि दर्जनों उपन्यास और "अँगूर की बेटी", " अन्तःपुर का छिद्र", वरमाला तथा "राजमुकुट" नाटक हिन्दी भाषा की स्थायी धरोहर बन गये हैं। आकर्षक शैली और भाव-विन्यास की अद्भुत क्षमता द्वारा पन्तजी किसी भी कथानक को सजीव बना कर पूर्णाकार में हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं।

आपको कई प्रान्तीय सरकारों तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा विभिन्न पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं।

प्रकाशक

कथा-क्रम

पर्णा

१

कर्णद्वीप का नागा

कर्णद्वीप निवासियों की भाषा में जो तांमिल का संसर्ग है, उसे देखकर यह पक्का विश्वास हो जाता है कि अवश्य ही उसका और भारत का बहुत पुराना सम्बन्ध है । फिर कर्णद्वीप का जो राजभवन है उसके भीतर तो हिन्दू-संस्कृति के साक्षात् दर्शन होते ही हैं ।

तंजोर में दसवीं शती का जो सुप्रसिद्ध शिव-मन्दिर है, उसमें इस मर्म का एक शिलालेख है—

> "प्रतापी चोल-सम्राट् राजराज की जय हो, जिन्होंने रोष-भरे सूर्य की किरणों से उद्भासित, समुद्र-मेखला से आवलित सिंहल द्वीप को पराभूत कर दिया । यही नहीं और भी दूर के द्वीपों पर अपनी प्रभुता विस्तारित की ....।"

इस शिलालेख को पढ़कर सहसा हमारा ध्यान कर्णद्वीप पर खिंच जाता है । हमें इस बात पर सन्देह नहीं रह जाता, सम्राट् राजराज द्वारा विजित सिंहल द्वीप से जो और दूरी पर के द्वीप हैं, उनमें कर्णद्वीप भी रहा होगा । सम्भव है कर्णद्वीप के गिरि-कांतारों में, गुफा-गह्वरों में छिपे और खोये शिला-मूर्त्तियों में कोई लेख या दूसरे प्रमाण इस बात के मौजूद हों ।

कर्णद्वीप की विचित्र भूमि—वह कई छोटे-बड़े द्वीपों का समूह, बीच-बीच में समुद्र की नीलिमा से विभक्त, नारियल और बाँस के सनातन हरित कुञ्जों से विशोभित भू-भाग, अवश्य ही अधिकार में रखने

की वस्तु होंगे। द्वीप के बीच में घनी छायाओं से भरे तरह-तरह के फल-फूलों से लदे ऊँचे-नीचे पहाड़, नदी-निर्झर और सरोवरों से मुखर धरती किसे आकर्षित न करती ?

सम्राट् राजराज केवल विजेता ही नहीं थे, उन्हें प्रजा के कर का इतना मोह न था जितना नाना प्रकार से उसे सुखी करने की लालसा। यह बहुत सम्भव है कर्णद्वीप के जंगली निवासियों को सभ्य और सुखी बनाने के लिए उन्होंने भाँति-भाँति के उपाय किये होंगे।

शासन करने के लिए भारत से सुयोग्य शासक, मन्त्रियों की परिषद्, कर्मचारियों का दल और तरह-तरह की सेना का बल भेजा होगा। शिक्षा-दीक्षा, सुरुचि-संस्कार के लिए सुयोग्य पंडित, धर्म-प्रचार, मन्दिर और मूर्त्तियों के निर्माण के लिए उपदेशक, कलाकार और कारीगरों के परिवार गये होंगे। इनके अतिरिक्त कुछ रोमांच की प्रेरणा पाकर, कुछ नये दृश्य और नया देश देखने की इच्छावाले भी तो।

कुछ अपने पारिवारिक कलह से मुक्ति पाने के लिए, कुछ अपने भाग्य की रेखाओं को बदलने के मतलब से, कुछ पैतृक सम्पत्ति व्यसनों में समाप्त कर, कुछ ऋण-दाताओं के तकाज़ों से बचने के लिए, और कुछ नई भूमि के नये वातावरण में अपने पुराने रोगों से छूटने की आशा में कर्णद्वीप की ओर गये होंगे।

धीरे-धीरे कई शताब्दियों तक यह सम्बन्ध बढ़ता गया होगा फिर धीरे-धीरे सारे सम्बन्ध कट गये। द्वीप के निवासी और भारतीय प्रवासी दोनों जातियाँ क्रमशः एक दूसरे में विलीन होती गईं। उनके रूप-रंग, आकृति-प्रकृतियों में ही एक नवीन सामंजस्य नहीं पैदा हुआ बल्कि उनकी भाषाओं ने भी एक नई ध्वनि धारण की।

इस सामूहिक सम्मिश्रण में राज-भवन के निवासियों ने योग नहीं दिया होगा। उनको अपने मान-संभ्रम की रक्षा के लिए यह स्वाभाविक ही था। इसी कारण उनका व्यक्तित्व, विचारणा, बोली और व्यवहार दूसरे द्वीप-निवासियों से बहुत-कुछ अलग ही रह गये।

कर्णद्वीप मुख्यतः तीन द्वीपों का एक समूह है । बीच का द्वीप विस्तार में बहुत बड़ा है। शेष दोनों उसके दाहिनी और बाईं ओर दो छोटे-छोटे कान की तरह से हैं । सम्भवतः इसी कारण उसका नाम कर्णद्वीप प्रसिद्ध हुआ हो। और भी इर्द-गिर्द कुछ छोटे-छोटे द्वीप थे। वे केवल चट्टानों के बने हुए और विस्तार में भी साधारण होने से नगण्य थे।

महासमुद्र द्वारा विच्छिन्न इन द्वीपों की एकता की साधना आदिम-निवासियों द्वारा ही हो गई थी । बड़े-बड़े पेड़ों को काटकर धरती पर गिरा उन्होंने उनका जोड़ लगाया था । बाद को भारतीयों के आगमन से अच्छे पक्के पुल बना लिये गये होंगे, उनके अवशेष बहुत काल तक दिखाई देते रहे।

बीच का द्वीप ही भारतीय उपनिवेश-स्थापना की प्राथमिक शताब्दियों में विशेष चहल-पहल का केन्द्र रहा होगा। ऐसे वहाँ चिन्ह मौजूद थे। कुछ ध्वंसावशेष विशाल निर्माणों के थे । बीच के ऊँचे पर्वतों से बहती हुई वहाँ उरा नाम की एक नदी थी जो चारों तरफ से घिरी हुई पहाड़ों की तलहटी में समुद्र से मिलने का प्रकट मार्ग नहीं निकाल सकी और वहीं पर एक सरोवर बनकर रह गई। उस सरोवर को भी उरा ही कहा जाता था।

उरा सरोवर के निकट ही कुछ गुफाएँ थीं, जिनमें विचित्र मूर्त्तियाँ भी बताई जाती थीं। पहले वहाँ बस्ती होगी, बाद को किसी भूचाल, अन्य दैवी प्रकोप या जंगली जानवरों के भय से वह स्थान उजाड़ हो गया। अब तो वहाँ बीहड़ जंगल है। मनुष्य की सारी कला-कारीगरी पर कई शतियों की मिट्टी जम गई और सूर्य ने जिस पर संहार-नृत्य कर दिया।

द्वीप में बड़ी वर्षा होती है, उष्ण कटिबंध में होने से गरमी भी प्रचुर परिमाण में है। इस कारण मनुष्य की उस बस्ती पर प्रकृति को अपना विस्तार बढ़ा लेने में कुछ भी समय नहीं लगा । अब वहाँ

के जंगल इतने घने हैं कि नीचे कोई औसत मोटाई का पशु इधर से उधर आसानी से नहीं जा सकता और ऊपर से सूर्य और चन्द्रमा की ज्योति पत्तियों से छनकर नीचे नहीं उतर सकती।

कर्णद्वीप के कुछ आदिम निवासी अब भी उसके पहाड़ों पर रहते हैं। अपने को सर्वथा उन्होंने द्वीप में आए हुए सभ्य संसर्ग से बचाकर रख लिया। वनमानुषों की भाँति बिल्कुल नंगे रहते हैं वे। मकान नहीं बनाते। अग्नि का कोई उपयोग नहीं करते। जंगली फल-फूल और कच्चा मांस ही उनका भोजन है।

उरा सरोवर के निकट की गुफाओं में कुल्लूटक नागा रहता है। बड़ा निर्भीक और हृष्ट-पुष्ट है वह। आयु का वार्धक्य उसके स्वास्थ्य पर जरा भी नहीं टूटा है। वह बिल्कुल नंगा रहता है। कमर पर मरे हुए मनुष्यों की हड्डियाँ पहने रहता है। उसे अतिभौतिक शक्तियों से सम्पन्न समझा जाता है। वह कच्चा-पक्का सभी तरह का मांस खाता है।

पहले वह इतने घने वन में नहीं रहता था। वह सभ्य था और सभ्यता से घृणा नहीं थी उसे। कर्णद्वीप में प्रस्थापित राजवंश के गुरुओं की परम्परा ही में था वह। किसी बात पर उसके मन में विरक्ति छा गई और एकांत में चला गया। उसके स्त्री-पुत्र थे, जो एक बार नाव में यात्रा करते समय तूफान में फँस गये और फिर उनका कहीं पता नहीं चला। कुछ लोग कुल्लूटक के वैराग्य का यही कारण बताते थे।

कर्णद्वीप के वर्तमान महाराज कुल्लूटक की विद्या और उसकी तन्त्र-साधना के कायल थे। वे ही क्या तमाम द्वीपवासी उसका बड़ा सम्मान करते और भय मानते थे। वहाँ के आदिम निवासी तो उसे साक्षात् देवता ही मानते थे। उन जंगलियों की भाषा कुल्लूटक समझता ही नहीं, उनसे बोल भी लेता था। इसी भाषा के सम्बन्ध से वे आदिम निवासी उस पर श्रद्धा रखते थे।

अगर कुल्लूटक के मन में आ गई तो वह बिगड़नेवाली बात भी बना देता था। दवा देने पर अक्सर बीमार अच्छा हो जाता था। अन्य

अर्धसभ्य द्वीपवासियों की कई तरह की पूजा-उपासना में भी वह योग देता था। कभी-कभी महाराज भी उसे बढ़िया वस्त्राभूषण पहनाकर अपने राजभवन में निमन्त्रित कर ले जाते थे। कभी जाता वह और कभी उरा की ऐसी भयानक गुफाओं में घुस जाता, जहाँ साँप और अन्य पशुओं के डर से कोई जा ही नहीं सकता था।

उसे अपने खाने-पीने की बिल्कुल चिन्ता नहीं रहती, उसके लिए वह कभी कोई उद्योग नहीं करता। कर्णद्वीप के आदिवासी उसके लिए मछली, पक्षी और दूसरे वन्य पशु मारकर ले आते। उसके खाने से जो बचता, उसे वह बाँट देता था। कभी संचय करने का मोह न होता था उसे। कभी द्वीप की दूसरी श्रमजीवी जातियाँ उसके लिए पका हुआ मांस और फल लाते, तो उसकी भी वैसी ही समाप्ति होती। जब कभी राजभवन से उसके लिए द्वीप में दुर्लभ भोजन और मिष्टान्न आता, तो वह उसे जीभ पर भी नहीं रखता, सब-का-सब बाँधकर अपनी गुफा को ले जाता और मछलियों को खिला देता।

किसी अवसर पर वह तालाब के किनारे खूब लम्बी-चौड़ी एक अग्निवेदी रचता। उसमें जंगल से काट-काटकर खूब लकड़ियाँ जलाई जातीं। जब खूब अंगारे लाल हो जाते तो कुल्लूटक सबसे पहले नंगे पैर उसके ऊपर से होकर जाता था। उसके बाद तमाम द्वीप के जंगली मनुष्य उसके ऊपर चलते, बड़ी शांति और धैर्य के साथ। वे जलते हुए उत्तप्त अंगारे अपना स्वभाव भूल जाते और किसी पैर को ज़रा भी क्षति नहीं पहुँचती थी।

महाराज को कुल्लूटक के इस प्रयोग के बारे में ज्ञान था। उन्होंने कई बार उससे उन्हें भी उसमें शामिल कर लेने की प्रार्थना की थी। वह कभी राज़ी नहीं होता और हमेशा बात टाल देता था, "आग पर भी कहीं कोई मनुष्य चल सकता है! पानी पर भी कहीं किसी के पैर जमे हैं?"

"विश्वास से सभी कुछ हो सकता है।"—महाराज बोले।

"किसके विश्वास से ?"—साधक कुल्लूटक ने पूछा।

महाराज ने चकराकर जवाब दिया, "साधक के।"

"तमाशा देखनेवालों को और भी अधिक विश्वास चाहिए महाराज, लेकिन तुम्हारी रानी को बिल्कुल भी नहीं है।"

"केवल मुझे ही उस यज्ञ में शामिल कर लीजिए।"

"नहीं राजन्, वह तुम्हारी अर्द्धांगिनी है।"

असल बात यह थी, कि महाराज कुल्लूटक के प्रति जितनी श्रद्धा रखते थे, रानी उतना ही उससे चिढ़ती थी। वह कुल्लूटक को एक भ्रष्ट अघोरी और मदिरा-मत्त समझती थी। जिन सिद्धियों के लिए वह प्रसिद्ध था, उन्हें रानी उसके अन्धे भक्तों का प्रचार समझती थी।

बहुत दिन की बात है जब कि महाराज कुल्लूटक को बढ़िया रेशमी वस्त्र पहनाकर अपने राजभवन में ले गये थे। उस के सरोवर में स्नान कराकर उसकी जटाएँ उन्होंने अपने हाथ से धोई थीं, उसकी कमर पर के सब हड्डियों के अलंकारों की जगह मोतियों की मालाएँ पहनाई थीं। पालकी में चढ़ाकर, दासियों ने मंगल गीतों से अन्तःपुर के द्वार पर उनका स्वागत किया था।

तब रानी इतना नहीं चिढ़ती थी उससे। महाराज की आज्ञानुसार उसने अपने हाथों से उन्हें अर्घ्य और आसन दिया। उनकी पूजा-अर्चना की और उनके सामने सोने-चाँदी के बर्तनों में भाँति-भाँति के भोजन-भोग उपस्थित किये। दासियाँ चारों ओर खड़ी थीं।

कुल्लूटक बड़ी जोर से हँसा, "महाराज कहाँ हैं ?"

रानी ने उत्तर दिया, "आप ही ने तो उन्हें यहाँ न आने को कहा है।"

भोजन के पात्रों में कुछ सूँघते हुए उसने कहा, "और वह कहाँ है ?"

रानी ने कहा, "क्या महाराज ?"

"अरे वही तो।"—कुल्लूटक बोला।

दासियों ने पूछा, "क्या महाराज ?"

"चुप रहो। तुम सब यहाँ से चली जाओ।"—कुल्लूटक ने आसव का पात्र ढूँढ़कर पिया।

दासियाँ सब जाने लगीं। रानी भी जाने लगी थी। कुल्लूटक बोला, "मुझे किसी चीज़ की आवश्यकता होगी तो कौन देगा। तुम यहीं रहो।"

रानी डरती हुई हाथ जोड़े खड़ी रह गई।

एकाएक कुल्लूटक बोला, "ओह बहुत गरम होता है तुम्हारे इस कारागार में।"

"महाराज, यह तो राजभवन है, कारागार नहीं। पंखेवाली दासियों को बुला दूँ।"

"नहीं, उनकी क्या आवश्यकता है ?"—कुल्लूटक ने यह कहते-कहते अपने अनभ्यस्त तमाम वस्त्र और अलंकार उठाकर अलग रख दिये।

रानी आँखों पर दोनों हाथ रखकर बेसुध भागी, "महाराज ! महाराज !"

कुल्लूटक अट्टहास कर उठ गया। महाराज ने बहुत मनाया उसे लेकिन न माना वह और अपनी गुफा को भागता ही चला गया।

२

निःसंतान राजा

बात ऐसी थी, कर्णद्वीप के महाराज निःसंतान थे । न जाने यह कैसा दैवी कोप था कि राजवंश में कोई भी निकट सम्बन्धी बचा नहीं रह गया था, कुछ दूर के थे जरूर रञ्जनगर के सरदारों में लेकिन वे द्वीप के आदिम-रक्त से बहुत मिल-जुल गये थे । इसलिए उनकी जरा भी इच्छा न हुई कि उनके यहाँ से कोई लड़का गोद लिया जाय ।

महाराज का कुल्लूटक नागा पर पक्का विश्वास था । उनका कहना था, अगर वे सच्चे मन से रानी को संतान का आशीर्वाद दे देंगे तो अवश्य ही उनकी गोद भर जायगी । लेकिन रानी के मन मे पहले ही कोई श्रद्धा नहीं जागी थी । फिर उस दिन निमन्त्रण की घटना से तो वह बिल्कुल उनका विरोध करने लगी ।

महाराज ने फिर एक दिन रानी से अनुनय-विनय की—"देखो रानी, काल दिन-रात हमसे हमारा वय-यौवन छीनता चला जा रहा है । पितरों की तृप्ति के लिए ही नहीं, यह कर्णद्वीप की प्रजा—इसके प्रति हमारा उत्तरदायित्व है । हमें इसको अनाथ नहीं होने देना है ।"

"तो मैं आपसे कह तो रही हूँ कि द्वीप की किसी सुन्दरी कन्या को आप वर लें । अनेक सुन्दरी कन्याएँ यहाँ मौजूद हैं ।"—रानी ने कहा ।

"नहीं, ऐसा नहीं कर सकता ।"

"यह आपका एक झूठा ही पाखंड है । जिस भारतवर्ष से आप यहाँ आए हैं, क्या वहाँ आप सर्वथा एक विशुद्ध जाति के थे ? नदी की भाँति मनुष्य की जातियाँ भ्रमणशील हैं । जिस तरह नदियाँ एक दूसरे में मिलती रहती हे, ऐसे ही जातियाँ भी तो । आदि काल में क्या इतनी ही जातियाँ बनाई गई थीं ? कभी नहीं । सभी धर्मवाले कहते

हैं—मानव का एक ही जोड़ा था । आबहवा के भेद ने ही किसी को काला-गोरा और पीला बनाया है । गरमी और ठंडक ने ही किसी को लम्बा और किसी को ठिगना कद दिया है ।"

"रानी, तुम्हारे इस कथन में मुझे कोई सन्देह नहीं है । एक हिसाब से देखा जाय तो हमारा यह द्वीप सदियों से बाहरी संसर्ग से विच्छिन्न है—यहीं एक खास उपजाति का आरम्भ हो गया है ।"

"तो मैं ढूंढ़ लाती हूँ अपनी सौत । राजा किसी भी जाति मे से कन्या ले सकता है ।"

"नहीं रानी ।"

"महाराज, मैं सच्चे मन से राजी हूँ । सौत के लिए ज़रा भी कोई विद्वेष मेरे मन के किसी कोने में नहीं है ।"

"इतनी सौम्य और सरलहृदया रानी को मैं कष्ट में नहीं डालना चाहता, सौत चित्र की भी भयानक होती है । फिर जब एक बड़ा सरल उपाय हमारे वश में है तो हम क्यों ऐसे विष के वृक्ष को अपने घर के भीतर लगावें ?"

"नहीं, नहीं, महाराज !"—रानी ने अपना हाथ बढ़ाकर महाराज के मुँह पर रख दिया, "आप फिर उसी पाखंडी नागा के पैर दबाने की बात कहना चाहते हैं । नहीं, नहीं उसका नाम न लीजिए मेरे सामने।"

महाराज ने रानी का हाथ पकड़ लिया, "तुम्हारी नारी-बुद्धि, तुम उस महान् आत्मा को नहीं पहचान सकतीं ।"

"अगर आप उसकी ऐसी झूठी तारीफें करेंगे तो मुझे कहना ही पड़ेगा, उसने अपने जादू से आपको विमोहित कर रखा है । वह अघोरी, वाममार्गी है । भूत-प्रेत उसके वश में हैं । महाराज, आप दिव्य देवताओं के सतोगुणी उपासक हैं ।"—रानी ने महाराज का हाथ पकड़ लिया, "नहीं, मैं अब आपको कभी उस चाण्डाल की गुफा में न जाने दूँगी ।"

"चुप रहो, चुप रहो रानी ! उनके प्रति ऐसे अपशब्द न कहो,

नहीं तो हमें अपनी रक्षा के लिए प्रायश्चित करना पड़ेगा।"

"कभी नहीं, वह कुछ नहीं कर सकता हमारा। मैं उस के सरोवर से नहर खुदवाकर उसकी गुफा में भर दूँगी ताकि वह अपने सारे सत्यानाशी जादू सहित उसी में समा जाय।"

"रानी, तुम्हें हमारे कल्याण के लिए उनसे ऐसे अपशब्द नहीं कहने चाहिएँ, किसी के लिए भी नहीं। क्योंकि किसी को गाली देकर मनुष्य अपनी ही आत्मा की मलिनता प्रकट करता है।"

"बुरे को बुरा और भले को भला न कहना दुर्बल मनुष्यों के लक्षण हैं।"

महाराज ने रानी की भावना में उस समय कोई संशोधन कर सकना असम्भव समझा, अतः उन्होंने प्रकरण बदल दिया, "रानी, हम इसी द्वीप में एक प्रकार से बंदी-से हो गये हैं। सुना है, हमारे पूर्वजों ने पूर्व के तमाम द्वीपसमूहों में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे।"

लेकिन रानी के मस्तिष्क में से कुल्लूटक का वह वीभत्स चित्र अभी तक हटा नहीं था। वह बोली, "महाराज, आप इस द्वीप के कैसे शासक हैं, एक बदमाश-गुण्डे को दण्ड नहीं दे सकते।"

महाराज ने फिर अपनी ही बात पकड़ी, "अमेरिका तक हमारे पूर्वजों के जलयान जाते थे। पूर्वजों की बात छोड़ो कर्णद्वीप का ही ग्रीस और रोम से सम्बन्ध था। जनश्रुतियाँ अभी तक चली आती हैं, हम उनके लिए यहाँ से मोती भेजते थे। इस बार एक जहाज़ मोल ले लेने की इच्छा क्यों न करें हम रानी?"

रानी फिर अपनी ही बात में दृढ़ थी, "उसमें सबसे पहले इसी वाममार्गी को सवार कराकर किसी दूर देश के जंगल में छोड़ दिया जाय।"

"नहीं, रानी उसमें हम नए-नए देशों की यात्रा करेंगे ताकि हमारी विचारणा विस्तार पावे, हमारा हृदय अधिक उदार हो।"

"और जब हम यहाँ द्वीप में लौटकर आवें तो अपने सब तालों की चाबियाँ दूसरों के हाथों में देखें और अपने तमाम अधिकारों पर

दूसरों के आसन पावें।"

महाराज ने फिर और कुछ बोलना उचित नहीं समझा इस सम्बन्ध में। उन्होंने कहा, "रानी पूर्वी कर्ण में आज एक पंचायत है। मुझे वहाँ जाना है। तुम भी चलो तो उन श्रमजीवियों का उत्साह बढ़ जायगा।"

कुछ विनीत होकर रानी ने कहा, "नहीं महाराज, आपने अप्रिय वर्णन से मेरे माथे में पीड़ा कर दी और अब इसी के भुलावे में यह सारी संध्या बीत जायगी।"

इसके बाद फिर महाराज चुपचाप वहाँ से पूर्वी कर्ण को चल दिये। द्वीप के पूर्वी भाग में पूर्व काल से ही सबसे अधिक मछुओं की आबादी थी। द्वीप के बीचवाले मुख्य हिस्से में जितनी भी रबर की खेती होती थी तथा पूर्वी कर्ण की सारी उपज पश्चिमी कर्ण में जमा होकर वहीं से देश-देशान्तरों को जाती थी। वहीं से साबूदाना और नारियल की भी निकासी थी। राज्य की आय का बहुत बड़ा अंश वहीं से जमा होता था।

पश्चिमी कर्ण में उन निर्यात में ढुलान करनेवाले श्रमजीवियों का गाँव था जिनका सम्बन्ध जहाजों से होता था। वहाँ तक ढुलान करनेवाले कुली बीच के द्वीप में ही रहते थे। पश्चिमी कर्ण में माल ढोनेवालों के सिवा हिसाब-किताब रखनेवाले मुन्शी भी सपरिवार रहते थे और राज्य के कर वसूल करनेवाले कर्मचारी भी।

वहीं महाराज का राजभवन था। उनके बड़े-बड़े कर्मचारी भी वहीं रहते थे। समुद्र के एक किनारे पर श्रमजीवियों का गाँव था और दूसरे किनारे पर बन्दरगाह। उसी बन्दरगाह पर महाराज के उपयोग का सामान बाहर से आता था। आयात-निर्यात का सम्बन्ध खासकर भारत ही से था।

कर्णद्वीप के दोनों कर्ण पुलों द्वारा आपस में संबद्ध थे। पूर्व और पश्चिमी कर्णों का सम्बन्ध सीधा नहीं था, वे बीच के द्वीप से होकर

ही आपस में जुड़े हुए थे । नावों या जहाजों के द्वारा जल के मार्ग से उनमें जो यातायात का सीधा संपर्क था वह कुछ घूमकर था इससे अधिकांश में स्थल के मार्ग का ही अधिक प्रचार था ।

पंचायत में थोड़ी देर अपनी हाजिरी देकर महाराज सीधे कुल्लूटक की गुफा में पहुँचे । वह उरा के तट पर कुछ जंगली मनुष्यों के साथ बैठा हुआ था । दूर ही से राजा की पालकी आते देखकर उस द्वीप के आदिवासी सब-के-सब ऊँचे पहाड़ों पर भाग गये ।

कुल्लूटक बोला, "क्यों महाराज, असमय में कैसे पधारे आज । तुम्हारी रानी तो असंतुष्ट हो गई हैं मुझसे । क्या उन्होंने ही अपनी प्रसन्नता का कोई संदेश भेजा है आज ?"

महाराज ने कुछ फल-फूल, मेवा-मिष्टान्न की थालियाँ अपने हाथ से उस तांत्रिक के आसन के निकट रक्खीं, "मैं आपका तुच्छ सेवक हूँ । बहुत दिन से आपके दर्शन नहीं हो सके थे, इसी से आज आया हूँ ।"

"रानी तो ठीक हैं तुम्हारी ?"

"वह मूर्खा है महाराज, उसे क्षमा कीजिए ।"

"वह मूर्खा कहाँ है, तुमने तो उसे बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ाई हैं ।"

"किताबों से क्या होता है, उसके मन में कोई प्रकाश नहीं है । वह तत्व को नहीं समझती, अंधविश्वासों में जकड़ी हुई है ।"

"क्या चाहती है फिर वह ?"

"महाराज, चाहना तो मेरी भी है । आप ही कहिए, हमारी मृत्यु अटल है । मरने के बाद कोई उत्तराधिकारी चाहिए ।"

कुल्लूटक हँसने लगा—"मैं तो समझता हूँ तू ही मूरख है और तू बदनाम करता है रानी को । अरे तेरे घर में रेडियो है और दुनिया के जहाज भी तेरे यहाँ आते हैं । इस घनघोर जंगल में रहने-वाला मैं तक इस बात को जानता हूँ ।" वह चुप हो गया ।

"क्या बात महाराज ? रेडियो तो खराब हो गया ।"

"अरे, अब दुनिया युवराजों के लिए नहीं रोती। तेरे तो भगवान् के घर से ही ठीक इंतजाम हो रहा है।"

"मैं नहीं समझा महाराज!"

"तेरी जो यह प्रजा है, इन सबको ही तू युवराज क्यों नहीं समझ लेता। खाली समझ का फेर है।"

"रानी किसी को गोद नहीं लेना चाहती।" "बड़ी जिद्दी है वह।..."

"फिर क्या करूँ मैं?"

"आप कोई आशीर्वाद दे दीजिए ताकि उसके संतान हो जाय।"

"मेरे कह देने से हो जायगी क्या?"

"हाँ महाराज, मेरा अटल विश्वास है।"

कुल्लूटक ने कुछ सोचकर कहा, "अच्छा तो मुझे इसके बदले में क्या देगा?"

"जो आप कहें।"

"देख भाई, मेरे भी कोई उत्तराधिकारी नहीं है। इस गुफा के भीतर मेरा जो राज्य है वह भी कुछ छोटा नहीं। एक-से-एक बड़ी मूर्तियाँ हैं यहाँ। तुम्हारी किसी की हिम्मत ही नहीं होती। मेरे मरने के बाद इसमें कौन रहेगा? मेरे कोई स्त्री भी नहीं। इसलिए अगर तू मेरी यह बात मान ले कि तेरे जो पहली संतान हो वह तू मुझे दे दे तो मैं तुझे आशीर्वाद दे दूँ।"

महाराज कुछ सोचने लगे।

"क्या फिकर में पड़ गया? अगर मेरे आशीर्वाद और मेरी विद्या से एक संतान हो गई तो फिर दूसरी भी हो जायगी।"

महाराज ने कुल्लूटक के पैर छूकर कहा, "यह सेवक तैयार है महाराज!"

"वादा करने को राजी है?"

"महाराज, मैं अपनी पहली संतान आपको देने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

"अच्छा ले," कुल्लूटक ने पाँच बादाम के दाने महाराज के लाये हुए सामान में से ही उठाकर हाथ में लिये और उन्हें अभिमन्त्रित किया। फिर महाराज को देकर कहा, "ये पाँच बादाम हैं, इन्हें एक-एक संतान के लिए रानी को खिला देना।"

महाराज ने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें स्वीकार किया और उनके चरणों का स्पर्श किया।

"अच्छा अब तुम जाओ, अँधेरा हो चला है।"

"महाराज, आपने मेरे भीतर-बाहर इस लोक और परलोक दोनों में उजाला कर दिया। अब अँधेरे का क्या भय?"—फिर कुल्लूटक के पैर छूकर महाराज विदा हो गये।

सेवकों ने दूर पर साथ लाई हुई मशालें जला ली थीं। महाराज पालकी में चढ़कर विदा हो गये।

२

पत्नी का योग

महाराज, कुल्लूटक के दिये हुए उन पाँचों बादामों को बड़े यत्न से छिपाये रहे। एकाएक रानी को दे देने से उसके मन में कोई संशय बढ़ जायगा—यह बड़ा भय था उनका। अपने कक्ष की एक ख़ास तिजूरी में ताले के भीतर रख दिये उन्होंने वे पाँचों बादाम।

एक दिन जब धरती पर नवीन वसन्त नये पल्लव और नये फूल खिलाने लगा; जब चेतना को काल के कराल भय से विमुक्त होकर धरती पर अपनी अमरता की प्रतीति हो जाती है; जब जीव ही नहीं वृक्ष-लता भी प्रकृति के सम्मोहन में अपने आदि-अन्त को भूल जाते हैं; जब शिशिर के जाल को काटकर सूर्य की सुनहरी किरणें जड़-चेतन सभी को फिर एक बार नवीन यौवन से चमका देती हैं; जब प्रत्येक ओट पर कुसुमायुध अपनी सार्वभौमिक विजय पर अट्टहास करता है। तभी उस दिन महाराज ने समझा कि यही उपयुक्त अवसर है। महारानी राजप्रासाद के उपवन में, नाना रंगों से उद्भासित फूलों की हरियाली में किसी कुंज में विश्राम कर रही थी। फूलों पर उनसे भी आकर्षक रंग पहने तितलियाँ नाच रही थीं। और पत्तों की आड़ से सुमधुर स्वरों में पक्षी कूक रहे थे।

महाराज ने चुपचाप अपनी तिजूरी में से उस तांत्रिक का दिया हुआ एक बादाम निकाल लिया और उसे लेकर उपवन की ओर चले जहाँ रानी प्रकृति के जादू में खोई हुई थी।

महाराज भी चुपचाप रानी के एक पार्श्व में बैठ गये। दासियाँ दबे पैर वहाँ से खिसक गईं। महाराज की आहट पाकर रानी उठ बैठी।

"क्यों महारानी, कितनी सुन्दर सुहावनी ऋतु है। मिट्टी के भीतर

ने यह कैसा चमत्कार जाग उठा है। क्या तुम भी यही सोच रही हो ?"

रानी बोली, "हो सकती है कुछ इसी से मिलती-जुलती बात ! मैं सोच रही हूँ, यह बार-बार अपनी कूक से सारे वातावरण को रंग देने वाली कोयल, यह क्या कहती फिर रही है ?"

"इसकी वाणी में कोई अर्थ न रहने पर भी इसके स्वरों से जान पड़ता है यह कुछ ढूँढ़ रही है।"

"लेकिन इसकी प्राप्ति के स्वर हमने नहीं सुने।"

"पा लेने पर फिर कौन पुकारता है ?"

"हाँ महाराज !"—रानी ने एक दीर्घ श्वास लेकर महाराज की गोद में सिर रख दिया।

महाराज ने सबसे उपयुक्त अवसर पाया। उन्होंने चुपचाप वह बादाम रानी के मुँह में दे दिया।

अचकाकर रानी उठ बैठी। उसने मुँह से वह बादाम निकालकर फेंक दिया पार्श्ववर्त्ती घास में—"थू-थू, राजन् ! क्या खिला दिया तुमने मुझे ?"

तांत्रिक के आशीर्वाद की ऐसी अवमानना महाराज को असह्य हो उठी। वे उस बादाम को ढूँढ़ने लगे बहुत उदास होकर।

रानी उन्हें चुप देखकर उनके पास गई और कहने लगी, "क्या ऐसी भारी निधि खो गई है तुम्हारी ?"

"तुम नहीं जानती हो।"

"सुनूँ भी तो क्या था ?"

"बादाम था। प्रसाद रूप में आया था देव-मन्दिर से।"

"मुझे क्या ज्ञात था ? मैं समझी आपने फिर वही कड़वी दवा की टिकिया मेरे मुँह में दे दी, जिसे सुबह मैंने मना किया था।"

महाराज हँसे, "रानी, ऐसे बलपूर्वक दवा खिलाने से कोई लाभ नहीं होता।"

"चलिए, नहीं मिलेगा कहाँ तक ढूँढ़ेंगे आप। मैं कहती हूँ क्या प्रसाद रूप में एक ही बादाम आया था ?

"नहीं और भी हैं।"—वे प्रसन्न हो उठे।

"फिर इसे जाने दीजिए। यह धरती माता के भाग्य का हो गया। आप और मँगा लीजिए।"—रानी ने दासी को पुकारा, "दासी!"

एक दासी दौड़ी हुई चली आई।

महाराज ने अभी तक उस बादाम की खोज नहीं छोड़ी थी। रानी बोली, "इस दासी से कहिए न यह ले आवेगी।"

"मुझे स्वयं ही जाना पड़ेगा।" कहकर महाराज चल दिये।

रानी ने दासी से कहा, "जा. चाय बन गई होगी, तू ले आ। उस बाँस के कुञ्ज के पास के सरोवर पर लाना।"

दासी चली गई और रानी भी वहाँ से उठकर आगे बढ़ गई। सरोवर के किनारे पर बैठने को मंच बने हुए थे। रानी वहाँ पर बैठ गई। सरोवर में दूर पर के नारियल के पेड़ों की छाया देखने लगी। उनके बीच से प्रस्फुटित आकाश! पानी में चलनेवाले हंसों के जोड़ों से बनते और टूटते हुए आवर्त्तों में रानी का मन एकाग्र हो गया।

महाराज को आने में कुछ देर लग गई। उन्हें मार्ग में एक मंत्री मिल गये।

दासी चाय की ट्रे ला रही थी। मार्ग में एक पत्नी उस खोये हुए बादाम को अपनी चोंच में दबाकर ले जा रहा था। एकाएक दासी के उसकी राह में आ जाने से वह डर गया और उसकी चोंच का बादाम उस चाय की ट्रे पर ही गिर पड़ा।

संयोग! बड़ी विचित्र रीति से जो मिले हुए को बिछुड़ा देता है और बिछुड़े हुए का मिलन करा देता है ऐसे संयोग को बार-बार नमस्कार है।

दासी ने चाय की ट्रे उपवन की चौकी पर रक्खी। रानी अपने स्वप्नों में से खिंचकर दासी की ओर आकृष्ट हुई, "महाराज नहीं आए?"

"मंत्री महोदय के साथ बातें कर रहे हैं। आज्ञा हो तो मैं जाकर

देखूँ।"

महारानी की मौन सम्मति पाकर दासी चली गई और रानी फिर एकान्त पाकर अपने दिवा-स्वप्नों में डूब गई। उसके मानस में फिर वही बादाम चक्कर काटने लगा—"देवता के प्रसाद की अवज्ञा कर क्यों थूक दिया मैंने उसे ?" उसी समय उसे ट्रे में पक्षी की चोंच से छूटा हुआ बादाम दिखाई दिया।

रानी की उपचेतना में ही उसका हाथ उधर बढ़ गया। उसने वह बादाम उठाकर मुँह में रख लिया। वह उसे चबाकर खा गई। अपने-आप प्रसन्न हो उठी। उसके मन का क्षोभ कमल के पत्ते पर पड़ी हुई ओस की बूँद की तरह हवा के एक ही झोंके से ढुलक पड़ा।

महाराज आ पहुँचे। उन्होंने रानी को बादाम देकर कहा, "लो रानी, मैं फिर यह प्रसाद ले आया हूँ। हम दोनों इस बार देवता से हाथ जोड़कर क्षमा माँग लें।"

"हाँ महाराज !"—रानी ने उस बादाम को माथे पर चढ़ाकर मुँह में रख लिया।

महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा, "महारानी, अब तो मेरा दृढ़ विश्वास है अवश्य ही हमारी चिरसंचित आशा परिपूर्ण होगी। तुम्हें भी ऐसा ही विश्वास बढ़ाना चाहिए।"

"हाँ महाराज !"—रानी चाय बनाने लगी।

"तुमने बड़े क्षीण स्वरों में ऐसा कहा। स्वरों की दृढ़ता ही हमारे विश्वास की दृढ़ता है। याद रक्खो, जो कुछ भी हमें प्राप्त है, वह सब हमारे विश्वास का फल है और जो नहीं मिला है उसमें हमारा ही अविश्वास है।"

दोनों चाय पीने लगे। रानी बोली, "महाराज, इस बार जो फूलों का उत्सव होगा उसमें मेरी एक प्रार्थना है।"

"हाँ रानी, उस उत्सव को हमें बड़ी उदारता से मनाना होगा, मैं समझता हूँ प्रत्येक द्वीप-वासी को निमन्त्रण देकर उसे भोजन से ही

तृप्त नहीं किया जायगा, हर एक को कुछ-न-कुछ उपहार भी देना होगा। तभी हमारी इच्छा पूरी होगी। देने ही से मिलता है।"

"मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है महाराज! लेकिन···"

महाराज समझ रहे थे रानी क्या कहना चाहती है। इसीलिए वे बराबर टालते जा रहे थे, "फूलों के उत्सव को अब एक ही महीना शेष है। मैं समझता हूँ उसके लिए बहुत सी चीजें हमें बाहर से मँगानी पड़ेंगी।"

"यह तो जो भी आप करेंगे, सर्व उचित ही है।" अन्त में रानी ने कह ही दिया, "लेकिन उसे उत्सव में नहीं बुलाया जायगा।"

महाराज चुप रहे। कुल्लूटक की वह विकराल मूर्ति उन्हें दिखाई देने लगी। भस्म-राग से पुती हुई उसकी देह में चमकती हुई दो लाल-लाल आँखें। कमर में हड्डियों के अलंकार। कानों में भी हड्डियाँ खोंसी हुई। हाथ-पैर और गले में भी उसी की मालाएँ।

महाराज को उसके साथ की गई प्रतिज्ञा याद पड़ी कि जो पहली संतान होगी वह उन्हें दे दी जायगी। वे घबरा उठे, सोचने लगे—'रानी के मन में उनके प्रति जब इतना विद्रोह है तो यह किस प्रकार उन्हें अपनी पहली संतान दे देने को राजी हो जायगी?' उनका चाय का प्याला चौकी पर रक्खा ही रह गया।

रानी ने महाराज को चुप देखकर उद्विग्नता प्रकट की। उसने फिर चिढ़कर कहा, "नहीं, नहीं, वह कदापि नहीं आने पावेगा हमारे राज-भवन की सीमा में।"

रानी ने किसी का नाम नहीं लिया था, पर महाराज को समझने में जरा भी शंका न रही। उन्होंने उस तांत्रिक का नाम खुलवाकर स्पष्ट करने में कोई चतुराई नहीं समझी। वे चुप-चाप रहे।

"चाय क्यों नहीं पीते?"

"नहीं महारानी, अब इच्छा नहीं है।"

रानी ने अब इस बार नाम खोलकर कहा, "महाराज, मैंने

अभी से कह दिया है ताकि कोई भ्रम न रहे। वह नंगा और लंपट, वह तमाम अमंगलों से भरा हुआ कुल्लूटक इस बार फूलों के उत्सव में नहीं बुलाया जायगा।"

"देखो रानी, नागा होना इस द्वीप की सभ्यता है, इसकी प्राकृतिकता है। भूमध्यरेखा के निकट का यह देश कितना उष्ण है। वस्त्र ठहरता ही नहीं अंग पर।"

"हम सब भी नागे ही हो जायँ?"

"हमारी दूसरी सभ्यता है। कर्णद्वीप के जंगलों और पर्वतों में जो जाति बसती है वह भी तो नंगी ही रहती है।"

"रहा करे, उसका हमारे साथ क्या सम्बन्ध?"

"अच्छा हमारी यह जो प्रजा है, क्या स्त्री क्या पुरुष, वे सभी अर्द्धनग्न हैं। कमर में पत्तों की एक मेखला पहन लेने से क्या होता है?"

"कुछ न होने से कुछ होना क्यों नहीं अच्छा है?"

"देखो रानी, एक आर्थिक कारण भी है। हमारे द्वीप में रुई की उपज के योग्य मिट्टी नहीं है। इस कारण यहाँ कपड़े का उद्योग नहीं पनपा। लेकिन मनुष्य जितना प्रकृति के संसर्ग में होगा, उतना ही स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहेगा। यहाँ की जंगली आबादी से हमारी अर्द्ध-सभ्य प्रजा दुर्बल है और उससे हमारे राजकर्मचारी और हम कमज़ोर हैं।"

"कुछ भी हो कुल्लूटक नहीं बुलाया जायगा। धर्म की आड़ में वह एक गुण्डा है।"

"देखो रानी, बिना समझे-बूझे तुम्हें ऐसे अपशब्द मुँह से नहीं निकालने चाहिएँ। कुल्लूटक इस द्वीप के बिना मुकुट के महाराज हैं। जंगली जाति के तो वे जीवित भगवान् हैं। अर्द्धसभ्य जातियों के प्रत्यक्ष देवता हैं और साथ ही हमारे कर्मचारी भी उन्हें बड़ा आदर देते हैं। अगर द्वीप के सबसे बड़े उत्सव में इस बार उनका अपमान हुआ तो उनके

अभिशाप से हमारी दुर्दशा तो होगी ही, समस्त द्वीप निवासी विद्रोही होकर हमारे राजभवन में आग लगाकर हमारी जीवित चिता बना देंगे।"

रानी घबराकर उठ गई और राजभवन की तरफ जाती हुई बोली, "महाराज, तब क्या होगा ?"

महाराज भी उसके साथ चलने लगे, "रानी, किसी से द्वेष करना उचित नहीं है। भय द्वेष को उपजाता है। केवल मात्र भगवान् को छोड़कर किसी का भय न करो।"

"फिर भी आप उसे राजभवन में मेरे सामने आने की आज्ञा न दें।"

"आज्ञा उनके ऊपर नहीं चल सकती। ऐसा हो सकता है, वे जहाँ आवेंगे, तुम वहाँ न जाना।"

४

रहन-सहन

वह छोटा-सा कर्णद्वीप ! अपने ही में निमग्न रहना पसन्द करता है। सभ्यता की ओर बढ़ने की कोई इच्छा नहीं उसे। उसका वह पर्वतीय सघन जंगलों से ढका भाग तो सभ्यता से घृणा करता है। विशुद्ध प्रकृति के संसर्ग में रहने का आदी है। उसे आदि प्रस्तर-युग का जीव समझिये। आग का उपयोग नहीं करता, न शरीर को किसी चीज़ से ढकने की ज़रूरत समझता है।

कर्णद्वीप को सभ्यता से मतलब नहीं था तो सभ्य संसार का भी उस पर क्या आकर्षण ? द्वीप का न तो कोई बहुत बड़ा विस्तार है, न वह किसी खनिज संपत्ति का धनी। कोई बहुमूल्य पैदावार भी नहीं है। अन्तर्जातीय राजनीति की युद्धक्षेत्रीय कोई विशेष स्थिति भी नहीं है उसकी। जलवायु की भी कोई महत्ता नहीं। इसी कारण सभ्य जगत की आँखें नहीं गड़ी थीं उस पर।

नौ-दस शताब्दी पहले की बात हम नहीं कहते। तब का उसका जो सभ्य-संसर्ग था वह धीरे-धीरे विलुप्त हो गया। अब केवल द्वीप की छोटी-सी आबादी में ही वह एक धूमिल पदांक-सा अवशेष रह गया है। छोटे-छोटे जहाजों द्वारा उसका अब भी भारत और समीप के देशों से व्यापारिक सम्बन्ध ज़रूर है।

द्वीप-निवासियों की जीविका का मुख्य साधन है नारियल। द्वीप-भर में उसके पेड़ों के जंगल भरे पड़े हैं। साबूदाना, पपीता, केला और सुपारी भी पैदा होते हैं। कुछ थोड़ी-सी खेती भी होती है। कुछ लोग मछलियों का शिकार करके भी अपनी जीविका चलाते हैं और कुछ लोग मुर्गियाँ पालकर भी। द्वीप में पहले मोती भी निकाला जाता था, पर

अब ऐसा कोई उद्योग नहीं। या तो मोती समाप्त हो गये या उन्हें निकालनेवाले गोताखोर।

विषुवत् रेखा के निकट होने के कारण आवहवा खूब गरम है और वे शीत के विरुद्ध पहनने की चिन्ता से बिल्कुल विमुक्त हैं। स्त्री-पुरुष कुछ पेड़ की पत्तियों को नारियल की रस्सी में गूँथकर कमर में पहन लेते हैं। दोनों का ऊपरी अंग खुला ही रहता है। सीपियों तथा दूसरे समुद्री जीवों की हड्डियों को गूँथकर नर-नारी अपने हाथ, पैर, गले, जूड़े और कमर को उनसे सजाते हैं। कभी-कभी मौसमी फूलों से भी अपना शृंगार करते हैं।

ऋतुओं का कोई विशेष परिवर्तन नहीं है वहाँ, न दिन-रात में ही कोई असमानता है। बारहों महीने एक-सा ताप-क्रम रहता है, और वर्षा होती है। एक-सी प्राकृतिक स्थिति होने के कारण शायद द्वीपवासी इतने रूढ़ि-प्रिय हैं। भारतीय सभ्यता का जो अंकुर यहाँ रोपा गया था, वह भी कुछ सदियों बाद अपना प्रभाव खोकर उसी में विलीन हो गया।

गरम जलवायु के कारण द्वीप के निवासियों में फुर्ती और उद्यम का अभाव है। स्वभावतः वे लोग आलसी हैं। आगे बढ़ने की न कोई चेष्टा, न कोई प्रेरणा, न किसी अन्य जाति का सम्बन्ध कि उन्हें देखकर प्रतियोगिता हो। कोई प्रयास नहीं, कोई आकांक्षा नहीं—ऐसा भी क्या जीवन? जड़ता और चैतन्यता में फिर अन्तर ही क्या रहा?

खाने को नारियल, कुछ अन्य फल, मुर्गी-मछली और अन्य वन-पशु। पहनने की कोई आवश्यकता ही नहीं। मनुष्य-जीवन की दो खास जरूरतों की यह दशा है, अब तीसरी बात रह गई घर की। अगर भूमि पर पानी-कीचड़, घास-फूस और जहरीले सरीसृप और कीड़े-मकोड़े न होते और आकाश निरन्तर सिंचन न करता रहता तो शायद वहाँ मकान नामक किसी वस्तु का भी अस्तित्व न होता। आप उन्हें मकान कहिए चाहे बड़े-बड़े घोंसले। कभी पेड़ों पर ही और कभी पेड़ों के तने भूमि पर गाड़कर बाँस या दूसरे पेड़ों की शाखाएँ बाँधकर

फ़र्श बना लेते हैं। सोती हुई अवस्था में नीचे न लुढ़क जायँ इसलिए जँगले बाँधकर अपना बचाव कर लेते हैं। पानी से रक्षा के लिए ऊपर पत्तियों से छाकर छत बना लेते हैं और कभी-कभी अगल-बगल से भी। मोटे रस्सों में गाँठें बाँधकर सीढ़ी बना लेते हैं। उसी की सहायता से उन घरों में चढ़ते या उतरते हैं।

आबादी के दो वर्गों का वर्णन इसमें नहीं है। एक वर्ग तो वह है—पहाड़ों पर रहनेवाली आदिम जाति का। पहाड़ों पर पानी बरसकर ठहरता नहीं। इसलिए उन्हें कीचड़ और पानी से बचने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती। ऊपर की वर्षा से वे अपना बचाव गुफाओं में कर लेते हैं।

दूसरा वर्ग है राजभवन और उसी से संलग्न नगर में रहनेवाले राजकर्मचारियों का। उनके निवासों में साधारणतया मिट्टी-पत्थर-लकड़ी ही नहीं लोहे का भी उपयोग किया गया है। भारतवर्ष और पूर्वी द्वीप-समूहों के साथ इसी वर्ग का सम्बन्ध है। जहाँ से वे अपने द्वीप की उपज भेजकर उन देशों की चीज़ों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

विशेषतया नारियल का वृक्ष ही कर्णद्वीप की मुख्य जनता का कर्त्ता, धर्त्ता और भर्त्ता है। कच्चा-पक्का नारियल उनका भोजन है। उसके कड़े खोल से वे कई तरह के बर्तन बना लेते हैं। बीच से काटकर कटोरे बनाते हैं और उनमें दस्ते लगाकर चमचे-कलछुल हो जाते हैं। नारियल के रस को सड़ाकर उसमें कुछ और चीज़ें मिलाकर एक तरह की मदिरा बना लेते हैं। स्त्री-पुरुष ही नहीं बच्चों के लिए भी उसे गुणकारी समझते हैं।

नारियल के झाड़ की रस्सियाँ बनाते हैं और बिछाने के उपकरण भी। उसके तने से मकानों का निर्माण होता है। पत्तों से चटाइयाँ बनाते हैं, पंखे और पिटारियाँ भी। मकान के फ़र्श की झिरियाँ भी उससे भरते हैं और उसी से छत भी छाते हैं। दीवालों में भी उन्हें बाँधकर धूप और वर्षा से रक्षा करते हैं।

स्त्री-पुरुषों की वेश-भूषा में अधिक अन्तर नहीं है। दोनों कमर से लटकता हुआ पत्तों का आवरण बाँधते हैं। नवयुवतियों का अधिक सुरुचि से महीन धारियों में कटा और बुना हुआ होता है। नृत्य और पर्वों के विशेष अवसरों पर तरह-तरह के रंगों का भी उपयोग होता है।

सिर के बाल दोनों लम्बे रखते हैं । नारियाँ अपने बालों को दो चोटियों में गूँथे रहती हैं । पुरुषों के एक चुटिया में गुँथे रहते हैं या बिल्कुल खुले पीठ पर लटकते हैं।

गले, हाथ, पैर, नाक-कान, सिर, कमर में सीपी, शंख और मूँगे के आभूषण पहने जाते हैं। नारियाँ अधिक सुरुचि, संख्या और बारीकी से उनका व्यवहार करती हैं ।

पुरुषों के कंधों पर तूणीर और धनुष उनके शौर्य का सूचक है। कमर से बँधी नारियल की मदिरा-भरी कुप्पी उनके रंग-विलास की प्रतीक है । गले में लटकता हुआ सुँघनी का सींग उनकी सुस्ती और अकर्मण्यता का प्रमाण।

पहाड़ों पर की जंगली आबादी का रंग अधिक श्यामतामय है, पर अर्द्धसभ्य जाति उतनी गहराई लिये नहीं है । शरीर की रेखाओं और मुख-नासा की काट में भी उनमें जो अन्तर है वह भारतीय रक्त के साथ शताब्दियों के सम्मिश्रण की साक्षी है । राजवंश और उसके साथ निकट सम्पर्क रखनेवालों ने अपने को बहुत बचाकर रक्खा है, ऐसा प्रकट होता है।

वे चकमक पत्थर से आग जलाते हैं। मांस पकाकर खाते हैं और भी अनेक प्रकार के शाकाहार को भी अग्नि में सिद्ध कर व्यवहार करते हैं । अधिक कष्टसाध्य तथा भयाच्छन्न परिश्रम के लिए पुरुष आगे बढ़ते हैं।

पेड़ों पर पुरुष चढ़ते हैं, जंगल में आखेट के लिए वे ही जाते हैं। छोटी-छोटी नावों पर चढ़कर मछली का शिकार भी वे ही करते हैं। मकान बनाने का उत्तरदायित्व भी उन्हीं पर है । खेती खोदना उन्हीं

का काम है जहाज़ और नावों पर माल ढोने के लिए भी वे हैं राज भवन में बेगार पर अधिकतर उन्हीं को जाना पड़ता है ।

नारियाँ छोटे-मोटे काम करती हैं, दिन भर परिश्रम में जुटी रहती हैं । नारियल के पेड़ और उसके फलों के विविध संस्कार, रस्सियाँ बटनी, चटाइयाँ बुननीं, खाना पकाना और खिलाना सब उन्हीं के काम हैं । पुरुष दौड़-धूप शौर्य-साहस का काम जरूर करता है, पर विश्राम और श्रान्ति के लिए कई-कई घण्टे लेकर अपनी कमी पूरी कर लेता है। रोगिणी और गर्भिणी के अतिरिक्त वहाँ नारी बहुत कम दिन में सोती है, पर पुरुष दिन का भी अधिकांश नाक बजाने में बिता देता है।

लोग सीधे-सादे, कम-से-कम आवश्यकताओं के आदी हैं। छल-कपट का नाम नहीं जानते । आपस में और राजा के साथ व्यवहार में सच्चे हैं । द्वीप के भीतर कोई सिक्का नहीं चलता । इसलिए धन की संग्रहणी नहीं है द्वीप में । राज-कर उपज में ही दिया जाता है। राजा जरूर अपने वैदेशिक सम्बन्धों में सिक्कों का व्यवहार करता है तथा कुछ राजकर्मचारियों का वेतन भी उन्हीं से भुगताता है, पर वे उसके अपने सिक्के नहीं हैं।

किसी वस्तु का संग्रह नहीं करते वे । प्रकृति के भंडार को अपना ही संग्रह समझते हैं। आगामी कल की कोई आवश्यकता नहीं है उन्हें। न कल को क्या खायँगे, इसका भय ही उन्हें सताता है। भूख लगने पर पेड़ों से फल तोड़ लाये, जंगल से शिकार मार लाये, या समुद्र से मछली पकड़ लाये । खाने की प्रचुरता से उनके आपस में कोई प्रति-द्वंदिता नहीं, इसलिए जीवन में कलह नहीं।

प्रकृति के साथ रहनेवाली जाति चिन्तामुक्त होती है । किसी का भय न होने से उनको किसी से घृणा भी नहीं होती। जीवन में समरसता थी वहाँ के निवासियों को, शायद यह प्राकृतिक एकता का वरदान हो।

एक से दिन-रात, एक ही-सा ताप और एक-सी वर्षा । सिक्के से विग्रह और असमानता पैदा होती है, उसका वहाँ नाम न था । पश्चिमी

कर्ण में जहाँ राजधानी और राजभवन था, वहाँ सभी कुछ था। छोटा बड़ा, ऊँचा-नीचा, धनी-निर्धन के सभी भेद वहाँ मौजूद थे। सापेक्षता से ही तो भिन्नता का विभ्रम फैल जाता है।

विग्रह की एक वस्तु नारी है। वह वहाँ रहस्य के रूप में नहीं थी। कोई चीज़ जितना छिपाकर रख दी जायगी, उतनी ही उसके लिए उत्सुकता बढ़ जायगी। नारी वहाँ प्रायः बिल्कुल अपने प्राकृतिक रूप में थी। इसलिए वह किसी के कौतूहल की वस्तु नहीं थी। उसकी गतिविधियाँ तमाम मार्गों पर सहज और अकृत्रिम थीं, इसलिए उसके प्रति किसी के मन में कोई कलुष भावना नहीं थी।

फूलों का उत्सव द्वीप का विशेष उत्सव था। वसन्त ऋतु में ही छः-सात दिन तक वह मनाया जाता है। फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को उस उत्सव का पारायण होता है। होली का त्यौहार समझिए इसे। प्रकृति के रचे हुए त्योहार हैं ये। मनुष्य के जीवन का स्वर प्रकृति के स्वर के साथ अपने-आप मिल जाता है। जब प्रकृति गाने लगती है, तो वह भी उल्लास में भर जाता है और जब प्रकृति सूर्य का दीपक बुझाकर सो जाती है, तो वह भी मुँह ढककर सो जाता है।

फूलों के उत्सव पर कोई द्वीपवासी कुछ काम नहीं करता। ताड़ी पीकर नाचते-गाते रहते हैं रात में बड़ी देर तक। खूब खाते-पीते और खिलाते-पिलाते रहते हैं। उत्सव के कई दिन पहले से मांस-मछली, फल-फूल एकत्र करते हैं।

कर्णद्वीप में उसके निवासियों का बहुत बड़ा गाँव है। वही सबसे प्राचीन भी है। गाँव के बीच में देवी-देवताओं के मन्दिर हैं। भूत-प्रेत आदि भयानकता की पूजा का प्रचलन अधिक है। पेड़ों के तनों को काटकर अजीब तरह की मूर्त्तियाँ बनाई गई हैं। कुछ मूर्त्तियाँ पत्थरों पर भी बनी हैं। वे बहुत पुरानी जान पड़ती हैं। कुल्लूटक की गुफा की मूर्त्तियों से इनका कोई साम्य नहीं है। उनमें मनुष्य की बड़ी स्पष्ट और सही कल्पना का प्रतिबिम्ब है।

द्वीप-वासियों में पितर-पूजा का खूब प्रचार है। देवताओं के साथ-ही-साथ पितरों की मूर्त्तियाँ भी स्थापित हैं। फूलों का उत्सव देव-मन्दिर से आरम्भ होता है, दूसरे दिन पितरों की प्रतिमाओं के आगे नाचते-गाते हैं फिर तीन-चार दिन गाँव में ही यह उत्सव मनाया जाता है। अन्त में पूर्णिमा के दिन पश्चिमी कर्ण में राजभवन में जाकर यह उत्सव अपनी चरम सीमा में जा पहुँचता है।

फूलों का उत्सव तभी होता है जब द्वीप में फूलों की प्रचुरता होती है, उसकी धरती तरह-तरह के रंगों से भर उठती है, उसके वायुमण्डल में एक मदिर सुवास प्रवाहित हो जाती है तभी उसके निवासियों के प्राणों में अटूट रागिनी फूट उठती है। उसके अंग-प्रत्यंग की तमाम चेष्टाएँ नृत्य में उल्लास पा जाती हैं।

फूलों के उत्सव पर द्वीप के तमाम निवासी नर-नारी अपने पर्णों के परिच्छद उतार देते हैं और उनकी जगह फूलों से अपने को सजाते हैं। कानों में फूलों के कर्णफूल, हाथ-पैरों में फूलों के कंकण-वलय, गले में मालाएँ और जूड़े में भी फूलों के गुच्छे सजाये जाते हैं।

देवताओं और पितरों की प्रतिमाएँ भी फूलों से ढक दी जाती हैं। रस्सियों में बँधे हुए फूलों से गाँव के तमाम घरों को घेर लेते हैं। चारों तरफ चलते-फिरते, नाचते-गाते फूल-ही-फूल दिखाई देते हैं सात दिन तक।

फूलों के उत्सव पर गाँव के तमाम विवाह सम्पन्न किये जाते हैं। विवाह की विधि बड़ी सरल है। वह वर और वधू के घर का उत्सव नहीं है, सारे समाज का पर्व है। वे नर-नारी जो आपस में विवाह करना चाहते हैं सबसे पहले देव-मन्दिर में जाकर पत्थर की मूर्त्तियों से आत्म-निवेदन करते हैं, फिर पितर से और फिर अपने माता-पिता से। बस विवाह हो गया। रात के सामाजिक भोज में सब नये विवाहित जोड़ों को अपना-अपना नाच दिखाना पड़ता है।

फूलों के उत्सव पर कोई अपने घर खाना नहीं बनाता। सारे गाँव

का खाना एक ही साथ बनता है। अंतिम दिन सबका आदर-सत्कार और भोजन सब राजभवन में महाराज के व्यय पर सम्पन्न होता है।

राजभवन में नए-नए प्रकार के भोजन तैयार किये जाते हैं। पूर्वी द्वीप-समूहों से खाने-पीने की सामग्रियां से भरा जहाज महीनों पहले से मँगाया जाता है। कॉफी और शराब का खूब दौर रहता है। एक चीज गोले, भात, गुड़ और कुछ दूसरी चीजों के मेल से बनती है वह फूलों के उत्सव का प्रधान खाद्य माना जाता है। द्वीपवासी उसे बड़े चाव से खाते हैं।

५

फूलों का उत्सव

फूलों के उत्सव का पहला दिन आया। रात ही तारों के रहते पूर्वी कर्ण में रहनेवाला मछुवों का सरदार जुफू जाग उठा। उसने गले में ढोल लटकाकर उसे पीटते हुए सारे गाँव की परिक्रमा की, सारी आबादी असीम उत्साह में भरकर जाग उठी।

जुफू के तमाम साथी, छोटे-बड़े कई तरह के ढोल और नगाड़े लेकर उसके पीछे हो लिये। कुछ के सिरों पर भोजन के पदार्थ थे और कुछ के पास शराब के बर्तन। आगे-आगे मशालवाले चले।

उनको जाता देखकर प्रत्येक झोंपड़ी में रहनेवाले बालक भी उनके साथ जाने की हठ करने लगे लेकिन माताओं ने उन्हें जंगली वनमानुष और भूत-प्रेतों का भय दिखाकर रोक लिया।

बाजे बजाते हुए वे लोग सबसे पहले देव-वाड़ी में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने मान्यता के हिसाब से देवताओं के आगे भोजन की सामग्री रक्खी और शराब का अर्घ्य दिया। इसी समय गाँव का मुखिया वासो भी बाजे-गाजे, खाने-पीने के साथ अपने दल को लेकर वहाँ उनसे मिल गया।

फिर दोनों दल एक साथ पितरवाड़ी में गये। वहाँ सबने पितरों को भी खिलाया-पिलाया। इसके बाद सुबह होते-होते वे लोग कुल्लूटक की गुफा में पहुँचे।

उरा सरोवर के किनारे साबूदाने के पेड़ों से घिरे हुए एक स्थान पर उस तांत्रिक की धूनी थी। सूर्योदय से पहले सरोवर में स्नान कर वहाँ पर वह अपनी कुछ क्रियाएँ किया करता था। लेकिन वहाँ आज उसका पता नहीं था। जुफू, वासो और उनके साथी उरा के किनारे-किनारे

कुछ ऊपर पहाड़ों पर भी उसे ढूँढ़ आये, लेकिन कहीं पता नहीं मिला।

जुफू ने निराशा के स्वर में कहा, "बड़े आश्चर्य की बात है, गुरुदेव कहाँ गये ?"

वासो बोला, "सम्भव है गुफा के भीतर ही हों।"

जुफू ने उत्तर में कहा, "इस समय वे वहाँ कभी नहीं रह सकते। बादल भी हों तो क्या ? सूर्योदय और सूर्यास्त के समय वे सूर्य के साथ अपनी कोई सन्धि मिलाते हैं। हम-तुम इस बात को नहीं समझ सकते। बड़े-बड़े नहीं समझ सकते भाई। गुरुदेव की हर एक बात निराली है।"

गाँव का मुखिया वासो निराशा के स्वर में बोला, "तब क्या होगा भाई, बिना उनके हमारा यह फूलों का उत्सव कैसे आरम्भ होगा ?"

जुफू कहने लगा, "उन्हें शायद यह मालूम न हो कि हमारे त्यौहार का आज पहला दिन है।"

"उन्हें सब मालूम रहता है। तुम्हारे कहने के मुताबिक सूर्य के साथ ही निरन्तर दिन-रात जिसका स्वर मिला हो, उसे यह खबर न हो ? मैं तो समझता हूँ, वे बीमार पड़े हैं कहीं गुफा के भीतर। चलो एक बार ढूँढ़ क्यों न लें।"

साथियों पर जब यह बात प्रकट की गई तो वे डरकर बोले, "उसके भीतर घुसते हुए हमारे प्राण काँपते हैं। गुप्प अँधेरा है वहाँ और सुबह हो जाने के कारण हमने मशालें बुझा दी हैं।"

जुफू ने कहा, "गुफा के द्वार पर ही अँधेरा-सा जान पड़ता है। भीतर जाकर उजाला है।"

चकमक पत्थर की मदद से मशालें जला ली गईं, लेकिन फिर भी गुफा के भीतर जाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। अन्त में सबकी राय हुई, "गुफा के द्वार पर बाजे बजाये जायँ, अगर वे गुफा के भीतर होंगे तो आवाज़ सुनकर बाहर आ जावेंगे।"

कुछ देर बाद गुफा के भीतर से तो नहीं, बाहर किसी झाड़ी में से छिपे हुए गुरुदेव बाहर निकल आये और बोले, "नहीं, मैं नहीं आ

सकता तुम्हारे साथ ।"

जुफू और बासो दोनों ने कई बार दंडवत की उसके चरणों का स्पर्श किया। जुफू बोला, "गुरुदेव, यह हमारे साल का पहला त्यौहार, है अगर आप चलकर इसे पवित्र न करेंगे तो हमें साल भर तक बराबर तकलीफ़ रहेगी ।"

बासो ने कहा, "हमारी याद में हमें ऐसा कोई वर्ष याद नहीं पड़ता जब आपने हमारे त्यौहार में हमारा साथ न दिया हो ।"

"लेकिन अब नहीं, अब तुम अपने राजा के पास जाओ, वही मेरा आना पसन्द नहीं करता। मेरी जगह में अब उसी की पूजा करो।"

जुफू बड़े क्रोध से बोला, "आपकी जगह में उसकी पूजा ? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। सूर्य को छोड़कर हम मशाल की पूजा करें।"

"उसकी रानी ने राजा से कहा है कि मुझे न्यौता न दिया जाय। तभी तो वह अभी तक आया भी नहीं।"

बासो बोला, "हम उसके राजमहल में आग लगा देंगे।"

जुफू चिल्लाया, "साथियो !"

तमाम मछुओं ने अपनी-अपनी मुट्ठियाँ आकाश में उछालकर कहा, "राजा के लिए मौत !"

जुफू ने अपने अनुचरों की तरफ़ हाथ उठाया, "और तुम ?"

सब गाँववाले बोल उठे, "राजा के लिए मौत !"

इसी समय कुल्लूटक ने दूर पर कुछ सुना और वह एक पेड़ पर चढ़ गया। वहाँ पर से उसने दूर तक देखा फिर नीचे उतरकर बोला, "नहीं, नहीं, राजा अच्छा आदमी है, वह मुझे न्यौता देने आ रहा है। तुम सब अपने-अपने लफ़्ज़ वापस लो।"

बासो बोल उठा, "महाराज की जय हो !"

सब मछुओं ने दुहराया, "महाराज की जय हो !"

जुफू ने भी कहा और उसके साथी भी चिल्ला उठे, "महाराज की जय हो !"

अब तो सबको निकट ही साफ़-साफ़ मशक बीन, बाँसुरी और ढोल का बाजा सुनाई देने लगा। तांत्रिक की गुफा से दूर पर ही महाराज पालकी पर से उतर गये। वहाँ से पैदल ही चले। उनके पीछे उनके मन्त्री, कर्मचारी और जहाजों के पल्लेदार थे। सबके अन्त में बाजेवाले थे।

महाराज के हाथ में एक धनुष-बाण था, वह फूलों से सजाया गया था। उसे द्वीपवासी सृष्टि का धनुष कहते थे। फूलों के उत्सव के आरम्भ में हर साल महाराज सृष्टि का धनुष कुल्लूटक को समर्पित करते थे फिर उत्सव के अन्तिम दिन वह राजा के कोष में जमा कर लिया जाता था।

महाराज के पीछे उनके मन्त्रियों के हाथों में गुरुदेव के लिए एक रेशम की धोती और फूलों की मालाएँ थीं। उसके बाद कर्मचारियों और खलासियों के सिर पर तरह-तरह के खाद्य-पदार्थों की टोकरियाँ थीं और थे शराब के बर्त्तन।

महाराज के आ जाने से वह शून्य जंगल रंजित और मुखरित हो उठा। जुफू और बासो के मन में जो निराशा थी, वह धुल गई। उनके साथियों के चेहरे पर उत्सव की उमंगें चमकने लगीं।

कुल्लूटक एक ऊँचे शिलाखण्ड पर बैठ गया। उसकी पीठ के सहारे बड़े प्राचीन वट का तना था। उसके ऊपर उसकी चौड़ी पत्तियों की अविच्छिन्न छाया। उसके एक ओर शराब का घड़ा और गिलास लेकर जुफू खड़ा हो गया, दूसरी तरफ़ राजभवन से आए हुए खाद्य-पदार्थ लेकर बासो।

तीनों दलों के लोग नीचे भूमि पर बैठ गये और तीनों जगहों के बाजे बजने लगे। इतने में धोती, फूलों की मालाएँ और फूलों का धनुष-बाण लेकर महाराज उसी शिलाखण्ड पर चढ़े जहाँ वह नंग-धड़ंग कुल्लूटक विराजमान था। महाराज ने उसके पैरों का स्पर्श किया, फिर दोनों हाथ जोड़कर बोले, "हे गुरुदेव, आपका निरन्तर आत्मा में

अधिवास है। आत्मा नर और नारी इन दोनों पहचानों से विमुक्त है। इसलिए आप उनके बीच में कोई पर्दा नहीं मानते। हमारे मन और नज़र दोनों में मैल है, हमारी मिट्टी में ममता है इसीलिए हमने पर्दा डालकर अपने को प्रकृति से अलग कर लिया है। इस फूलों के उत्सव में सात दिन तक आप हमारे बीच में रहेंगे तभी हम आपको अपना पाप पहनाकर ले जाते हैं।"

कुल्लूटक हँसता हुआ खड़ा हो गया। महाराज ने उसे धोती पहनाकर उसके ऊपर उसकी कमर में फूलों की मालाएँ बाँधीं। कुछ भुजाओं और गले में भी पहनाईं। फिर उसके हाथों में वह फूलों का धनुष-बाण दिया और पैर छूकर बिना उसे पीठ दिखाए नीचे उतरकर अपने साथियों में जा मिले।

कुल्लूटक ने जुफ़ू के हाथ से शराब का घड़ा लिया और उसे मुँह से लगाकर दो-चार घूँट पिये। फिर कुछ मेवे-मिठाइयों में से उठा मुँह में रखकर दोनों को विदा कर दिया। बाजे बन्द किये गये।

गुरुदेव की जूठी की हुई शराब बाकी सब घड़ों में छोड़ी गई और तमाम लोगों ने ख़ूब छककर पी। इसके बाद प्रसाद बाँटा गया। फिर बाजे बजने शुरू हुए।

महाराज की पालकी वहाँ लाई गई और उसमें कुल्लूटक विराजमान हुए। आगे-आगे पालकी, फिर महाराज और दूसरे लोग चले। सबने देव-बाड़ी की परिक्रमा की और फिर पितर-बाड़ी की।

इसके बाद महाराज अपने साथियों को लेकर राजभवन को चले गये और बाकी लोग गाँव में। कुल्लूटक के लिए वहाँ एक ख़ास मकान बनाया गया था, गाँव के बीच में। समस्त द्वीप की नारियाँ फूलों से सजी हुई गुरुदेव के स्वागत के गीत गाने लगीं।

गुरुदेव पालकी से उतरे और सीढ़ी द्वारा ऊँचे लट्ठों पर बने हुए अपने कुटीर में सुशोभित हुए। गाँव के ख़ास-ख़ास स्त्री-पुरुष उनकी सेवा-टहल में नियुक्त हुए। उन्हें खिला-पिलाकर सब अपने सामाजिक

भोज के उद्योग में लगे।

थोड़ा-बहुत खा-पीकर सब लोग रात की दावत के लिए खाना बनाने लगे। कोई पानी भरने लगा, कोई चूल्हा जलाने और लकड़ियाँ चीरने में लगा, कोई पत्ते तोड़कर पत्तल बनाने में नियुक्त हुआ, कोई मांस काटने, कोई साग-सब्जी में और कोई नारियल तोड़कर उन्हें पीसने लगा।

कुछ लोग खाना पकाने के काम में लगे। कुछ भूमि में गाड़े गये शराब के मटकों की छान-बीन में। कुछ लोग इधर-उधर के गाँवों में किसी कमी को पूरा करने के मतलब से दौड़-धूप करने लगे। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी किसी-न-किसी काम में जुटे थे। उत्सव की खुशी से शायद ही कोई ऐसा बीमार होगा, जो शय्या में पड़ा होगा।

रात को उस विशाल सामाजिक भोज के हो जाने के बाद अचानक कुल्लूटक की कुटिया के नीचे द्वीप की कई नवयुवतियों के रोने के स्वर सुनाई दिये।

ऊपर से कुल्लूटक बोला, "ऐसे मंगलमय उत्सव के अवसर पर तुम रोनेवाली कौन हो?"

"हम हैं द्वीप की नवांगनाएँ। आपके पास न्याय के लिए आई हैं।"

"क्या कष्ट है तुम्हें?"

"द्वीप के कितने ही नवयुवकों ने हमारी नींद और भूख चुरा ली है।"

"पकड़ लाओ उन्हें अभी!"

शायद वहीं खड़े थे वे नवयुवक। प्रत्येक नवयुवती एक-एक नवयुवक का हाथ पकड़कर ले आई।

कुल्लूटक ने पूछा, "तुमने क्यों इनकी नींद चुराई है?"

नवयुवकों ने उत्तर दिया, "महाराज, हमने इनकी नींद के लिए अपने-अपने माता-पिताओं से अलग होकर एक-एक झोंपड़ी बनाई है।"

बालाओं ने कहा, "वे बहुत ऊँची हैं और उनमें ऊपर जंगले नहीं बनाये गये हैं। हम नारियों को संतानवती हो जाने पर हमारे लिए वे कष्टकर न हो जायँगी ?"

नवयुवकों ने कहा, "कर्णद्वीप में बरसात का बड़ा कष्ट है। इसी से उन्हें ऊँचा और हवा के लिए खुला बनाया गया है। हम उनमें सीढ़ियाँ लगा देंगे और उन्हें बन्द कर उनमें खिड़कियाँ बनवा देंगे।"

कुल्लूटक ने सहमति दी, "ठीक तो है।"

नारियाँ बोलीं, "फिर हमारी भूख के लिए ?"

पुरुषों की ओर से कहा गया, "हम सबने जाल-वंशियाँ ही नहीं बड़े-बड़े पेड़ों के तने काटकर छोटी-छोटी डोंगियाँ भी बना ली हैं। हमने एक-एक भाले और धनुष-बाणों का संयोग भी कर लिया है। ये उन कुटियों में चलें तो सही। हम खाने-पीने की चीजों के ढेर लगा देंगे। लेकिन खाना पकाना इन्हें ही पड़ेगा।"

नवयुवतियों ने कहा, "हमें खाना पकाने से इन्कार नहीं है। पर उन लकड़ी और घास-पात की झोंपड़ियों में हम बरसात में कैसे पकाएँगी ?"

नवयुवक बोले, "हम उन कुटियों के फ़र्श में पत्थर बिछा देंगे और दीवारों पर मिट्टी पोतकर उन्हें सुरक्षित बना देंगे। तुम चलो तो सही। धीरे-धीरे सब कुछ हो जाता है।"

नवयुवतियों ने परम उल्लास में भरकर पूछा, "महाराज, हम चली जायँ ? इन लोगों का विश्वास कर लें ?"

"हाँ-हाँ बड़ी खुशी से।"—कर्णद्वीप का वह तांत्रिक बोला।

जितने नवयुवक थे, उतनी ही नवयुवतियाँ थीं। एक-एक ने एक-एक का हाथ पकड़ा। हर एक के हाथ में गोले-भात और गुड़ का लड्डू था। आधा एक ने खाया और जूठा दूसरे को दिया।

ऊपर से तांत्रिक ने आशीर्वाद दिया, "सुखी रहो, सम्पन्न रहो! आज से तुम्हारा पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थिर हुआ। आज से तुम

एक दूसरे के सुख-दुख के साथी बनें।"

कर्णद्वीप के निवासियों के विवाह की यही रीति थी।

बाजे बज उठे! और नवदंपति नाच उठे उत्सव, विवाह और मदिरा के उत्साह में! वे ही नहीं, उनके साथ नाच उठी सारी द्वीप की आबादी। चेतना के साथ जड़ता भी, नरों के साथ गिरि और नारियों के साथ सरिताएँ भी। पुरुषों के साथ वृक्षों के तने और स्त्रियों के साथ शाखाएँ भी।

ऊपर से स्निग्ध चन्द्रमा की चाँदनी झर रही थी और नीचे सैकत के सुमसृण कण! रात भर उस उन्मत्त नृत्य में वह द्वीप प्रतिध्वनित रहा!

इसी प्रकार अन्तिम दिन आया। उस दिन का सारा भार महाराज के व्यय पर रहता था। रानी को किसी तरह महाराज ने राज-प्रांगण तक ले आने के लिए मना लिया था। महल के भीतर रानी के अन्तःपुर में अगर उनका प्रवेश हुआ तो रानी ने ऊपर से कूदकर प्राण त्याग देने की धमकी दे दी थी।

कुल्लूटक की सवारी नियत समय पर राजप्रासाद में पहुँची। प्रांगण में एक ऊँचे मंच पर बिठाकर उनका स्वागत किया गया, जैसा हर साल किया जाता था।

कुल्लूटक ने इधर-उधर देखकर कहा, "लेकिन हे राजा, आज तुमने इतने पर्दे और कनातें क्यों लगा दी हैं? मुझे किसी से छिपाया गया है, या किसी को मुझसे?"

राजा ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज सब कुछ जानते हैं, फिर झूठ बुलवाकर क्यों मुझे मूर्ख बनाते हैं? मेरा अपराध क्षमा कीजिए और आशीर्वाद दीजिए।"

"मैंने तुझे पाँच आशीर्वाद दिये हैं। जिस तरह तुझे किसी उत्तराधिकारी की जरूरत है ऐसे ही मुझे भी तो है। तेरे काम मैं नहीं और मेरे कामों को तू नहीं कर सकता। तू तो द्वीपवासियों से मजे में कर

उघाकर आनन्द करता है। पर मुझे बिना कर लिये ही इनके सैकड़ों काम करने पड़ते हैं। बता फिर मेरे मरने के बाद कौन होगा इन बातों का जिम्मेवार ?"

"महाराज !"—धीरे-धीरे राजा बोला, "मैंने पहली संतान आपको दे देने की पवित्र प्रतिज्ञा की है। अगर मैं झूठ बोलूँगा तो क्या आपकी क्रोधाग्नि से कहीं बच सकूँगा ?"

हँसकर कुल्लटक ने कहा, "अच्छा, अच्छा, तेरी रानी की तबीयत तो ठीक है न ? मेरा दिया प्रसाद खिला दिया तूने ?"

खोए और घृणा से फेंके गये उस पहले बादाम का दृश्य खुल पड़ा था महाराज के मन में। उसी उद्विग्नता में उन्होंने कहा, "हाँ महाराज !"

"लेकिन तुझे चिन्ता क्या हो गई ? खोता कुछ नहीं है। लौट-फिर कर सारा पानी फिर समुद्र में ही चला जाता है। खाना तैयार हो गया द्वीपवासियों के लिए ?"

"हाँ महाराज !"

"खिला-पिला फिर सबको, मैं तो सबके अन्त में खाऊँगा।"

"नहीं महाराज, जब आप पावेंगे, तभी तो दूसरों को प्रसाद मिलेगा।"

"कौन खिलावेगा मुझे ?"

"मैं जो हूँ आपका सेवक।"

"नहीं, प्रत्येक फूलों के उत्सव में तेरी रानी के हाथों से खाया करता हूँ मैं। आज वह इन पर्दों में मुझे ढककर खुद छिप गई है। तुम एक नई रीति चलाते हो तो मैं दूसरी।"

महाराज ने कुछ खिन्न होकर कहा, "महाराज, मेरे मन में आपके लिए कोई भी दुर्भावना नहीं है, मैं फिर एक बार चेष्टा करता हूँ।"—महाराज अंतःपुर की ओर चले गये।

कुल्लटक की सेवा में अनेक दास और दासियाँ थीं। उन्होंने एक से पूछा, "क्यों री, तेरी स्वामिनी को इतना घमण्ड किस बात का है ? उसकी वह बरसों की सूनी गोद—क्या वह एक बिना

फूल की विटपी और बिना नीर की नदी के समान नहीं है ?"

दासी ने जवाब दिया, "कहती तो हैं वे—अगर किसी साधु-संत की कृपा से मैं संतानवती हो गई तो मैं आजीवन उसकी सेवा करने को तैयार हूँ।"

कुल्लूटक हँसकर बोले, "अगर वह कहीं कोई मेरी तरह का नागा निकल आया तो ?"

प्रांगण की बगल में ही एक मंदिर था, उसके चारों ओर बड़ी चौड़ी परिक्रमा थी। वहाँ बाजे बजने लगे और नृत्य होने लगा। कुल्लूटक बोला, "जाओ, तुम सब भी नाच में शामिल होओ। उत्सव की इस रसीली रात में कैसी चाकरी ?" उन्होंने बलपूर्वक सबको वहाँ से भगा दिया। केवल एक दासी रह गई।

मन्दिर की बनावट तो नए ढंग की थी लेकिन उसके भीतर की मूर्त्ति कुल्लूटक की गुफाओं की मूर्त्ति जैसी थी। कोई कहते हैं वह मूर्त्ति कामारि शंकर की है और कोई कहते हैं स्वयम् कामदेव की।

कुल्लूटक ने दासी से पूछा, "तूने मन्दिर की मूर्त्ति देखी है ?"

"मैंने सुना है वह बिल्कुल नंगी है। फिर तुम्हारी रानी रोज कैसे उसकी पूजा करती है ?"

दासी ने पंखे की ओट में अपना मुँह छिपा लिया।

कुल्लूटक बोला, "देखो दासी, कमर से ऊपर इस द्वीप में कौन नंगा नहीं है ? केवल इस पश्चिमी कर्ण में ये राजनगर के रहने वाले ! ये सब बाहर से आए हैं, ये अपने को सभ्य कहते हैं। और ये जो शुद्ध प्रकृति के संसर्ग में रहते हैं ये असभ्य कहलाते हैं। सूर्य की किरणों ने इन्हें जो श्यामता दी है, वह इन्हें नीरोग बनाये रखती है। ये सभ्य बनानेवाले, देख रही हो जो द्वीप के रक्त में मिल-जुल गये, वे तो ठीक हैं—शेष वंशहीन हो गये।"

दासी बोली, "महाराज, आप चाहें तो रानी की गोद में एक बालक दे सकते हैं।"

कुल्लूटक हसकर बोला, "वह जा भी होगा, देखा जायगा। मैं कहता हूँ दासी, यह जो तुमने कमर के नीचे फूल-पत्ते पहने हैं, यह सभ्यता इन्होंने ही सिखाई है तुम्हें। एक पाप बनाकर मन में छिपा दिया और एक पाप बाहर समझकर ढक दिया!"

दासी फिर पंखे की ओट में मुसकाने लगी।

"जा तू भी जाती क्यों नहीं, मन्दिर के आँगन में द्वीप के नये जोड़े पुराने जोड़ों के साथ नाच रहे हैं। हाथ पकड़कर खींच ले जा जहाँ भी है तेरा पति। यह चाँदनी के चमत्कार की रात फिर पूरे सालभर में आवेगी। तब तक किसे पता है, कौन रहेगा या जावेगा? जा कहना मान।"—कुल्लूटक ने उसे भी भगा दिया।

इसी समय महाराज दौड़ते हुए आकर कुल्लूटक से बोले, "रानी एकाएक बीमार हो गई है महाराज, उसे चलकर देख दीजिए।"

"वह तुम पर नाराज़ हो जायगी?"

"नहीं महाराज, उन्होंने स्वयं आपको बुला लाने को कहा है।"

कुल्लूटक हँसकर जाते हुए बोला, "इतने बड़े उत्सव में रानी को न देख सकने से मुझे भी बड़ा दुख था।"

रानी के कक्ष में जाकर उस तांत्रिक ने देखा, वह अचेत पड़ी हुई थी। उसने अपनी जटाओं में से खोलकर भभूत निकाली और कुछ पढ़कर उसके सिर में अँगूठे से दबाया। फिर बड़ी ज़ोर से चिल्लाया। राजा की समझ में वे शब्द नहीं आए। उन्होंने उन्हें द्वीप के वनमानुषों की भाषा समझा।

रानी ने आँखें खोलकर बन्द कर लीं। कुल्लूटक ने इसी तरह फिर उसकी दाहिनी और बाईं नाड़ियों पर अपना अँगूठा दबाया। रानी उठ बैठी। कुल्लूटक को पहचानकर सहमी।

महाराज बोले, "इन्हीं की कृपा से तुम अच्छी हुई हो, पैर छुओ इनके।"

रानी ने उनको देखा, वे अच्छी तरह कपड़े पहने हुए थे। उसने

उनके पैर छुए। उसने पूछा, "आपने भोजन किया या नहीं ?"

"कहाँ से ? इस उत्सव में हमेशा तुम्हारे ही हाथ से खाने को मिलता था, पर आज तुम मुझ से नाराज होकर बैठ गईं।"

"मैं ही आपको खिलाऊँगी, अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"

कुल्लूटक ने रानी की नाड़ी पकड़कर विचार किया। फिर बड़ी प्रसन्न मुद्रा से बोला, "राजा, तेरी बहुत दिनों की आशा पूरी हो गई। तेरी रानी सगर्भा हुई है।"

इस सुसमाचार से पहले ही कर्णद्वीप उत्सव में निमग्न हो रहा था।

६

रंगीन बच्चा

धीरे-धीरे समय पाकर रानी का गर्भ अपनी परिपूर्णता को प्राप्त होता गया। उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। लेकिन महाराज के मन में चिन्ता के काले बादल फैलते गये।

जैसे-जैसे रानी के सन्तान-जन्म की तिथि निकट आती गई, महाराज की उदासी बढ़ती गई। एक दिन रानी ने अवसर पाकर कहा, "महाराज, आपने हमेशा मुझ पर अपने मन की शंकाएँ, कठिनाइयाँ और उलझनें प्रकट की हैं, लेकिन मैं इधर देखती हूँ कोई गुप्त मन्त्रणा आपके मानस में गहरा घर कर गई है। आप चाहते हैं उसे मुझसे कहें, लेकिन कह नहीं सकते।"

महाराज ने एक बनावटी हँसी हँसी और कहने लगे, "नहीं रानी, ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तो तुम्हारे ही कष्ट से चिंता में पड़ा हूँ।"

रानी हँसकर बोली, "मेरा कष्ट कैसा ? यह तो एक प्रकृति का नियम है। लेकिन भगवान् ने कितनी प्रतीक्षा और प्रार्थना के पश्चात् कृपा की।"

"हाँ, यह कृपा तो भगवान् की है, लेकिन इसमें हमारे प्रधान सहायक कुल्लूटक महाराज हुए हैं।"

"आपको नित्य उनके लिए द्वीपान्तर से आए हुए मिष्टान्न-भोग भेजने चाहिएँ। राजन्, मेरी इच्छाओं के लिए जो कुछ भी आपने मँगाया है, मैं उसे देखकर तृप्त हो गई हूँ।"

"रानी, कुल्लूटक स्वामी को तुम इन पार्थिव भोगों का भूखा न समझो। वह अपनी गुफा के अंधकार के भीतर हाथ डालकर धरती के तमाम फल और मिठाइयाँ निकालकर बाँटता रहता है। तुमने इस सत्य को सुना नहीं है, कई बार मैंने तुम्हें वे चीजें लाकर दी भी हैं।

काश ! कोई और सेवा हम कर सकते।"

"अपने सेवकों में से भेज दो कुछ को।"

"द्वीप की जंगली जाति निरन्तर उनकी सेवा में लगी रहती है।"

"फिर और क्या हो सकता है ? आप नित्य एक बार जाकर उनके दर्शन कर आया करें।"

राजा ने कहा, "रानी, इन दिखावे की बातों से क्या होता है ? उनके लिए तो कोई सच्चा त्याग दिखाना चाहिए। कोई बलिदान !"

रानी चौंक पड़ी, "कैसा बलिदान ?"

"आत्मा और अपने अंश का बलिदान।"

रानी महाराज का हाथ पकड़कर बोली, "भय लगने लगा है मुझे आपकी बात सुनकर। स्पष्ट कहिए न आप क्या कहना चाहते हैं ?"

"बात ऐसी है रानी, मैं तुम से साफ़-साफ़ कहे देता हूँ। अपने मन में उस बात को रक्खे-रक्खे मैं स्वस्थ न रह सकूँगा। कुल्लूटक महाराज के वरदान से ही तुम संतानवती होने जा रही हो। एक ही नहीं उन्होंने तुम्हें और भी कई वर दिये हैं।"

"उन्होंने क्या कहा है, वह कहिए।"—अधीरता-पूर्वक रानी बोली।

जिस तरह हमें निःसंतान होने का दुःख है, ऐसे ही उन्हें भी।"

तमककर रानी बोली, "हमारे सौंपने को राज-सम्पत्ति, भू-सम्पत्ति और प्रजा-सम्पत्ति है।"

"उनके पास भी तो योग और दर्शन की सूक्ष्म सम्पत्ति है।"

"तो क्या वह हमारी संतान को चाहता है ?"

"हाँ रानी, पहली संतान।"—राजा ने स्पष्ट किया।

"नहीं, राजन् !" क्रोध में भरकर रानी बोली, "नहीं, वह महापातकी साधक है। मैंने जो सुना था, वह नर-बलि देता है, यह बात झूठी नहीं जान पड़ती। इसे अगर तुमने फिर मुँह से निकाला तो मैं इस पेट के बच्चे को लेकर समुद्र के किनारे किसी टीले पर चढ़कर जल की उत्तुंग लहरों में अपना विसर्जन कर दूँगी।"

महाराज चुप हो गये । उनके मन की वह वेदना और भी गहराई के भीतर प्रविष्ट हो गई ।

धीरे-धीरे संतान-प्रसव के दिन और भी निकट आने लगे । राजा जब कुल्लूटक के पास जाते वे यही कहते, "राजा, तू अपनी प्रतिज्ञा को भूल न जाना ।"

राजा सिखाए हुए स्वरों में कहता, "नहीं महाराज !"

लेकिन कुल्लूटक उसके चेहरे पर की चिन्ताओं को समझकर कहते, "फिकर क्या करनी है ? देने के लिए आदमी मुक्त हस्त और प्रशस्त-हृदय होकर रहे तो फिर कोई कठिनाई सामने नहीं रहती ।"

अब और भी दिन निकट आ गये और दाई अधिक मनोयोग से रानी के सम्पर्क में रहने लगी तो एक दिन महाराज ने उसे अपने कक्ष के एकान्त में बुलाकर कहा, "दाई, देखो एक जरूरी बात कहनी है तुमसे । यह किसी पर खुलनी नहीं चाहिए । रानी पर भी नहीं । मृत्यु के दण्ड पर तुम्हें सचेत होकर ही यह काम करना होगा ।"

दाई ने घबराकर हाथ जोड़ लिये और रोने के स्वर में कहने लगी, "महाराज, मेरा क्या अपराध हो गया ?"

"अपराध कोई नहीं । अगर तुमने ठीक-ठीक तरह से यह काम कर दिया तो तुम्हें मालामाल कर दिया जायगा । यह देवता का काम है राजा का भी नहीं ?"

दाई हाथ जोड़े हुए सिर से पैर तक काँप रही थी । राजा ने पूछा, "दाई, बता कौन बड़ा है राजा या देवता ?"

दाई ने चाटुकारी की, "देवता जन्म देता है और राजा भोजन ।"

"नहीं राजा नहीं देता भोजन । तुम अपने परिश्रम से उसे प्राप्त करती हो । देवता ही बड़ा है, राजा भी उसकी पूजा-अर्चना करता है ।"

दाई मौन रही । राजा फिर बोला, "कुल्लूटक स्वामी तमाम देवताओं को जगा सकते हैं । वे द्वीप के एक सम्मान्य सिद्ध हैं । मुझ से तो वे भी बड़े हैं । तुम्हारा क्या विचार है ?"

"होंगे महाराज !"—राजा के मतलब को समझने में असमर्थ दाई ने जवाब दिया।

"मैं कहता हूँ, हैं। तुम भी ऐसा ही कहो।"—राजा ने जोर देकर कहा।

दाई को दबी हुई वाणी से इसका समर्थन करना पड़ा। इस प्रकार भूमि तैयार कर धीरे-धीरे राजा बोला, "देखो दाई, मैं कुल्लूटक महाराज के समक्ष वचनबद्ध हूँ कि रानी जो पहली संतान प्रसव करेगी, उनके चरणों में समर्पित कर दूँ।"

"लेकिन रानी ने कभी ऐसा नहीं कहा।"

"वह कदापि न कहेगी।"

"बिना उनकी राजी के यह बात कैसे सम्भव है ?"

"दाई, इसीलिए मुझे तुम्हें एकान्त में बुलाना पड़ा। हमारे द्वारपाल के कल एक लड़का हुआ है न। तुम उस लड़के को किसी प्रकार चुरा लाओ।"

"राजन् !"—दासी राजा के चरणों पर माथा रखकर बोली, "माता की छाती से लगे हुए उसके बालक को कौन चुरा सकता है ? आप जीवित रखिए या मारिए, ऐसा मुझसे न हो सकेगा।"

"अच्छा ठहर, ठहर, किसी प्रकार वह बच्चा यहाँ आ जायगा। तू ऐसा तो कर, जब रानी संतान प्रसव कर दे तो तू उसे मुझे देकर उसके स्थान में द्वारपाल के लड़के को रख दे।"

"महाराज ! ऐसा करने की क्या आवश्यकता है ? इससे तो सारे कर्णद्वीप में…"—दाई कहते-कहते चुप हो गई।

"मैं समझ गया, तेरा मतलब है बदनामी फैल जायगी ?"—राजा ने आँखें तीक्ष्ण कर पूछा।

"मैं कहती हूँ, आप उस द्वारपाल के बच्चे को ही क्यों न कुल्लूटक महाराज को भेंट दे दें ?"

"नहीं दाई, प्रतिज्ञा अपनी संतान के लिए है। स्वामीजी को ऐसे

धोखा नहीं दिया जा सकता।"

"लेकिन महाराज, द्वारपाल के बच्चे का रंग काला है।"

"तो क्या हुआ ?"

"द्वीप भर में आपकी बदनामी फैल जायगी !"

"मेरी कैसी बदनामी ?"

"महारानी की बदनामी।"

"महारानी की बदनामी !"—महाराज हँसकर बोले, "हँ-हँ-हँ ! द्वीपवासी यह कानाफूसी करने लगेंगे कि महारानी ने यौवन के ढल जाने पर किसी द्वीपवासी से प्रेम कर लिया। कहने दे दासी। इस बदनामी की सीधी चोट मुझ पर कैसे पड़ेगी, क्योंकि मुझे तो इस रंग का रहस्य ज्ञात है। फिर ऐसी बात भी नहीं है कि उजले माँ-बाप की संतान सदैव गोरी ही हो।"

"आपका द्वारपाल आपके यहाँ अपने खोये बेटे को देखकर क्या कहेगा ?"

"वह मेरा द्वारपाल है। मेरे अन्तःपुर के भीतर कैसे घुस सकता है दाई ? इसके सिवा और क्या हो सकता है फिर ?"

"महाराज ! मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।"

"तू मेरी समझ से काम ले। रानी कब तक बच्चा प्रसव कर देगी ?"

"महाराज, भगवान् की माया को कौन जान सकता है ?"

"मनुष्य अनुमान कर सकता है।"

"मैं समझती हूँ आज रात में हो जायगा।"

"अच्छी बात है। मैं सन्ध्या-समय तक उस बालक को यहाँ ले आऊँगा। और निकट के किसी कमरे में प्रतीक्षा करूँगा। तुम प्रसव होते ही मुझे संकेत देना और स्नान-पात्र में दोनों बालकों को बदल देना, समझ गई ?"

"हाँ, मैं जाती हूँ। महारानी के फिर प्रसव-वेदना जाग उठी

है।"—दाई तेजी से चली गई।

महाराज उसी समय नीचे उतरकर उपवन में चले गये। वह उपवन के द्वार का रक्षक था। उपवन के भीतर ही उसकी झोंपड़ी थी। उसी में वह अपनी स्त्री-सहित रहता था।

महाराज ने जाकर उससे कहा, "द्वारपाल, मैं तुम्हारे पास आज एक विशेष काम से आया हूँ।"

महाराज इतने शब्द एक साथ ही उस द्वारपाल से कभी नहीं बोले थे। उसे अपने भाग्य के जागरण का विश्वास हो उठा। वह दोनों हाथ जोड़कर विनत वदन उनके सामने खड़ा हो गया।

"देखो द्वारपाल, तुम्हारे जो पुत्र हुआ है, उसकी मुझे आवश्यकता है।"

"वह आपकी प्रजा है। बड़ा होकर वह आपकी ही सेवा में नियुक्त हो जायगा महाराज!"

"नहीं, मुझे अभी चाहिए वह। आज ही आवश्यकता है।"—महाराज ने कहा।

द्वारपाल बेटे के मोह में पड़कर बोला, "महाराज, अभी तो वह बहुत छोटा है। उसे माता के गर्भ से बाहर आये ही कितने-से दिन हुए हैं? बड़े लड़के को ले जाइये।"

"द्वारपाल, मैं सब समझकर तुम से कह रहा हूँ।"

"तब उसकी माँ को आ जाने दीजिये।"

"माँ के न होने का लाभ ही तो उठाने आया हूँ।"

द्वारपाल गहरी चिन्ता में पड़कर कहने लगा, "क्यों महाराज, हमारे पिता होकर आप ऐसी बात क्यों कहते हैं?"

महाराज ने बड़ी प्रीति से द्वारपाल का हाथ पकड़ लिया, "देखो द्वारपाल, ज़रा चिन्ता करने की बात नहीं। राजभवन में तुम्हारे पुत्र की पालना होगी। कोई भेद-भाव न रक्खा जायगा। कौन जानता है एक दिन वही...लेकिन बहुत अधिक बातें करने से कोई लाभ नहीं, अपनी

स्त्री से छिपाकर तुम मुझे उसे दे दो और अपनी रानी को छिपाकर ही मैं उस पुत्र को दूँगा।"

"स्त्री से कैसे छिपाया जायगा ? क्या कहूँगा उससे ?"

"कुछ न कहना। जब वह डलिया को बच्चे से शून्य पावे तो कह देना—मैं नहीं जानता।"

द्वारपाल ने अपने दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर अपने मुँह पर रख लीं, "वह रोवेगी-चिल्लावेगी ?"

"तुम भी सहयोग देकर उसकी शंका से बच जाना। कहाँ पर है डलिया ?"

द्वारपाल ने राजा को अपने घर के भीतर ले जाकर वह डलिया दिखा दी। बच्चा सो रहा था। राजा ने धीरे से उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। वह नींद से जागने लगा, राजा ने अपने उत्तरीय से उसका मुँह ढक दिया और उसे मीठी थपकियाँ देकर फिर सुला दिया।

सन्ध्या की निविड़ता रात में बदलने लगी थी। द्रुत और सावधान पगों से राजा महल की सीढ़ियों पर चढ़ गया। वह महल के दास-दासी सबकी आँखों में पर्दा डालता चला। सौभाग्य से बच्चे की नींद उचटी नहीं।

प्रसूति-गृह के द्वार खोलकर दाई बड़ी उद्विग्नता से राजा की प्रतीक्षा कर रही थी। दासियों को इधर-उधर टाल रक्खा था उसने। राजा के हाथ से उस रंगीन बच्चे को लेकर उसने कहा, "महाराज, आपको बधाई है, आपके लड़की हुई है।"

"लड़की नहीं। उसे मुझे दे दो। हमारा यह लड़का है। इसे रख दो रानी के पास। वह जान तो नहीं जायगी ?"—कहते हुए महाराज ने वह लड़का दाई को दे दिया।

"वह पीड़ा में अचेत पड़ी है महाराज ! भगवान् सहायक हुए हैं। कहीं से हमारी कोई बात न खुली होगी। ऐसा समझ रही हूँ मैं।"—

दाई ने बच्चा बदलकर वह लड़की अच्छी तरह कपड़ों में लपेटकर राजा को दे दी।

महाराज उसी अन्धकार में चले। बाहर उनकी आज्ञानुसार पालकी और मशालवाले प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज उस लड़की को लेकर चले। सब सेवकों से उन्होंने कहा, "कुल्लूटक स्वामी के आशीर्वाद से मेरे पुत्र हुआ है। उनकी सेवा में भेंट लेकर अभी जाना आवश्यक है।"

रात-ही-रात में महाराज उस तांत्रिक के आश्रम में पहुँच गये। सेवक और पालकी को बहुत दूर छोड़कर एक हाथ में एक मशाल और एक में वह भेंट लेकर वे गुफा के द्वार पर जा खड़े हुए।

कुल्लूटक उस समय जाग ही रहे थे। उजाले को देखकर वे तुरन्त ही बाहर चले आये, "राजा, तू आ गया, समझ तो रहा था मैं। तेरे राजभवन की सब ख़बरें आ गई थीं मेरे पास। उसी हिसाब से मैंने यहाँ इंतजाम कर लिया है पहले ही से।"

"महाराज, यह मेरी पहली संतान है। प्रतिज्ञा के अनुसार इसे आपके चरणों में भेंट देकर आज मैं कृतार्थ हुआ।"—राजा ने उस लड़की को कुल्लूटक स्वामी के पैरों पर रख दिया।

बच्चा रोने लगा। कुल्लूटक ने उसे ऊपर हाथों में उठा लिया और गुफ़ा के भीतर आवाज देकर कुछ जंगली भाषा में कहा। उसी समय भीतर से एक बिल्कुल नंगी वन-रानी वहाँ पर चली आई। उसकी एक छाती से लगा हुआ एक शिशु दूध पी रहा था। राजा ने उसे देखकर अपनी आँखें नीची कर लीं।

कुल्लूटक ने फिर उस नारी से कुछ कहा और वह रोती हुई लड़की उसे दे दी। उसने उस लड़की का मुँह अपने दूसरे स्तन से लगा लिया। कुल्लूटक स्वामी बोले, "राजन्! सिर्फ एक अभ्यास की बात है। तुमने क्यों माथा नीचा कर लिया? देखो, देखो माता के इस रूप को! छिपाये जाने को ही पाप कहते हैं। भीतर की कामना को शुद्ध रक्खोगे

तो फिर बाहर कहीं कुछ भी पाप नहीं दिखाई देगा। देखो, देखो इस माता को, इसलिए कि तुम्हें अपने इस बालक को निराधार और निराश्रय छोड़ जाने की कोई चिन्ता न रहे।"

राजा ने धीरे-धीरे आँख उठाकर देखा, उसकी लड़की उस नई माता का स्तन-पान करती हुई चुप हो गई थी। राजा ने स्वामी जी के चरणों का स्पर्श किया और राजभवन को लौट गये।

× × ×

द्वारपाल की स्त्री ने जब डलिया को रिक्त पाया तो वह चिल्ला उठी। उसने अपने पति से पूछा, "बच्चा कहाँ है?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"हैं!"—वह बाहर जाने लगी।

द्वारपाल ने उसे रोककर कहा, "इस अँधेरे में कहाँ जा रही है?"

"तुम बड़े निर्दय जान पड़ते हो। बताओ, तब तुम्हें ज़रूर मालूम है मेरा बच्चा कहाँ गया? मैं उसे ढूँढ़कर ही चैन लूँगी।"

"तुम बैठो यहाँ पर। मैं ढूँढ़ लाता हूँ।"—द्वारपाल उसे वहीं बिठाकर झूठमूठ बाहर ढूँढ़ने लगा। वह दूर तक समुद्र के किनारे मजदूर-खलासियों की बस्ती और मछुवों के गाँव तक हो आया। कई जगह जाकर उसने पूछताछ की। घण्टे भर बाद वह लौट आया।

उसकी स्त्री ने पूछा, "नहीं मिला?"

"जान पड़ता है कि कोई जंगली जानवर उसे उठा ले गया है।"—द्वारपाल ने मुँह लटकाकर कहा।

"नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। ऐसा कहीं नहीं हुआ आज तक कि जंगलों में रहनेवाली नारियों के बच्चे भी इस तरह उनकी गोद से छुड़ा लिये जाते!"—उसकी स्त्री बाहर को जाने लगी।

द्वारपाल ने उसे रोकते हुए कहा, "इस अन्धकार में कहाँ जा रही हो? कल देखा जायगा।"

"तुम इतने कठोर हो? तुम माता की ममता को नहीं जानते हो। मैं अभी जाऊँगी। मैं जब तक अपने बच्चे के मरे या जीवित होने की कोई ठीक-ठीक खबर न पाऊँगी, न लौटूँगी।"

७

दूसरी लड़की

वह उस अन्धकार में घर से बाहर तो निकल गई। अब वह करे क्या ? किधर जाय इसी दुविधा में पड़ गई। इसी समय उसे राजभवन के द्वार पर प्रकाश लिये घूमता एक प्रहरी दिखाई दिया। वह उस प्रकाश की ओर खिंच गई।

प्रहरी ने पूछा, "कौन है ?"

"मैं हूँ।"—द्वारपाल की स्त्री उसके सामने आकर खड़ी हो गई।

प्रहरी ने उसके मुख पर प्रकाश डालकर फिर पूछा, "ऐसे असमय में कहाँ जा रही हो दीदी ?"

"मेरा बच्चा खो गया है !"—उसने सिर पीटकर कहा।

"तुम्हारा बच्चा ? वह तो अभी दिन में उपवन में खेल रहा था।"

"मेरा छोटा लाल, मेरी गोद का, मेरी छाती का बच्चा ?"

"कन ले गया उसे ?"

"यही तो कहती हूँ, डलिया में से···"

"तुम कहाँ थीं ? घर पर कौन था ?"

"मैं पानी भरने गई थी। घर पर वे थे। वे जाल बुन रहे थे मछलियों के लिए। कहते हैं, कोई जानवर उठा ले गया होगा।"—द्वारपाल की स्त्री ने प्रहरी के कन्धे पर हाथ रखकर बड़ी पीड़ा-भरी वाणी से पूछा, "भाई, क्या कभी तुमने ऐसा होते हुए सुना है ?"

"राजभवन के इतने निकट ? नहीं, कभी नहीं सुना।"

"फिर कहाँ गया मेरा लाल ?"

"गया कहाँ ? कोई उठा ले गया···"

द्वारपाल की स्त्री ने प्रहरी के हाथ की लालटेन पर हाथ रक्खा

"कुछ देर के लिए यह प्रकाश मुझे दे दो, मैं उसे ढूँढ़कर लाऊँगी।"

प्रहरी ने मज़बूती से लालटेन अपने ही कब्जे में रखकर कहा, "नहीं दीदी, हमारे महाराज बाहर कुल्लूटक स्वामी की सेवा में गये हैं। उनके वापस होने तक मुझे यहीं पर रहने की आज्ञा है।"

"ऐसी रात में महाराज वहाँ क्यों गये हैं?"

"महाराज के पुत्र हुआ है, उसी की प्रसन्नता में स्वामी जी के पास भेंट लेकर गये हैं।"—प्रहरी ने कहा।

उसी समय एक दासी अंतःपुर से बाहर आ रही थी। वह कहने लगी, "हाँ महाराज के पुत्र तो हुआ है, लेकिन···"—उसके मुख से विद्रूप की एक हँसी प्रकट हुई।

प्रहरी बोला, "क्यों री! अभी क्या तुझे उपहारों से भर दिया जायगा? समय पर ही तो सब कुछ होगा। क्यों इतनी असंतुष्ट हो गई तू?"

"असंतुष्ट नहीं हूँ। मैं तो तुम्हें एक रहस्य की बात बता रही थी।"—धीरे-धीरे दासी ने प्रहरी के कान में कहा, "लेकिन महाराज के जो राजकुमार हुआ है वह रंगीन है।"

प्रहरी के मुख में एक विचित्र भाव पैदा हुआ, वह बोला, "है! यह तो सारे कर्णद्वीप को विचित्र कानाफूसियों से भर देगा।"

द्वारपाल की स्त्री को फिर अपने शिशु की याद आ गई। उसका मन फिर अंतःपुर के रहस्य पर ठहर न सका। वह रोती हुई बोली, "मेरा बच्चा!"

दासी ने पूछा, "तेरा कैसा बच्चा?"

"मेरे बच्चे को उठा ले गया है कोई!"

दासी कुछ देर वहाँ पर खड़ी-खड़ी कुछ सोचती रह गई, फिर चली गई।

"कोई कुछ नहीं बताता।"—द्वारपाल की स्त्री इस दासी की फुसफुसाहट पर खिंच गई। उसने प्रहरी से पूछा, "उस दासी ने तुमसे

क्या कहा ?"

"कोई ऐसी बात तो नहीं।"

"नहीं तुम छिपा रहे हो। मेरे भीतर से कोई ऐसा बोल रहा है, मुझे भी यह बात मालूम हो जानी चाहिए।"

"दीदी, राजभवन के भीतर की तमाम बातें जानने की इच्छा रखने से हमें कोई मतलब नहीं। हमें अपने काम से काम चाहिए।"

"तुम न बताओगे ? अच्छा लालटेन तो दे दो।"

"महाराज के आ जाने पर ले जाना।"

निकट ही खलासियों की बस्ती थी। द्वारपाल की स्त्री वहाँ चली गई। वहाँ जाकर वह अपने खोये शिशु की बात भी न खोल सकी थी कि उसने सुना—राजा के रंगीन राजकुमार उत्पन्न हुआ है।

एक खलासी की स्त्री बोली, "रानी बदमाश होगी।"

दूसरी ने उसके मुँह पर हाथ रखकर कहा, "बिना सोचे-समझे ऐसी बात नहीं बक दी जाती। क्या बदमाशी है रानी की ?"

एक तीसरी कहने लगी, "जब पूजा-पाठ, दान-धर्म किसी से कुछ न हुआ तो फिर और क्या करते ? कुछ तो करना था ही। आखिर यह राज-पाट, महल-बगीचा किसे सौंप जाते ?"

कुछ हँसने लगीं। एक बोली, "किसी से माँगकर ले आये हों जब।"

द्वारपाल की स्त्री चिल्ला उठी, "बहिन, मेरा बच्चा खो गया !"

दूसरी उसकी तरफ़ आकृष्ट होकर कहने लगी, "कब खोया ?"

"आज ही तो।"

"कितना बड़ा था ?"

"अभी परसों ही तो हुआ था !"

दूसरी ने बहुत-कुछ निश्चयात्मक होकर कहा, "वहीं जाती क्यों नहीं ?"

द्वारपाल की स्त्री ने उससे पूछा भी नहीं कि कहाँ जाऊँ, वह सीधी फिर राजभवन के द्वार पर चली और प्रहरी से बोली, "मुझे

राजभवन के भीतर जाने दो।"

"कोई आज्ञा है तुम्हारे पास ?"

"नहीं, आज्ञा तो नहीं है, लेकिन मेरा बच्चा है वहाँ।"

प्रहरी हँसकर बोला, "तेरा बच्च वहाँ कैसे हो सकता है ?"

"खलासियों के मुहल्ले में सुनकर आई हूँ।"

"महाराज के इतने वर्षों बाद आज एक राजकुमार पैदा हुआ है, तू उसे अपना बताती है ! जान पड़ता है, तू कोई नशा पीकर आई है।" इसी समय दूर मार्ग में नारियल के पेड़ों के ऊँचे-ऊँचे तनों से होकर प्रकाश दिखाई दिया। प्रहरी बोला, "वह देख महाराज की पालकी आ पहुँची है। अब तू चली जा।"

"क्यों चली जाऊँ मैं ?"—द्वारपाल की स्त्री अपनी हठ पर जमी रही।

महाराज की पालकी आ पहुँची। पालकी से उतरकर उन्होने ज्योंही राजभवन के भीतर जाना चाहा, द्वारपाल की स्त्री ने आगे बढ़कर उनका हाथ पकड़ लिया। बड़ी मर्मांतक वाणी से उसने पुकारा, "महाराज, मेरा बच्चा !"—रात के उस अँधेरे में वह करुण पुकार महलों की दीवारों से प्रतिध्वनित होकर दूर तक समुद्र की सतह पर बज उठी।

प्रहरी ने उस स्त्री को हाथ पकड़कर खींच लिया। उसका जूड़ा खुल गया और उसकी केशराशि उसकी नंगी छाती पर बिखर गई !

महाराज ने कहा, "आने दो प्रहरी इसे मेरे साथ !"

प्रहरी बोला, "महाराज, इसका दिमाग ठीक नहीं जान पड़ता।"

"देखा जायगा।"—महाराज आगे-आगे चले, उनका अनुसरण करती हुई वह द्वारपाल की स्त्री।

फिर भीतर के एक द्वार पर एक द्वार-रक्षिका ने उसका हाथ पकड़ लिया, "कहाँ जाती है ?"

महाराज ने पीछे मुँह कर उस दासी से कहा, "कोई हानि नहीं, आने दो इसे।"

महाराज ने उसे अपने कक्ष में ले जाकर कहा, "कहाँ है तुम्हारा

बच्चा ?"

"मैंने सुना है यहीं है ।"

"कौन हो तुम ?"

"मैं द्वारपाल की स्त्री हूँ ।"

"कौन लाया यहाँ उसे ?"

"मैं नहीं जानती ।"

"क्या तुम्हें उसका यहाँ प्रतिपालित होना पसन्द नहीं ?"

"नहीं महाराज !"—वह दोनों हाथ बढ़ाकर इधर-उधर ढूढ़ने लगी, "मेरा बच्चा ! वह कहाँ है महाराज ? मुझे उसे दिखादो। मुझे उसे दे दो ।"

"तुम्हें उसे दिखा दिया जायगा, लेकिन उसे दे नहीं सकते। उसके बदले में तुम्हें खब धन दे दिया जायगा ताकि तुम्हारी जिन्दगी सानन्द कट सके ।"

"धन क्यों दिया जायगा ?"

"उसे अपना बच्चा न कहने के लिए ।"

"फिर किसका बच्चा होगा वह ?"

"राजा का, बड़ा होकर वह कर्णद्वीप की राजगद्दी पर बैठेगा ।"

द्वारपाल की स्त्री सोच-विचार में पड़ गई । इसी समय दाई ने आकर महाराज को कुछ संकेत दिया। महाराज उसके पास चले गये। दाई ने चुपके-चुपके कहा, "महाराज, अभी-अभी महारानी के एक कन्या-रत्न और हुई है ।"

महाराज ने भगवान् की ओर हाथ जोड़कर कहा, "उस प्रभु को धन्य है । उसने हमारी कठिनाइयों के लिए स्वयं ही मार्ग बनाये हैं, हम ही अपनी बाधा आप हैं ।"

"आपके कक्ष में वह कौन है ?"

"द्वारपाल की स्त्री अपना बच्चा माँगने आई है ।"

"आज्ञा हो तो उसे उसका बच्चा दे दिया जाय ।"

"महारानी क्या कहेंगी ?"

"महारानी अभी होश में नहीं हैं। उन्हें अभी तक कुछ भी पता नहीं है कि क्या हो रहा है ?"

"तुमने उनसे उस बच्चे के बारे में कुछ नहीं कहा ?"

"नहीं, अवसर ही नहीं मिला।"

"ले आओ उसे जल्दी से मेरे कक्ष में।"—महाराज अपने कमरे मे चले गये ।

द्वारपाल की स्त्री बोली, "नहीं महाराज, हम जहाँ पर हैं वहीं अच्छे हैं। मेरा बच्चा दे दो मुझे।"

"तुम्हारा बच्चा दे दिया जायगा तुम्हें।"

सुन्दर-स्वच्छ वस्त्रों में लिपटा हुआ वह रंगीन बच्चा ले आई दाई। उसे देखते ही द्वारपाल की स्त्री उस पर टूट पड़ी, "मेरा लाल !" उसने उसे तुरन्त ही छीनकर अपनी छाती से लगा लिया। उसे जिन वस्त्रों में लपेट रक्खा था, वे सब उसने खींचकर भूमि पर फेंक दिये।

महाराज ने पूछा, "क्यों, ऐसा क्यों ?"

"मेरा बच्चा धूप और हवा न लगने से बीमार हो जायगा।"

महाराज ने फिर बच्चे को कपड़ों में लपेट दिया। उसे एक थैली भर द्रव्य देकर कहा, "अभी छिपाकर ही ले जा इसे, घर जाकर इन वस्त्रों को अलग कर देना। सुन एक बात, अपने पति से पूछ लेना तेरा बच्चा कोई चुराकर नहीं लाया यहाँ ?"

"फिर कैसे आ गया ?"

"तेरा पति ही इसका उत्तर देगा। तू सबसे यही कहती जा कि मैं नवजात राजकुमारी को दूध पिलाने गई थी।"

द्वारपाल अपने पुत्र का राजभवन में लालन-पालन देख रहा था स्वप्न के जगत् में। उसकी स्त्री ने आकर उसकी नींद तोड़ दी, "देखो, मैं ले आई न अपने लाल को।"

बच्चा रोने लगा था। द्वारपाल चिढ़कर बोला, "अभागिनी !

क्यों ले आई तू इसे ?"

"तुम क्यों दे आये थे ?"

"जब तेरी तकदीर होती ? मै दे आया था इसे राज-सिंहासन में बिठाने ।"

"इस मजदूर के बच्चे को राजसिंहासन में कौन बिठाता ? सब धोखा-ही-धोखा ! कुल्लूटक स्वामी को भेंट चढ़ाने के लिए बेच दिया तुमने मेरा बच्चा और मैं लौटा लाई उसको । यह देखो, यह रुपयों की थैली भी तो ।"—उसकी स्त्री ने रुपयों की थैली बजाई ।

रुपयों की खनक सुनकर द्वारपाल उसके निकट खिसक आया, "लाओ, यह थैली मुझे दे दो, यह मेरे लिए भेजी होगी महाराज ने । सौदा मैंने किया था ।"

"कलेजा काटकर बेच देनेवाले कसाई हो तुम ।"

"ला थैली इधर, नहीं तो अभी महाराज के पास जाता हूँ ।"

"ठहरो, ठहरो, कोई आ रहे हैं ।"

दो-तीन खलासियों की औरतें आ पहुँची । पहली बोली, "क्यों बहन, कहाँ मिला तुम्हारा बच्चा ?"

"ये राजभवन में दे आये थे ।"

दूसरी ने पूछा, "क्यों ?"

"महाराज के राजकुमारी हुई है न ? उसे रोना ही नहीं आ रहा था । इसे रुलाकर उसे रोना सिखाने के लिए ले गये ।"

"क्या हुआ फिर ?"

"होता क्या ? मेरा बच्चा बड़ी देर तक चुप ही रहा । तब मैंने इसके कान ऐंठ दिये । इसका रोना सुनकर राजकुमारी रो पड़ी । फिर क्या था, फिर उसकी साँस चल पड़ी ।"

"क्या, दिया क्या तुम्हें ?"

"अभी क्या देते ? राजभवन की किताब में यह लिख लिया गया है । जब राजकुमारी का राजतिलक होगा तो उस दिन मेरे बेटे को

उसका गुरु बनाकर उसके सामने खड़ा किया जायगा।"

"बस, सिर्फ इतनी-सी बात, देना-लेना कुछ नहीं?"—एक ने कहा।

"इसी के लिए सारा मुहल्ला गुँजा दिया गया!"—दूसरी बोली।

एक-एक करके सबकी सब चली गईं।

द्वारपाल बोला, "तू आज राजभवन में जाकर बड़ी चतुराई सीख आई। ला अब तो निकाल थैली।"

"थैली मेरी बातों का मोल है। मैं नहीं दूँगी।"

उधर महारानी आधी-आधी चेतना में बोली, "दाई! मेरे क्या सन्तान हुई है?"

"बधाई है महारानी! आपने राजकुमारी को जन्म दिया है। भगवान् का धन्यवाद है अब आप स्वस्थ हैं।"

"राजकुमार कहाँ गया?"

"राजकुमार कौन-सा? महारानी जी, अभी आप दुर्बल है। अधिक न बोलिये।"

"राजकुमार··· वह सावला राजकुमार कहा गया? उसे क्यो छिपा रही है तू? गोरी राजकुमारी से साँवला राजकुमार क्या बुरा है? द्वीप का राज-भार सँभालने में तो उसी के कन्धे समर्थ होंगे न?"

"नहीं महारानी जी, आप अवश्य ही यह अपने किसी स्वप्न की बात कह रही हैं।"

और तुम्हें मेरी बदनामी का भय हो गया। महाराज को बुलालो मेरे सामने, मैं उनसे बातें कर लूँगी।"

दाई ने राजकुमारी को महारानी के निकट रक्खा, "यह देखिये, यही है आपकी राजकुमारी, हम क्या झूठ बोल रही हैं? क्यों दासियो?"

सभी उपस्थित दासियों ने दाई की हाँ-में-हाँ मिलाई।

"और वह दूसरी राजकुमारी कहाँ है?"

दाई बोली, "महारानी जी, आपको यह दूसरा भ्रम हो गया है।"

इसी समय महाराज ने कहा, "महारानी, आपको बधाई देने के लिए राजभवन के प्रांगण में बहुत से लोग आये हैं। वे सभी राजकुमारी के दीर्घ जीवन की प्रार्थना कर रहे हैं।"

"उन्हें उचित उपहार मिलना चाहिए महाराज!"

"हाँ, इसका प्रबन्ध कर दिया गया है।"

राजभवन के नौबतखाने में बाजे बज उठे।

८

एक वृन्त के दो फूल

महारानी को शंका अवश्य थी लेकिन धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों उनकी गोद की राजकुमारी बढ़ती गई त्यों-त्यों वह शंका उनके मन के अन्धकार में अदृश्य होती गई । वह मिटी नहीं, क्योंकि फिर रह-रहकर जाग उठती थी ।

प्रसव के आरम्भ के कुछ दिन तो महाराज को बड़ी चिन्ता और कष्ट में काटने पड़े । बाहर राजभवन में राजकुमारी के जन्म की खुशी मनाई जा रही थी, लेकिन सौरि-गृह में महारानी की विचित्र दशा थी ।

उसने राजा का हाथ पकड़ लिया, बड़ी उद्विग्नता से बोली, "नहीं महाराज, आप यहीं रहिये, मुझे बड़ा भय लग रहा है ।"

"हमारे द्वार पर हमारी प्रजा खड़ी है, मुझे उन्हें उनकी बधाई के लिए धन्यवाद देने हैं और उपहार भी ।"

"यह आ.के कर्मचारियों का काम है ।"—रानी ने किसी तरह भी उन्हें नहीं जाने दिया ।

कुछ देर में फिर वह बोली, "लेकिन दूसरी राजकुमारी कहाँ है ?"

दासियों ने रानी को समझा-बुझाकर शान्त किया था । उस रात को महाराज की शय्या भी वहीं बिछाई गई । रात को फिर रानी उठी और महाराज से कहने लगी, "और साँवला राजकुमार कहाँ है ?"

महाराज ने जवाब दिया, "रानी, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं जान पड़ता, तुम्हें आराम करना उचित है ।"

"मैंने उसे देखा है महाराज ! मैं स्वस्थ हूँ बिल्कुल ।"

"तुमने कैसे देखा उसे ? तुम तो उस समय अचेत पड़ी थीं ।"

जब किसी प्रकार भी रानी नहीं मानी तो राजा ने दाई के साथ

मंत्रणा कर उस द्वारपाल के बालक को यहाँ मँगवाया और रानी के मन का वह्म निकालने के लिए उसे उसके सामने रक्खा।

रानी प्रसन्न होकर बोली, "हाँ, यही तो है वह।"

"लेकिन यह राजकुमार नहीं है, यह तो मेरा बेटा है।"—द्वारपाल की स्त्री बोली।

"तुम क्यों लाई थीं इसे यहाँ ?"

"तुम्हारी राजकुमारी को रोना सिखाने के लिए।"

महाराज द्वारपाल की स्त्री की उस वाक्चातुरी को सुनकर बहुत प्रसन्न हो गये। रानी के मन का भ्रम भी अंशतः निकल गया। महाराज ने फिर द्वारपाल की स्त्री को बहुत-सा द्रव्य देकर विदा किया।

लेकिन दूसरी राजकुमारी के लिए फिर-फिर उसके मन में एक पुकार जाग उठती थी। जिस दिन महाराज ने रानी से उस राजकुमारी का नाम रखने के लिए पूछा, तो उसने उत्तर दिया, "इसका नाम वासंथी रखूँगी और उसका जब तक तुम मुझे उसे दिखाओगे नहीं, कुछ न बताऊँगी।"

वासंथी धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उसके हास्य और रोदन से वह सूना राजभवन मुखरित हो उठा। उसके क्रीड़ा-चापल्य से उसमें नई जान पड़ गई। वासंथी को खिलाना-पिलाना, उसे नहलाना-धुलाना रानी स्वयं अपने हाथों से करती। दासियों को उसे छूने भी न देती।

जब वह रोती तो रानी तरह-तरह के खिलौनों से उसे सन्तुष्ट करती, जब वह हँसती तो रानी उसकी हँसी में अपनी तमाम चिन्ताएँ डुबा देती। वह नई-नई लोरियाँ नये-नये स्वरों में गूँथकर उसे सुलाती और वह जब बड़ी देर तक सोई रह जाती तो आकुल होकर उसके अंगों पर हाथ रखती, उसकी पलकों को धीरे-धीरे अपनी उँगली से ऊपर उठाती।

जब वासंथी चलने लगी, तो एक दिन महाराज ने कहा, "रानी, अब तो तुम्हें कुल्लूटक स्वामी का विश्वास हो गया है न ?"

रानी अन्यमनस्क थी, उसका विचार किसी दूर देश-काल की गहराई में खो गया था। महाराज उस दिन अपनी तिजूरी खोलकर शेष तीन बादाम निकाल लाये थे। एक ही पर्याप्त था, पर न-जाने किस विचार से वे सभी ले आये थे।

महाराज ने फिर कहा, "रानी, एक दिन हमें उनकी गुफा में जाकर उनके दर्शन करने उचित हैं।"

"हाँ महाराज !"

महाराज ने एक बादाम निकालकर रानी को देते हुए कहा, "लो रानी, यह स्वामी जी का प्रसाद।"

बड़ी उदासीनता से रानी बोली, "क्या होगा इससे ?"

"कदाचित् इस बार महाराज की कृपा से हमें राजकुमार प्राप्त हो जाय।"

"अगर उनकी कृपा फिर उन्हें ही लौटानी पड़ गई तो ?"

"रानी, तुमने यह क्या कहा !"—बड़ी उद्विग्नता से महाराज ने पूछा।

"जाने क्या यह मुँह से निकल जाता है महाराज ! आप जो अन्यथा समझते हैं, ऐसी बात नहीं है। अन्धकार में किसी स्वप्न में या पूर्वजन्म में देखी हुई-सी कोई घटना मेरे होठों पर ये शब्द रख देती है। और वे आप-से-आप प्रकट होकर खुल जाते हैं।"—रानी बड़े संकोच से बोली।

महाराज ने सोचा—'इस प्रकार किसी को धोखे में रख देना भी मनुष्यता नहीं है। अभी तो नहीं, कुछ दिन बाद जब वासंथी बड़ी होकर रानी के जगत् में एक नया विस्तार दे देगी, तो मैं इस वास्तविकता को प्रकट कर दूँगा।'

रानी ने महाराज के हाथ से बादाम ले लिया था। वह बोली, "इसे खा लूँ महाराज ?"

"हाँ।"

रानी ने ज्योंही बादाम मुँह में रखकर दाँतों के नीचे दबाया उसी समय वासंथी ने रानी के हाथ छुड़ा लिये और किलकती हुई उपवन में एक ओर को दौड़ गई। रानी दौड़कर उसे पकड़ लाई अपनी गोद में।

राजा ने देखा, वह मुँह बिगाड़ती हुई भूमि पर थूकती हुई चली आ रही थी। राजा ने शंकित होकर पूछा, "क्या बात है?"

"बादाम कड़वा निकला महाराज!"

"कोई चिन्ता नहीं।"—महाराज ने उसे दूसरा बादाम देकर कहा, "लो यह दूसरा है।"

महारानी ने उसे भी दाँतों से दबाते ही थूक दिया, "महाराज! यह भी तो..."

महाराज ने तीसरा बादाम हाथ में लेकर कहा, "रानी, शायद बन्द करके रख देने से ये विस्वादु हो गये हों। यह तीसरा बादाम है तो सही।"

रानी को बातों ने वासंथी की ओर अन्यमनस्क कर दिया था, वह फिर उसकी गोद से उतरकर भाग गई। इस बार महाराज उसके पीछे दौड़े और अपनी गोद में उठा लाये।

दोनों हाथ उछालकर वासंथी अपनी विजय पर हँस पड़ी। रानी ने उसका मुँह चूमकर अपनी गोद में ले लिया। वह बोली, "महाराज, अधिक लालच बुरी चीज है। जो हमें भगवान् ने दिया है, वही स्वस्थ और हमारे लिए सच्चा रहे तो क्या बुरा है?"

"रानी, वासंथी पराये घर की चीज है। एक दिन हमें उसे विवाह में दे देना पड़ेगा। कर्णद्वीप को सौंपने के लिए तो राजकुमार ही चाहिए।"—महाराज ने उसकी ओर बादाम बढ़ाया।

रानी उसे लेने के लिए सम्मत न हुई और राजा की गोद की वासंथी ने अपना हाथ बढ़ाकर वह बादाम ले लिया। रानी हँस पड़ी, "महाराज, इसकी इच्छा नहीं है। सम्भव है भगवान् की भी नहीं

संसार के अनेक राजसिंहासनों को क्या नारियों ने पुरुषों से अधिक गौरव नहीं दिया है ? जाने दीजिये महाराज !"

महाराज ने कुछ रोषपूर्वक वासंथी को गोद से उतार दिया और उसके हाथ से बादाम छीन लिया। वह रोने लगी। रानी ने कुछ रिस में भरकर उसे भूमि पर से उठा लिया। वह राजा की तरफ़ पीठ कर उपवन की दूसरी दिशा को चली गई।

दूर पर दो दासियाँ जो यह क्रीड़ा-कौतुक देख रही थीं, अब क्या करतीं ? कौन किसका साथ देती ?-इसलिए उन्होंने इसी बात में चतुराई समझी कि राजा और रानी के विग्रह की तरफ़ से अपने मुख मोड़ लें। वे दोनों देखी हुई घटना को अनदेखी कर फूल तोड़ने लगीं।

राजा की दासी बोली, "क्यों, क्यों ? हुआ क्या ?"

"शायद वासंथी ने महाराज के राजसी वस्त्र गंदे कर दिये। उन्होंने उसे भूमि पर उतारकर एक चपत लगा दी।"—दूसरी ने कहा।

"वस्त्र गंदे कर दिये होते तो रानी जी क्यों उसे गोद में उठा लेतीं। बात कुछ और ही है, मेरी समझ में तो वही झगड़ा हो रहा है।"

"कौनसा ?"

"वही जो बड़ी लड़की महाराज ने कुल्लूटक स्वामी जी को दे दी।"

"महारानी को इसका ज्ञान कहाँ है ? वे बेहोश पड़ी थीं उस दिन द्वीप-वासियों में से भी किसी को इस बात का पता नहीं है। दो-चार अन्तःपुर की दासियाँ हैं, वे प्राणों के भय से कब इसकी चर्चा करती है ?"—दूसरी ने धीरे-धीरे कहा।

पहली बोली, "चल बहुत फूल हो गये। वह देख महाराज फिर रानी की ओर बढ़ रहे हैं।"

दूसरी ने उधर देखकर कहा, "हाँ, उन्होंने बड़े प्रेम से रानी के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया।"

"चलो, अब हमें उधर जाना उचित नहीं है। इन फूलों को राजभवन के फूलदानों में रख दें।"

उधर महाराज ने रानी के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "रानी, थोड़ी-सी बात में रिस करना अब हमारी आयु की शोभा नहीं है! इसीलिए मैं तुम्हारे पास चला आया हूँ, नहीं तो मैं भी इस कलह को आगे बढ़ा सकता था।"

रानी ने मुँह फेरे-फेरे ही उत्तर दिया, "बड़ी तपस्या के अनन्तर जो चीज मिली है उसका तिरस्कार करते हैं आप? फिर जिसके मन में अभी किसी बुराई-भलाई का भेद नहीं उपजा है, जिसे किसी ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं है। केवल एक लीला ही जिसका लक्ष्य है—उसके साथ कैसा विग्रह?"

"देखो रानी, मैंने कोई ताड़ना नहीं दी वासंथी को। उसके हाथ से बादाम ही तो छीना है न? अगर वह उसे मुँह में दे देती और वह उसके गले में अटक जाता तो?"

रानी की समझ में बात आ गई। उसे मन का सारा मैल दूर करने में कोई देर न लगी। उसके अधरों पर क्षीण हँसी का उदय हुआ, उसने महाराज की ओर फिर शुद्ध भावना से मुँह कर लिया।

वासंथी ने महाराज के पास जाने की चपलता दिखाई। उन्होंने उसे गोद में ले लिया। उसे प्यार करते हुए बोले, "इसके साथ कोई द्रोह नहीं है मेरा। तुम कहती हो राजसिंहासन में नारियाँ भी बैठ सकती हैं, मैं इस बात का विरोध नहीं करता। लेकिन तुम्हें यह भी तो ध्यान में रखना चाहिए कि जिन देशों में नारियाँ राज्य-स्वामिनी हुई हैं, उनके आधार पर शक्तिवान मन्त्रिमण्डल था या नहीं। और साथ ही हमारी स्थिति को भी तो देखो।"

रानी गम्भीर होकर महाराज की बात सुन रही थी। उसे चुप देखकर वासंथी ने उसकी ओर हाथ बढ़ा दिये। रानी ने उसे गोद में ले लिया।

"रानी, संसार में क्या हो रहा है, इसका हमें कोई पता नहीं चलता। न तो हम उसके साथ डाक-तार से जुड़े हैं न टेलीफ़ोन द्वारा। कभी कोई छोटा-मोटा जहाज़ हमें कुछ अख़बार या किताबें दे गया तो उससे क्या होता है ? एक रेडियो-सेट् ज़रूर हमारे पास है। वह भी कभी बिगड़ जाता है और कभी उसकी बैटरी समाप्त हो जाती है, फिर हमें दो-तीन महीने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।"

वासंथी गोद से उतरकर भूमि पर जाने की हठ करने लगी। रानी बोली, "देखो सुनो, महाराज क्या कह रहे हैं ?"

महाराज कह रहे थे, "अभी एक महाभारत समाप्त हुए तीन-चार वर्ष हुए। धरती माता के घाव भरे भी नहीं हैं। दुनिया भर में सभ्यता ने जो सर्वनाश-तांडव किया है, वे खंडहर वैसे ही पड़े हैं। फिर अभी लोग कहने लग गये हैं, इस महाभारत में ही द्वितीय विश्व-युद्ध का बीज पड़ गया।"

"तो महाराज, ऐसी चिन्ता की क्या बात है ? जिस तरह पहले महायुद्ध की कोई आँच हम तक न आई ऐसे ही दूसरा विश्व-युद्ध भी आकर चला जायगा। युद्ध और शान्ति तो दुनिया में होते ही रहते हैं। हमारा यह छोटा-सा द्वीप केवल नारियल का फल ही जिसकी मुख्य भू-सम्पत्ति है, उस पर कौन देश अपनी दृष्टि गड़ावेगा ? किसे उन नारियल के फलों को बम बनाकर अपनी सामरिक शक्ति बढ़ानी है ?"

"ऐसी बात नहीं। हमारे द्वीप का विस्तार नगण्य है, इसकी भू-सम्पत्ति और नर-शक्ति भी शून्य है इसे मैं मानता हूँ। आर्थिक लाभ के लिए हम किसी को आकृष्ट नहीं कर सकते, पर सामरिक अभियान में हमारा मूल्य है।"

वासंथी अब बहुत चपलता दिखाने लगी थी। रानी ने दासी को बुलाकर कहा, "इसे कुछ देर तुम अपनी गोद में लेकर उपवन की सैर कराओ, मुझे महाराज से कुछ आवश्यक बातें सुननी हैं।"

दासी वासंथी को उपवन के दूसरे भाग में ले गई। महाराज

बोले, "पहला विश्व-युद्ध अपनी चरम सीमा में नहीं पहुँच सका था। यह दूसरा अधिक भयंकर होगा।"

"लेकिन इसमें हमारा क्या मूल्य होगा ?"

"सामरिक शक्तियाँ भारत की ओर बढ़ने के बाद हमारा आधार पकड़ने की कोशिश करेंगी, तब क्या होगा ?"

"हम कह देंगे—हम किसी के विग्रह में सम्मिलित नहीं।"

"तुम्हारी बात कोई नहीं मानेगा, दो दल जब लड़ते हैं तो कोई भी धर्म और नीति को नहीं मानता। वे बलपूर्वक हमारी भूमि पर अधिकार कर लेंगे। हमें किसी पक्ष को स्वीकार करना ही पड़ेगा।"

"तो वह पक्ष हमें पूरी-पूरी सहायता देगा।"

"इसीलिए यदि द्वीप में समझदार उत्तराधिकारी होगा तभी तो। हमें अपनी आयु का क्या गर्व ? यौवन का ही क्या भरोसा ?"

रानी ने म्लानमुख विनम्र होकर कहा, "महाराज की क्या आज्ञा है तब ?"

महाराज ने बादाम हाथ में लेकर कहा, "यह स्वामी जी का प्रसाद खा लो। और इस विश्वास को बढ़ाओ कि भगवान् की कृपा से अब हमें पुत्र प्राप्त होगा।"

रानी ने कुछ मुस्कराकर महाराज की ओर हाथ बढ़ा दिया। महाराज ने उसे बादाम देकर कहा, "देखो रानी, बालक की सी सरलता मन में होनी चाहिए, तभी विश्वास फल देता है। खा लो इसे।"

रानी ने बादाम मुँह में रखकर चबाया। चबाते ही मुँह बनाकर भूमि पर थूक दिया, "थू! थू!"

विषण्ण मुख राजा चिल्लाये, "क्या हुआ ?"

"यह बादाम भी कड़वा है महाराज!"

"तब क्या होगा ?"

इसी समय वासंथी दौड़ती हुई रानी के पास चली आई। रानी ने उसे गोद में लेकर कहा, "मैं क्या बताऊँ महाराज!"

९

पुराना प्रेम

केवल महाराज के त्याग की परीक्षा करनी थी कुल्लूटक स्वामी को और उनकी पहली सन्तान को माँग लेने का दूसरा कोई मतलब नहीं था। माँगने को तो माँग ही लिया और देनेवाला दे भी गया, पर अब मुश्किल पड़ी। स्वयं उसका लालन-पालन कर न सकते थे वे, वन-मानुषों को सौंप देने में भी संकुचित हो गये।

सभ्य-संसर्ग में पली हुई वह कन्या, कैसे एकाएक मुक्त आकाश के नीचे जीने के लिए सौंप दी जाती? इसलिए उन्हें उसके लालन-पालन के लिए अपनी गुफा के भीतर ही प्रबन्ध करना पड़ा।

जंगल की जिस एक नव-प्रसूता नारी को उन्होंने राज़ी किया, वह अपने बच्चे को लेकर उनकी गुफा में आ गई और उसने अपना दूध-भरा एक स्तन उसको भी दे दिया।

कई महीने तक स्वामी जी को बड़ी चिन्ता रही। रात को उठ-उठकर वे उस बच्चे को देखने जाते। वह वन-नारी एक दिन कहने लगी, "तुम बड़े मोह में पड़ गये हो इस लड़की के कारण, क्यों तुमने अपने लिए यह जाल रच लिया?"

"हाँ, कर्म का लेख अटल है, मेरे हाथों से यह उसी की पूर्त्ति है। तुम यह कुछ न समझो कि यह सब हम कर रहे हैं। तुम भी उसी चक्कर में फँसी हुई नारी हो।"

"फिर तुम्हें रात-बिरात उठकर आने की क्या ज़रूरत है? मुझे इसका ध्यान तो है ही।"

"मुझे इसका विश्वास है। फिर भी तुम्हारा जो अपना बच्चा है, उसी का मुख्य ध्यान होना तुम्हारे लिए स्वाभाविक है। लेकिन मेरी

चिन्ता का यह कारण भी नहीं है। धरती-धूप, हवा-पानी तुम्हारे और तुम्हारे बच्चों का ओढ़ना-बिछौना है, लेकिन यह बच्चा राजमहल की छत और दीवालों से घिरा हुआ कोमल बिस्तर में पालन-पोषण पाता। ऐसे ही अभ्यासवाले माता-पिता से इसने जन्म पाया है। मैं बीच-बीच में यही देखने आता हूँ, इसके अंग-प्रत्यंग समुचित रीति से ढके हैं या नहीं? रंपो, तुम क्यों बुरा मानती हो?"

रंपो को पच्चीस वर्ष पुरानी कोई बात याद पड़ी, उसने उसे स्मरण कर एक दीर्घ श्वास खींची, फिर कहा, "महाराज, कब तक आप कष्ट करेंगे?"

"कुछ समय और जब यह कन्या अच्छी तरह चलने-फिरने लग जायगी, इसका अंग इस वायुमण्डल के अनुकूल हो जायगा तो फिर कोई चिन्ता न रहेगी मुझे।"

"फिर क्या होगा? फिर इसे यहीं छोड़ जाऊँगी मैं?"

"नहीं, फिर तुम इसे अपने साथ ऊपर पर्वतों में ले जाने पाओगी और इसे अपना ही सा बना लोगी, जो तुम खाती हो वही इसे भी खिलाओगी, जैसे तुम बिना वस्त्र के रहती हो ऐसे ही सूर्य-चन्द्र और तारकों का प्रकाश इसका भी वस्त्र होगा। पवन इसका ओढ़ना और धरती बिछौना होगा। तुम्हारे बच्चों के साथ यह भी गिरि और वनों मे खेलेगी। उन्हीं की भाषा सीखकर उन्हीं में रल-मिल जायगी।"

"ऐसा कब तक होगा स्वामी जी?"—रंपो ने पूछा।

वह पच्चीस वर्ष की पुरानी बात स्वामी ने सामने निकालकर रख दी, "रंपो, तुमको वह काली रात याद है न?"

"हाँ महाराज, याद है।"—बड़े क्षीण स्वर में उसने जवाब दिया।

"नहीं, केवल इतने ही से काम न चलेगा। मुझे साफ़-साफ़ कहकर वह बात तुम्हारे सामने रखनी पड़ेगी। तुम मेरे पास सन्तान माँगने आई थीं।"

रंपो लज्जा खोकर बोली इस बार, "तो क्या अनहोनी बात हो गई ? इस द्वीप का यह राजा भी तो तुमसे ही यह सन्तान माँग ले गया है।"

"लेकिन उसकी रानी नहीं आई, वह स्वयं आया।"

"उसकी रानी डरती है, ये सभी नगरवासी डरते हैं। हम निर्भय हैं, हम वन-पर्वतों में सारी प्रकृति से मित्रता साधकर रहते हैं। इसके सिवा रानी के राजा है। मेरे लिए कौन आता, इसी से मुझे आना पड़ा।"—रंपो हँसने लगी।

"तू मेरे लिए लोहे के बन्धन लेकर आई थी जिन्हें मैं कभी काट ही नहीं सकता। जिस चीज़ को बाधा समझकर मैं इस एकान्त में आया था, तू उसी का रूप रखकर मुझे ग्रसने चली आई थी। तेरी उस नवीनता में बड़ा आकर्षण था। तेरी वह श्यामरूपता मुझे अब भी स्पष्ट है।"

"होगी, पर जिस तिरस्कार को लेकर मैं उस रात को लौटी थी, वह मुझे बहुत दिन तक याद रहा। आज मैं तुम्हारे सामने अपना पाप प्रकट करती हूँ···"—कहते-कहते रंपो चुप हो गई।

"फिर रुक क्यों गई है ?"

"तब से मैं तुम्हारे छिद्र ढूँढ़ती रही। बहुत दिन तक जब कुछ न मिला तो मैं शादी करके तुम्हारी प्रतिहिंसा को भूल गई।"

"लेकिन मैंने बड़ी सावधानी से अपने छिद्र छिपाये हैं।"—कुल्लूटक ने कहा।

"नहीं, छिद्र कोई नहीं है।"

"सन्तान का दान ही अगर कोई छिद्र है, तो ले यह सन्तान मैंने तुझे दी।"

रंपो हँसने लगी।

"हँसने की बात नहीं है। तुमने तब अवश्य ही मेरा मन खींच लिया था। और इस तरह घूम-फिरकर कामनाएँ अपने को पूरा करा

लेती हैं। अब न रखना मेरे लिए कोई प्रतिहिंसा। मैंने तेरी इच्छा पूरी कर दी।"

"इच्छाएँ पेड़ के फूल की तरह हैं, अगर कोई उन्हें न भी तोड़े तो वे अपने आप सूखकर धरती पर गिर जाती हैं। स्वामी जी, मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ।"

"नहीं रंपो, वह प्रकृति का अपराध है, हमारा-तुम्हारा क्या ?"

रंपो बोली, "आज अच्छा दिन है, मैं ऊपर पहाड़ों पर अपनी गुफा में हो आती हूँ। पति तो कई बार मेरी कुशल पूछने यहाँ तक हो गये हैं। आज मैं भी जाती हूँ। मेरे बड़े लड़के ने इस गोरी कन्या को नहीं देखा है। देखूँ, वह क्या कहता है ? चार-पाँच दिन में लौटूँगी।"

"हाँ, अभी कई वर्ष इसे उसके ही साथ रहना होगा। अभी से उसका इसके लिए प्रेम हो जायगा तो ठीक रहेगा।"

रंपो अपनी दोनों छातियों से उन दोनों बच्चों को लगाकर जिस दिन अपनी गुफा को चली गई थी, उसके दो-तीन दिन बाद कुछ कपड़े और भेंट लेकर आ पहुँचे महाराज।

कुल्लूटक ने पूछा, "यह क्या ले आया तू ?"

"बाहर से एक जहाज़ आया था आज। कुछ बाहर के फल और मिठाइयाँ लाया हूँ महाराज !"

"और यह कपड़े ? मैं तो कुछ नहीं पहनता, तुझे मालूम ही है।"

"महाराज, उसके लिए।"

"उसको क्या तू माँग लेना चाहता है ?"

"नहीं महाराज !"—राजा ने कुल्लूटक के चरणों में सिर रख दिया।

"इसका तो यही अर्थ हुआ। यह तू जो नगर की सभ्य आदतें उसके लिए दे जा रहा है, उससे क्या होगा ? वह ज़रूर नगर की ओर खिंचने लगेगी। नहीं, यह मिठाई और फलों की टोकरी भी तू ले जा।" कुल्लूटक ने लात मारकर वह टोकरी दूर फेंक दी, "इस तरह दूर-दूर के

देशों के फल और मिठाइया में हमें उसका मन भरमा देना नहीं है।"

महाराज इस तिरस्कार को पाकर व्याकुल हो उठे। उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकला। स्वामी जी बोले, "जो चीज दे दी बस दे दी फिर तू उसे देखने के लिए क्यों यहाँ आता है ?"

"मैं आज छः महीने में आया हूँ महाराज ! आपके दर्शनों को।"—विनीत होकर राजा बोला।

कुल्लूटक के मन में दया जाग उठी। उसने वह टोकरी सभाल-कर अपनी तरफ़ खींच ली, "हाँ, छः-छः महीने में यहाँ आने की मैंने तुझे आज्ञा दे रखी है। आज तो वह यहाँ है भी नहीं। ये कपड़े ले जा तू। जंगल के बच्चों के बीच में अगर उसे कपड़े पहनाये जावेंगे तो फिर उनके मन में आपस का प्रेम नहीं जागेगा। वह तन्दुरुस्त भी नहीं रह सकेगी। जो तू समझता है इन कपड़ों में वह सुन्दर दिखाई देगी, यह तेरा भ्रम है।"

राजा ने कपड़े हटाकर एक ओर रख लिये, "जैसी आज्ञा है महाराज !"

"दूसरी लड़की तो है न तेरे ?"

"हाँ महाराज ! लेकिन···"

कुल्लूटक ने बीच ही में प्रश्न किया, "एक बात तो बता जो यह लड़की मुझे दी गई है, मैंने सुना है यह तूने रानी से छिपाकर दी है।"

"हाँ महाराज, मैं क्यों आपसे झूठ बोलूँ ?"

"अगर उसे मालूम हो जायगा तो फिर क्या होगा ?"

"उसे मालूम न होगा महाराज ! वह बेहोश थी, भगवान् सहायक हुआ। उसकी दूसरी लड़की के हो जाने से मेरी लाज रह गई।"

"उसका यह चोरी का माल तू यहाँ दे गया ? अच्छी बात है, तू राजा है। चोर को तेरे पास लाते हैं। तू ही जब चोर है तो तुझे किसके पास ले जायँ ? क्यों रानी के पास ले जायँ ?"—कुल्लूटक ने पूछा।

"महाराज, अगर आप रानी पर दयालु हुए हैं तो एक बिनती करूँ।"

"क्या ?"

"उसे एक पुत्र का आशीर्वाद दे दीजिये।"

"तुझे वे बादाम दिये थे।"

"वे सड़ गये महाराज, कड़वे हो गये।"

"आशीर्वाद की चीज़ कहीं सड़ती-गलती है ? तेरी रानी की भावना ठीक नहीं है।"

"फिर कृपा कर दीजिये महाराज !"

"अब कुछ नहीं हो सकता। एक कन्या है तेरे, उसका लालन-पालन कर। बेटे से क्या हो जायगा ? अगर कहीं कुपूत हो गया तो चारों ओर तेरी बदनामी फैला देगा। अब चला जा तू।"

लेकिन राजा कुछ सोच-विचार में पड़ा ही रह गया।

कुल्लूटक ने कहा, "क्या बात है ? कहता क्यों नहीं ?"

"महाराज, आज्ञा हो तो रानी पर प्रकट कर दूँ दूसरी लड़की की बात ?"

"मैं क्या जानूँ तेरे घर की स्थिति ? लेकिन अगर वह अपनी लड़की माँगने यहाँ आवेगी तो उसे कुछ नहीं मिलेगा।"

"तो यह बात छिपी ही रहेगी इसीलिए छिपाई भी गई है।"

"लेकिन सारा कर्णद्वीप जानता है, कब तक छिपा रक्खेगा तू ?"

"रानी से कोई नहीं कहेगा महाराज ! मैंने सब पर कठोर आज्ञा प्रचारित कर रक्खी है।"

"तू जाने।"—कहकर कुल्लूटक अपनी गुफा के भीतर चला गया और महाराज अपने राजभवन को।

रंपो उस दिन दोनों बच्चों को लेकर पहाड़ की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँची, वहाँ उन लोगों का एक मन्दिर-सा था। कोई निर्माण नहीं था, मकान जब उन्हीं के नहीं थे तो उनके देवता का कहाँ से होता ?

एक बड़े पुराने पेड़ के खोखल में कुछ पत्थर रक्खे हुए थे। वहाँ वे लोग शोक और हर्ष के सभी अवसरों पर जाकर भगवान् की सन्निधि प्राप्त करते थे।

जब वे बीमार पड़ते तो वहाँ जाकर देवताओं को मनाकर उनका कोप दूर कराते। जब उनमें से कोई मर जाता तो उसे ले जाकर नदी में डुबा देते और फिर उसी चोटी पर जाकर तीन दिन तक रोते-चिल्लाते। सन्तान के जन्म होने पर भी उसे वहीं ले जाकर देवता की शरण में रख देते, सब मिलकर नाच करते और गीत गाते। फिर पशुओं की बलि देते और कच्चा मांस सबको बाँटकर खाते। प्रायः सभी अवसरों पर बलि की रीति अनिवार्य थी।

विवाह की अन्तिम प्रथा भी वहीं सम्पन्न होती थी। वह उन वन-वासियों के सहज जीवन के समान ही सरल थी। वर रोज आधी रात को वधू की गुफा के बाहर गीत गाकर भाग जाता था। वधू के अविभावकों में से किसी को उसे ढूँढ़कर लाना पड़ता था। जब वह पकड़ा जाता तो उसे बाँधकर वधू के सामने रख दिया जाता था। अगर वधू ने उसके बन्धन खोल दिये तो दोनों धनुष-बाण लेकर वन में आखेट के लिए जाते थे। शिकार मारकर उस चोटी के देवता को चढ़ाते और प्रसाद सब लोगों की गुफाओं में जा-जाकर बाँटते। यही उनके विवाह की सम्पन्नता थी।

रंपो चोटी पर चढ़ते समय अपने पति से शिकार मार लाने के लिए कह गई थी। उसके साथ द्वीप के कई स्त्री-पुरुष और बाल-बच्चे हो लिये थे। सबके मन में उसके गोरे बच्चे के लिए भारी कौतूहल था।

एक स्त्री बोली, "तेरे यह गोरा बच्चा कैसे हो गया? अगर सरदार को यह बात मालूम हो गई तो तुझे देव-मन्दिर के पेड़ पर बाँध कर चारों ओर से तुझ पर तीरों की बौछार कर दी जायगी। हमारी जाति के खिलाफ़ ऐसे पाप की बात के लिए तू क्यों तैयार हो गई? चाहे तेरा पति इस बात को सहन कर ले, दूसरे हरगिज नहीं करेंगे।"

रंपो हँस पड़ी। दूसरी स्त्री ने पहली को समझाया, "यह बच्चा इसे स्वामी जी ने दिया है।"

उस स्त्री की समझ में बात फिर भी नहीं आई, "ऐ स्वामी जी को इस उमर में क्या हो गया? यह रंपो है ही ऐसी। मुझे याद है, यह जब जवानी में थी तो उनसे कहती थी···" वह चुप हो गई।

"क्या कहती थी?"—एक ने पूछा।

"कहती थी मेरे यहाँ आकर आधी रात में गीत गाओ और क्या?"

रंपो फिर हँसकर बोली, "यह राजा की सन्तान है।"

वह स्त्री घबराकर कहने लगी, "राजा की संतान है तो यह और भी भयानक वस्तु है! यह हम वन-वासियों का भेद मालूम कर एक दिन हम सबको पकड़वा देगा और राजा की प्रजा बना देगा। ओह कैसे हम फिर कमर पर वे चुभनेवाली रस्सियाँ और पत्ते पहनेंगे? कैसे वह आग में जलता-बलता मांस खावेंगे, मुँह न जल जायगा? और कैसे उन झोंपड़ियों में रहेंगे? दम घुट जाएगा।"

रंपो ने गोरे बच्चे के कपड़े हटाकर उसे उस स्त्री की गोद में देकर कहा, "देख लो, यह लड़की है।"

"लड़की क्या हमारा भेद न देगी?"

"नहीं देगी। द्वीप का कोई वनवासी युवक इसके युवती हो जाने पर इसे गीत सुनाकर अपने वश में कर लेगा। तब यह अपने पिता को भूलकर पति की बात मानेगी।"

सबने चोटी पर पहुँचकर अपने-अपने संशय-भ्रम भुला दिये। रंपो का पति खूब शिकार मार लाया था। देवता की पूजा की गई खूब मद्य और मांस से। सबने खाया-पिया और नाचते-कूदते अपनी-अपनी गुफा में चले गये।

एक-दो दिन रंपो अपने पति के यहाँ रही। पहले दिन वह गोरी कन्या अपनी धाई के बेटे को छोड़कर और किसी के पास नहीं गई, लेकिन फिर धाई के बड़े बेटे ने उस पर अपना जादू चला दिया। वह

उसे गोद में लेकर अनेक झरनों और वन पर्वतो में घुमा लाया।

उन वन-वासियों के मन में भय नाम की कोई चीज नहीं थी। मछुओं और खलासियों की झोंपड़ियाँ ऊँची थीं। बच्चों के जन्म होते ही वे उस ऊँचाई का भय अपनी भावना से उनके मन के भ तर डाल देते थे। उनके बड़े हो जाने पर वाणी द्वारा उनके मस्तिष्क में खोद देते थे—'हैं! हैं! उधर नहीं जाते गिर पड़ोगे।' जब वे और बड़े हो जाते तो उन्हें पहाड़ों की ऊँचाई पर भूत का भय बता दिया जाता और समुद्र की गहराई में भाँति-भाँति के भयानक जानवरों का।

लेकिन वे वन-वासी जिसका मन जिधर होता, उधर ही चले जाते—स्त्री हो चाहे पुरुष, बालक हो या युवक, कोई डर नहीं, कोई संकोच नहीं। जननी ने जैसा जन्म दिया उसी तरह बिना आवरण के इधर-उधर घूमते रहते थे प्रकृति की अकृत्रिमता को धारण किये हुए। तीव्र सौर किरणों से निर्भय और मेघों की मूसलाधार वर्षा का आनन्द लेते हुए, वे जहाँ मन आता वहाँ जाते।

१०

फिर छः वर्ष

वह गोरी कन्या उस श्यामा माता की नंगी छाती पर बढ़कर धरती पर दौड़ने-भागने लगी। धीरे-धीरे उसके अधरों पर उच्चारण पैदा होने लगा। जहाँ-कहीं भी वह जाती उ गिरि-प्रदेश में वहाँ उसका धाई-भाई उसके हाथ खींच ले जाता।

एक दिन कुल्लूटक स्वामी ने कहा, "रंपो, मैं समझता हूँ अब यह लड़की मुक्त प्रकृति में बेखटके रह सकती है, इसलिए तुम इसे ले जाओ अपने घर।"

रंपो कुछ संकोच में पड़कर बोली, "स्वामी जी, इतने शीघ्र ?"

"दो-तीन वर्ष तुम्हें यहाँ रहते हो गये, तुम इसे शीघ्रता कहती हो! नहीं, अब मैं तुम्हारे पति के मन में अधिक विकार जमने न दूँगा।"

"नहीं, उन्हें मेरे यहाँ रहने में कोई आपत्ति नहीं ह । बीच-बीच में जब मैं उनके पास जाती हूँ तो मैंने कभी उन्हें असंतुष्ट नहीं पाया।"

"कभी-कभी तुम यहाँ आ सकती हो।"

"कब तक ?"

"जब तक मैं पाँचों तत्वों में जीवित रह सकूँ।"

"यह लड़की किसकी है ?"

"यह मेरी धरोहर है तुम्हारे पास।"

"स्वामी जी, इसके लालन-पालन में जितना अधिक समय मेरा बढ़ता जा रहा है, उतनी ही इस पर मेरी प्रीति भी। इसलिए आप अभी अपनी धरोहर को रख लीजिये।"

"अच्छा तुम इसे पाँच वर्ष तक और पाल दो, फिर मुझे दे आना, तब तक यह अच्छी तरह चलने-फिरने और बोलने-चालने लग जायगी।"

पाँच वर्ष का समय धीरे-धीरे बीत गया। एक दिन यह बात भी रानी के कानों में खुल गई कि उसकी एक लड़की कुल्लूटक स्वामी को दे दी गई है। रानी उस दिन बहुत नाराज़ होकर राजा से कहने लगी, "महाराज, आपने मुझे बड़ा धोखा दिया है।"

"कैसा धोखा दिया रानी!"

"मेरी परायणता का यह पुरस्कार पाकर मुझे संसार की ओर से विराग हो उठा है।"

महाराज बात को तुरन्त समझ गये। उन्होंने उत्तर दिया, "देखो रानी, संसार में त्याग सबसे बड़ी चीज़ है।"

"मैं त्याग के लिए कुंठित नहीं हूँ, लेकिन जिसकी चीज़ है, उसे धोखा देकर तो त्याग नहीं होना चाहिए।"

"तुमसे किसने कहा?"

"सत्य अपने को स्वयं प्रकट करता है राजन्!"

महाराज को बड़ा क्रोध हुआ। जिस बात को रानी से छिपाकर रखने के लिए उन्होंने इतने प्रयत्न किये थे, पाँच वर्ष तक जो छिपी भी रह गई, छठे वर्ष में वह कैसे प्रकट हो गई? मन-ही-मन उन्होंने निश्चय किया, "जिसने यह भेद खोला है उसे अवश्य प्राण-दण्ड दिया जायगा।"

रानी कहने लगी, "महाराज, प्राण-दण्ड के भय से किसी ने नहीं खोली मुझ पर यह बात।"

"फिर?"

"आप प्राण-दण्ड दे भी नहीं सकते उसे।"

इसी समय वासंथी दौड़ती हुई आई और महाराज का हाथ पकड़कर बोली, "महाराज, मेरी एक दीदी है।"

"कहाँ है?"

वह बिल्कुल नंगी होकर जंगल में रहती है, उसे जाड़ा नहीं लगता!"

रानी ने बड़े विक्षेप से मुँह ढक लिया, "कहाँ दे दी तुमने मेरी कन्या ? उन जंगलियों के बीच में नंगी रहने के लिए ? अभी तो वह पाँच-छः वर्ष की है, दस-बारह वर्ष की हो जायगी तो···कैसी निर्लज्जता है राजन् ! और जब वह सोलह साल की हो जायगी तो···? किस तरह अपमानित कर रख दिया तुमने मुझे ?"

महाराज ने पूछा, "वासंथी, कौन कहता है, तुम्हारे एक दीदी है ?"

"स्वामी जी ने कहा है। आज हम उनके यहाँ गये थे न तब !"

"स्वामी जी ने··"—महाराज अपना क्रोध पीकर चुप रह गये।

"नहीं, मेरी लड़की मुझे वापस दो।"—रानी महाराज के दोनों हाथ पकड़कर बोली।

"दी हुई चीज़ वापस नहीं ली जाती।"—राजा ने कहा।

"स्वामी जी के पास कहाँ है वह लड़की, उन्होंने वह किसी जंगली मनुष्य को दे दी, तुम वहाँ से माँग ला दो।"

"उन जंगलियों की भयानक गुफाओं में कौन जा सकता है ? कौन उनकी भाषा को समझ सकता है ?"—महाराज ने कहा।

वासंथी कहने लगी, "मैं जा सकती हूँ।"

"लाओ, दो मुझे मेरी लड़की !"—रानी ने महाराज का हाथ पकड़कर उन्हें उठा दिया।

बड़े संकट में पड़ गये महाराज। उस समय उससे छूटने को उन्होंने कह दिया, "धैर्य रक्खो रानी, मैं चेष्टा करूँगा।"

अभी जाओ, उस स्वामी के पास। मैं कहती न थी वह साधू लंपट है। वह नंगा है, उसने मेरी लड़की को भी नंगा बनाकर रख दिया। राजन् ! तुम्हारी बुद्धि को क्या कहूँ ?"

"कुछ न कहो, वासंथी उन्हीं के प्रसाद रूप से मिली है। यदि उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध तुम कोई शब्द कहोगी तो उनके अभिशाप से हम समाप्त हो जावेंगे।"

"अगर तुम नहीं जाते तो मैं स्वयं जाती हूँ, अभी।"—रानी ने बड़े भारी विक्षेप से कहा।

महाराज को जाना ही पड़ा। लेकिन वे कहाँ जाते? कुछ दूर के बाद लौट आने का विचार किया था पर जाते-जाते स्वामी जी की गुफा तक पहुँच ही गये। स्वामी जी बोले, "क्यों रे अब तेरी बारी है? अभी तो तेरी रानी यहाँ आकर गई है? अब तू आया है। क्या बात है, आज यह दोहरे फेरे कैसे हैं?"

"महाराज! क्या कहूँ? आप पर क्या छिपा है? आना तो नहीं चाहता था मैं आपके पास · "

"लेकिन जमीन पर टूट पड़ा जो नारियल वह फिर कैसे पेड़ पर लगेगा? फिर लगते हुए कभी तूने देखा क्या?"

"नहीं महाराज!"

"जिसकी लड़की, उससे कहा भी नहीं तूने, कैसा अन्यायी राजा है तू!" कुल्लूटक अट्टहास कर नाच उठा, "लेकिन मैंने कह दिया उससे!"

"महाराज, कहाँ से लेकर आपने वह लड़की कहाँ सौंप दी?"

"दस वर्ष तक के लिए मैंने उसे वन-वासियों को दे दिया है। दस वर्ष बाद वह यहीं मेरे आश्रम में आ जायगी। देख, मैं दिन-दिन बूढ़ा होता जा रहा हूँ। जब आँख देख न सकेगी और हाथ-पैर चल-फिर न सकेंगे और यह पेट खाना माँगता ही रहेगा, तब के लिए यह इन्तजाम है। तू जानता ही है मैं फल-फूल ज्यादे पसन्द नहीं करता।"

"महाराज, वह दस वर्ष की लड़की आपके लिए क्या शिकार मारकर ला सकेगी? मैं उसके बदले आपकी सेवा में राज्य के कर्मचारी नियुक्त कर दूँगा, वे आपकी सभी आवश्यकताएं पूरी कर देंगे।"

"वे यहाँ नहीं रह सकते। जिस तरह तुम हम नागा लोगों से घृणा करते हो, ऐसे ही हम तुम कपड़ेवालों की छूत मानते हैं। इस सरोवर में वंशी डालकर भी क्या वह लड़की मछली न मार सकेगी?"

महाराज निराश होकर जाने लगे, "स्वामी जी, कोई उपाय बता दीजिये जिससे रानी का मन रहे और वह इस लड़की की ममता भूल जाय।"

"वह मेरी मौत की कामना करे, मेरे मर जाने पर तुम उस लड़की को ले जा सकते हो।"

"नहीं महाराज, ऐसा कैसे हो सकता है?"

"तो मुझे स्वयं मर जाने दो।"

महाराज लौट गये और उन्होंने रानी को कुल्लूटक स्वामी की मृत्यु के बाद उस वनवासिनी राजकुमारी के प्राप्त हो जाने की आशा दिलाई।

पाँच वर्ष का समय और बीत गया और वह राजा की राजकुमारी गिरि-वनों में अपना छोटा-सा जगत बनाकर रह गई। वह धूप में, चाँदनी में, अपने साँवले साथियों के साथ खेलती-कूदती और जंगली फल और कच्चे मांस का आहार करती। चारों ओर नंगी ही फिरती। वह उन जंगलियों की भाषा और संकेत सीखकर बिल्कुल उन्हीं में समा गई थी।

एक दिन उसने अपनी धाई माँ से पूछा, "माँ, वह मेरा भाई है और यह दीदी है। इनके पिता से जब मैं पिता कहती हूँ तो वे नाराज़ होते हैं। मेरे पिता तुम उन स्वामी जी को बताती हो, लेकिन वे तो मुझे बड़े अजीब-से लगते हैं। तुम कहती हो अब मुझे वहीं रहना होगा। मेरे ये इतने साथी, ये सब यहीं छोड़ देने पड़ेंगे क्या?"

"ये सब वहाँ आते-जाते रहेंगे।"

"नहीं, मैं नहीं रहूँगी वहाँ।"

"क्यों?"

"उधर वे गोरे रंग के, ढके बदन के, भूत रहते हैं। उनसे डर लगता है। वे कमर पर पत्ते बाँधनेवाले काले भूत भी तो वैसे ही हैं।"

"कुल्लूटक स्वामी से सब डरते हैं, तुम गुफा के भीतर छिप जाना।

कोई तुमसे कुछ नहीं कह सकता।"

"नहीं माँ, मुझे तो ये पर्वत और वन ही अच्छे लगते हैं। फिर ये इतने साथी!"

रंपो की आँखों में आँसू भर आये। उसने उस वनवासिनी के कष्ट का अनुभव किया, बोली, "अच्छा बेटा, मैं फिर तुझे और कुछ समय के लिये माँग लाऊँगी।"

रंपो कुल्लूटक स्वामी के यहाँ इस बार अकेली ही गई। स्वामी जी कहने लगे, "क्यों, अब तो तू बिल्कुल पहाड़ों की ही हो गई? क्यों नहीं आती यहाँ? मेरी लड़की कहाँ है? दस वर्ष की नहीं हुई क्या अभी वह? दस वर्ष बाद तूने उसे मेरे पास पहुँचा देने का वचन दिया था!"

"लेकिन महाराज, उसका मन वहाँ के छोटे-छोटे बच्चों में ही रम गया है। अभी कुछ समय और उसे वहीं रहने दीजिये।"

"और कितने दिन?"

"दिन नहीं महाराज, कुछ वर्ष ताकि उसकी बचपन की आयु बीत जाय और उसका मन उन खेलों से ऊब जाय।"

"और कितने वर्ष फिर?"

"पाँच-छः वर्ष।"

"पाँच-छः वर्ष—तब फिर दुनियादारी के खेलों में उसका मन रम जायगा और यहाँ यह बूढ़ा 'हाय भोजन' 'हाय पानी' कह तड़प-तड़पकर मर जायगा।"

"नहीं महाराज, ऐसा न होगा।"

"अच्छा जा, पाँच वर्ष और तुझे दिये गये।"

× × ×

बीच-बीच में कभी-कभी रानी के हृदय में उस अदृश्य कन्या की ममता जाग उठती थी। यद्यपि वासंथी के दस वर्ष के हो जाने के कारण रानी को उसके स्नेह और उसके काम-धन्धे से फुरसत नहीं मिलती थी, तथापि उस खोई हुई कन्या के लिए कभी-कभी उसके मन

में बड़ी पीड़ा जाग उठती थी।

एक दिन वासंथी ने ही उसे याद दिला दी, "माता जी, अब वह मेरी वनवासिनी दीदी कितनी बड़ी हो गई होगी?"

"तुम फिर उसे याद कर मेरी पीड़ा को भी ताज़ी बना देती हो। वह मर गई है, ऐसा क्यों नहीं समझ लेती हो?"

"क्यों समझ लूँ ऐसा? महाराज ने मुझे एक दिन स्वामी जी की गुफा में ले जाकर उन्हें दिखा लाने को कहा है।"

"कब कहा है?"

"अभी हाल ही में।"

"मैं भी चलूँगी। कहाँ हैं महाराज?"

"राजभवन में।"

दोनों उसी समय महाराज के पास गईं। रानी ने उनसे कहा, "महाराज, आपने वासंथी से क्या कहा है? इसने आज फिर मेरी उस सोई हुई स्मृति को जगा दिया है।"

"हाँ, स्वामी जी ने मुझसे कहा था—दस वर्ष बाद वह वनवासिनी उनकी गुफा में रहने को आ जावेगी।"

"तब हम उसे देख सकेंगे क्या?"

"अगर वह हमारा कोई भय न कर हमारे सामने आने को राज़ी हो तभी तो।"

"राज़ी कैसे न होगी वह? एक बार चलिए तो महाराज! वह मिले या न मिले हमें। देखने से क्या बिगड़ जायगा? मुझे उसे देखने की बड़ी लालसा हो गई है।"

"उसका वह जंगली वेश और नग्न रूप देखने की क्यों तुम्हारे मन में इच्छा हो गई है?"

"मैंने उसके लिए कई जोड़े वस्त्र तैयार कर रक्खे हैं। मैं उसके भीतर उन्हें पहन लेने का चाव जगा लूँगी। मैंने कई तरह के स्वादिष्ट मेवे-मिठाइयाँ उसके लिए इकट्ठी कर रक्खी हैं। मैं उनका स्वाद चखाकर

उसे राजभवन के मार्ग की ओर खींच लूँगी।"

"असम्भव है रानी ! उसके तुम्हारे बीच में जो भाषा का बन्धन है, वह टूट चुका है !"

"भाषा का बन्धन एक नकली मनुष्य का उपजाया हुआ सम्बन्ध है, असली चीज तो भावना है । वह हमारी साँस में है, वह हमारी आँखों की दृष्टि में है, हृदय की धड़कन में है। आप एक बार उसे मुझे दिखा तो दें। मैं उसे अपनी ओर खींच लूँगी । वह मेरे प्राणों का टुकड़ा—वह भयानक-कुरूप स्वामी, वह किसी तरह फिर उसे अपनी उस गुफा के अन्धकार की वंदिनी बनाकर न रख सकेगा। आप एक बार उसे मुझे दिखा तो दें।"

"लेकिन रानी···"

"हम माँगेंगे नहीं उसे। दी हुई चीज वापस न लेंगे, पर अगर वह स्वयं ही हमारे साथ आने को तैयार हो जाय तो क्या यह उस स्वामी का अत्याचार न होगा कि वह बलपूर्वक उसे बाँध ले ? वासंथी दस वर्ष की हो गई, अब वह भी दस वर्ष की हो गई होगी, चलिये न किसी दिन।"

वासंथी भी हर्ष से ताली बजाकर उछलती हुई कहने लगी, "हाँ, मैं भी चलूँगी।"

महाराज ने मन में सोचा, "गुरुदेव के दर्शनों की कामना रखकर तो जा सकते हैं।"

× × ×

शीघ्र ही वे एक दिन पालकियों में बैठकर चल दिये गुरुदेव की गुफा को। उनके वहाँ पहुँचते ही कुल्लूटक स्वामी ने कहा, "क्यों, आज कैसे पधारे ?"

राजा ने उनके चरणों में अपनी भेंट रक्खी, "महाराज, आपके दर्शन के लिए आये हैं।"

"और ये रानी किस लिए आई हैं ? शायद उस लड़की को देखने ? मैं कहता हूँ, जब यह लड़को है ही तो फिर उसके लिए कोई

लालसा रखना मिथ्या है।"

रानी बोली, "महाराज, आप माता का हृदय रखते तभी उसकी पीड़ा जानते।"

"मैं तो पिता का हृदय भी नहीं रखता। इन पाषाणों की संगति में बिल्कुल पत्थर हो गया हूँ। रानी, तुमने कभी दर्पण में अपना मुख देखा है?"

"हाँ महाराज!"

"दर्पण में देखे गये मुख के लिए क्या तुम्हारे मन में कोई लालसा उपजती है? प्रतिबिम्ब देखकर तुम्हारी भावना मुख पर ही लौट जाती है। ऐसा ही है न?"

महाराज ने जवाब दिया, "हाँ, स्वामी जी।"

"ठीक है। तुम्हारी इस लड़की के ही अनुरूप है वह। बिल्कुल इसी का प्रतिबिम्ब। अन्तर केवल एक है। इसको तुमने वस्त्र पहनाये हैं। उसके वस्त्र हैं दिशाएँ, पवन, सूर्य-चन्द्र और तारकों की किरणें तथा निशा का अन्धकार!"

रानी ने कुछ वस्त्र और एक मेवे-मिष्टान्न की डलिया महाराज के सामने रक्खी, "यह उसके पास भेज दीजिये।"

"हाँ, वह छः वर्ष के लिए फिर वनवास ही में चली गई है। नहीं, इन कपड़ों को पहनकर वह अपनी और संगिनियों से अन्यथा न बनेगी। यह मिष्टान्न खिलाकर तुम उसकी मति में भ्रम पैदा न करो। तुम फिर इन्हें ले आये!"

वासंथी चिल्ला उठी, "महाराज, लौट चलो, मुझे बड़ा भय लगता है।"

"रानी, ले जाओ इसे। एक का विश्वास करो, उसी में संतोष—इससे बड़ी बात और कुछ नहीं है। लो ये कपड़े भी।"

महाराज ने उन चीजों को उठाकर सेवकों को दे दिया और वे चल दिये।

११

वह अनावृता

पन्द्रह वर्ष की हो गई धीरे-धीरे वह वनवासिनी राजकुमारी। वह अपनी रूप-शिखा से तमाम गिरि-वनों को प्रकाशित करने लगी। उसके हास्य-कल्लोल से वह निर्जन मुखरित हो उठा। उसके कण्ठ ने उन जंगलियों के गीतों में नये स्वर भर दिये और उसकी कल्पना ने उनकी क्रीड़ाओं में नये छन्द!

उसकी आयु की जितनी भी वन-कन्याएँ थीं, वह सबकी केन्द्र, सबकी नेत्री और सबकी प्रेरणा बन बैठी। जो वह कहती वही सब करतीं, जिधर वह जाती उधर ही सब जाने लगतीं। सबने उसके संकेतों में जीवन समर्पित कर दिये, सब उसकी छाया-सहचरी बन गईं।

वह मुक्तावरणा, अनावृता, पीठ और कन्धों पर अपनी केशराशि बिखराये—कमर और माथे पर अपने हाथ नचाती हुई कुंज, गिरि और जलाशयों पर डोलती फिरती थी। कभी शिलाओं पर कूदती, कभी वृक्षों पर चढ़कर फल-फूल तोड़ती। उसके पीछे दल की दल दूसरी कुमारियाँ भी चली आती थीं।

पहले वह समवयस्क बालकों को भी अपने साथ ले जाती लेकिन अब वे बालक भिन्न हो गये। कुमारियों को लेकर ही अब उसने अपना दल बना लिया है। निःसंकोच प्रकृति के ही रंग ओढ़े हुए भूमि पर विचरनेवाली मृगी की तरह या जल में तैरनेवाली मीन की भाँति या पवन और मेघों की गोद में उड़नेवाली कपोती के सदृश वह घूमती-फिरती थी।

गुफाओं के बाहर बैठ जाती कभी वह। पत्थर और लकड़ियों को एकत्र कर मकान की तरह कुछ बनाती, उसकी सभी सहचरियाँ भी

उसका अनुसरण करतीं। बात-की-बात में वे एक छोटा-मोटा गाँव-सा बना देतीं। गाँव के बड़े-बूढ़े उनके उन मकानों के समूह को बड़ी शंका से देखते और दोनों पैरों की ठोकरों से उन्हें निर्माण के समय से कम अवधि में मिटाकर प्रकृति से मिला देते।

कभी वह पत्थरों का चूल्हा-सा बनाती और उसमें लकड़ियाँ तोड़-तोड़कर रख देती। उसकी सहेलियाँ भी उसके अनुरूप चेष्टा कर वैसी ही कई आकृतियाँ बनाकर रख देतीं। गाँव के और लोग कहते—'बड़ा बुरा समय आ गया! ये तो चूल्हा बनाने लगीं? हमारे वन-पर्वतों की सारी हरियाली इसी में समा जायगी, धुएँ से हमारी आँखें कमजोर हो जावेंगी और हमारी पवित्र धरती विदग्ध हो जायगी।'

कोई कहते—'ऐसा करते-करते अगर हम आग में पका हुआ मांस खाने के आदी हो गये तो फिर राजा और उसके कर्मचारी बड़ी आसानी से हमें जीतकर गुलाम बना लेंगे।'

और फिर दूसरे कहते—'यह भगवान् का कोप है या हमारे ही पाप? जो कुछ भी है हमें इन चूल्हों को बनाते ही बिगाड़ देना चाहिए। अगर ये एक रात को भी ऐसे ही रह गये तो जरूर इनमें आग प्रकट हो जायगी। अगर एक भी जल गया तो फिर हमारी सारी जाति विनष्ट हो जायगी।' वे सब-के-सब मिलकर तुरन्त ही एक मन-प्राण हो गये और उन तमाम चूल्हों को विनष्ट करके ही चैन लिया।'

वह वनवासिनी राजकुमारी कभी फूल और पत्ते चुनकर लाती। सब संगिनियों को बिठाकर पेड़ों की छाल के रेशे निकालकर बटती और उन डोरों में फूल-पत्तियों को गूँथकर मालाएँ बनाती। फिर सब उन मालाओं को कमर, हाथ-पैर, गले और मस्तक में धारण करतीं। इस प्रकार सज्जित होकर सब हाथ-में-हाथ देकर नाचती-कूदतीं और गीतों से तमाम वायुमण्डल को प्रतिध्वनित कर देतीं।

पहले दिन जब रंपो ने उसे इस तरह सुसज्जित देखा तो उसने उसकी तमाम साज-सज्जा निकालकर फेंक दी, "नहीं बेटी, ऐसा नहीं

करते, यह हमारे धर्म के बिल्कुल प्रतिकूल है।"

"क्यों माँ! इसमें ऐसी पाप की बात क्या है?"—राजकुमारी ने पूछा।

सब संगिनियाँ भी अपनी-अपनी साज-सज्जा खोलकर नंगी हो गई। रंपो ने उत्तर दिया, "किसी चीज़ को छिपा देना ही तो पाप है। भगवान् ने हमें जैसा उत्पन्न किया है, हमें वैसा ही रहना चाहिए। उसकी रचना के विरुद्ध हम जो-कुछ करते हैं, वह सभी कुछ पाप है। उसकी इच्छा से बढ़कर कुछ करना उसका अपमान करना है।"

राजकुमारी बड़े सोच में पड़ गई। उसके भीतर की कामना अभिव्यक्ति न पाकर उसकी बेचैनी में बदल गई।

"यह सब उन नागरिकों का पाप है।"

"कौन नागरिक?"—राजकुमारी बहुत दिनों से उन नागरिकों के बारे में सुनती चली आ रही थी।

"दूर समुद्र के किनारे वे लोग रहते हैं। वे बड़े मायावी हैं, धरती पर वे मकान बनाकर रहते हैं, आग जलाकर उसके धुएँ में वे मांस भूनकर खाते हैं, समुद्र में उनके जहाज़ चलते हैं। ओह! वे बड़े भयानक हैं। उनकी बात भी करनी उचित नहीं।"

राजकुमारी के भीतर उन्हें देखने की वासना जाग पड़ी। वह बोली, "माँ, एक दिन देखना चाहिए उन्हें।"

"नहीं, नहीं—वे तुझे खा जावेंगे।"

राजकुमारी ने निर्भय होकर कहा, "नहीं माँ, अब तो मैं बड़ी हो गई हूँ।"—वह हठ करने लगी।

"मैं तुझे आज्ञा देने वाली कोई नहीं हूँ। तू स्वामी जी के पास जब एक-दो साल में चली जायगी तब जो तेरे मन में हो तू करना। वहाँ उन नागरिकों का आना-जाना है ही, वहीं उनको देख लेना।"

यौवन के प्रकाश में पैर रखते ही उस वनवासिनी राजकुमारी की अनेक शंकाएँ बढ़ गईं। उसके मानसिक चित्रों को पग-पग पर

विरोध मिलने लगा। वह जो-कुछ करना चाहती, उसे नहीं करने दिया जाता। इन कारणों से जो गिरि-वन उसे अत्यन्त प्रिय थे, वे उतने ही कठोर लगने लगे।

वनवासी युवकों का समूह उसकी ओर बढ़ने के लिए आपस में स्पर्धा करने लगा। वे उसे आकर्षित करने के लिए भाँति-भाँति के उपाय करते। ऐसी कोई रात नहीं जाती थी, जब उनमें से कोई-न-कोई उसकी गुफा के बाहर सारी-सारी रात गीत न गाता रहता हो। राजकुमारी उनकी कुछ भी परवाह नहीं करती थी।

उस गोरी युवती द्वारा किया गया यह अपमान उन जंगली युवकों को असह्य हो उठा। उन्होंने मंत्रणा कर उसे पराभूत करने का निश्चय किया।

जंगलियों के सरदार का बेटा बोला, "इस गोरी छोकरी ने हमारी जाति की तमाम पुरानी रीतियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। ऐसा कहाँ होता था पहले? युवक-युवतियाँ सभी आपस में मिल-जुलकर काम करते थे। यह तमाम युवतियों का एक गुट बनाकर उन्हें अलग ले जाती है। इसने उनको सिखा-सिखाकर हमारे बिल्कुल खिलाफ़ कर दिया है।"

दूसरा बोला, "ले जाने दो कब तक ले जावेगी? हम पुरुष हैं, हमको क्या उनके पास जाकर उनकी संगति की भीख माँगनी उचित है?"

तीसरा बोला, "मैं जंगल का सबसे सुन्दर गायक हूँ, मेरे गीतों से तमाम पशु-पक्षी भी रीझ जाते हैं। मैं इतने दिनों से इसकी गुफा पर गीत गाता हूँ और इसकी नींद ही नहीं टूटती।"

सरदार का बेटा कहने लगा, "यह न जाने कौन है? हमें तो जान पड़ता है हमारे लिए कोई धोखा रचा जा रहा है। यह गोरा रंग हमारी श्यामता को गँदला कर देने को आया है, इसका कोई उपाय होना चाहिए।"

एक अन्य ने उसका विरोध किया, "यह स्वामी जी की लड़की है, स्वामी जी हमारे हितचिंतक हैं। ऐसी बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिए। वह जान-बूझ कर ही किसी के गीतों का उत्तर नहीं देती। स्वामी जी

ने यह कठोर आज्ञा दे रक्खी है उसे कि वह किसी काले चमड़ेवाले से विवाह नहीं करेगी ।"

"तो वह आजन्म कुमारी ही रहेगी क्या ?"

"नहीं, उसके लिए कोई गोरे चमड़ेवाला ही आवेगा।"

सरदार का बेटा उत्तेजित होकर कहने लगा, "बस तो फिर हम सब बँधकर राजा के यहाँ गुलाम बना दिये जावेंगे। इससे अच्छा है, अभी इसको खत्म कर दिया जाय।"

सबने समझा-बुझाकर सरदार के बेटे का क्रोध शान्त कर दिया। रंपो का लड़का भी था उनमें। उसने घर जाकर यह बात अपनी माँ से कह दी। माँ बड़ी चिन्ता में पड़ गई। स्वामी जी की उस धरोहर को जल्दी ही वहाँ सौंप आने के लिए उसने संकल्प किया।

इधर उस वनवासिनी को वह अज्ञात राजनगर अपनी ओर खींचने लगा और उधर उस राजभवन की रानी की कामना उन गिरि-काननों में भटकने लगी। एक दिन उसने महाराज से कहा, "आप आखेट के बहाने भी उधर नहीं जा सकते ?"

"नहीं रानी, उन जंगलियों के साथ हमारे पूर्वजों की एक सन्धि है—वे समुद्र-तट का स्पर्श न करेंगे और हम कभी गिरि पर चढ़ने की चेष्टा न करेंगे।"

"सन्धि का क्या कोई लेख है ताम्रपत्र में या शिला में ? वे जंगली क्या पढ़े-लिखे हैं ?"

"मानव-धर्म ही सन्धि का साक्षी है—नहीं तो क्या सन्धि के पत्र तोड़कर नष्ट नहीं कर दिये जाते ? उस सन्धि की एक वंशानुगत भावना बन गई है। हम उन नदियों के पार नहीं जाते जिन्होंने उस प्रदेश के चरणों को निरन्तर धोना अपना गुण बनाया है, और वे भी कभी नीचे नहीं उतरते।"

"स्वामी जी की गुफा ?"

"केवल वही एक अपवाद है। सरोवर के किनारे की उस गुफा में

हम जा सकते हैं। वहाँ भी अगर कोई वनवासी मौजूद होगा तो हमारा प्रवेश नहीं हो सकता और हम वहाँ होंगे तो वह भी नहीं आवेगा।"

"यह बड़ी विचित्र सन्धि है। उस सन्धि पर बैठा हुआ यह नागा, यही मेरी अशान्ति का कारण है। राजन, अभी यह और कितने वर्ष जीवित रहेगा?"

"ऐसी बातें क्यों करती हो रानी? आयु का लेख कौन जानता है? न जाने उनसे पहले हमारी ही बारी हो।"

रानी चुप हो गई। वासंथी ने भी अब यौवन की उमंग-भरी धरती पर चरण रख दिये थे। उसकी क्रीड़ा-चपलता में कुछ गंभीरता का उदय हो गया था। वह आकर बोली, "महारानी जी, मछुए कह रहे है—आकाश में कोई नया तारा उदय हुआ है। दुनिया में कोई भारी उलट-पलट होने वाली है।"

"वे मूर्ख लोग ऐसा ही कहते हैं।"—महाराज ने जवाब दिया।

वासंथी बोली, "महाराज, जब से हमारा वह रेडियो खराब हो गया है हम एक तरह से दुनिया से कट-से गये हैं। उसकी मरम्मत करने को भेज दीजिये अब जो भी जहाज़ आवे उसके द्वारा।"

"राजकुमारी, मुझ से पहले हमारे पूर्वजों में से कोई भी रेडियो को नहीं जानता था। हम भी तो अभी चार-पाँच ही वर्षों से इसके अभ्यासी हुए हैं। जिस तरह तमाखू का एक अमल है, ऐसे ही इस रेडियो का भी। बेटी, पहले हमें इस तरह दुनिया से कटे रहने का कोई ध्यान ही नहीं होता था। यहीं पर यह देखो, हमारे द्वीप का यह गिरि-प्रदेश—इसके हमारे बीच में कोई संसर्ग है?"

वासंथी बोल उठी, "महाराज, इस बार ऐसा रेडियो आप नहीं मँगा सकते क्या जो उन जंगलियों की बातें भी हमें सुना दिया करे?"

महाराज ने जवाब दिया, "ऐसा भी कहीं होता है? जहाँ की बात सुननी होती है वहाँ रेडियो-स्टेशन बनाया जाता है। खास यन्त्रों के सामने, जिसकी बातें फैलानी होती हैं, वह बोलता है। तब जहाँ भी

रेडियो होगा, वह उन बातों को पकड़ लेता है।"

"लेकिन मैंने सुना है ये जंगली लोग बिना रेडियो के ही हमारे राजभवन की तमाम बातें सुन लेते हैं।"—वासंथी डरती हुई बोली।

राजा और रानी दोनों ने इस बात का विरोध किया, "कोई नहीं सुन सकता। हमारे आश्रय में रहनेवाले ये मजदूर और मछुए ऐसे ही उड़ा देते हैं। इनमें उनका अंश मौजूद है, इसलिए उनकी तारीफ करते हैं।"

वासंथी ने फिर पूछा, "स्वामी जी तो सुन लेते हैं न ?"

इस बार केवल रानी ने विरोध किया, "बहुत देखे थे ऐसे सुनने वाले ? बदमाश, पाखण्डी, लुच्चा, लफंगा ···"

राजा ने रानी के अधरों पर हाथ रख दिया, "हैं ! हैं ! ऐसा अनर्थ क्यों मुख से निकालती हो ? उनके भीतर सभी शक्तियाँ हैं। वे क्यों नहीं सुन सकते ? दूर-श्रवण ही नहीं वे दूर-दर्शन भी कर लेते हैं।"

"मुझे तो कभी ऐसी कोई साक्षी नहीं मिली।"—रानी ने कहा।

"तुम उनकी परीक्षा की नीयत से एक मलिन भावना लेकर उनके पास जाती हो, इसीलिए तुम्हें उनकी कोई शक्ति नहीं दिखाई देती। बालकों का सा हृदय लेकर जाओ तो कुछ दूसरी ही बात देखोगी।"

"महाराज, आपकी मैं सब बातें मानने को तैयार हूँ। सिर्फ इस नागा के बारे में ही मेरे और आपके विचारों में गहरा मतभेद है।"

"अगर तुम्हारी उनके लिए शुद्ध बुद्धि हो जाय तो तुम्हें जीवन में शान्ति मिल जाय।"

वासंथी ने कहा, "अच्छा महाराज, अब मैं लगा दूँगी इस बात का पता।"

"जिन लोगों की उनके लिए कोई भक्ति नहीं होती, वे उनसे हमेशा अपनी शक्ति को छिपा लेते हैं।"

"मुझे तो उन्हें देखकर बड़ा डर लगता है और मेरा डर बढ़ता जा रहा है। मैं कभी न जाऊँगी महाराज, उसके पास।"

१२

राजा का वध

उस दिन महाराज धनुष-बाण धारण कर आखेट को चल दिये। जाते समय रानी ने कहा, "नागा की गुफा में जाकर मेरी लड़की का पता भी लगाना।"

महाराज इस विचार से तो नहीं केवल स्वामी जी के दर्शन करने को जाना चाहते थे। रानी ने यह कामना भी उनके साथ कर दी।

व्यथित और शंकित चित्त महाराज धीरे-धीरे स्वामी जी की गुफा के निकट पहुँचे, पत्तों की आड़ से उन्होंने एक नंगी, निराभरणा नारी को देखा। वे लौटने का विचार कर रहे थे, सहसा उन्हें कुल्लूटक ने पुकारकर कहा, "आता क्यों नहीं, यहाँ कोई नहीं है। अब वह चली गई।"

महाराज ने जाकर कुल्लूटक के पैर छुए। वह बोला, "उस लड़की की माँ आई थी अभी यहाँ। अब उसका उन वनवासियों के बीच में रहना बड़ा असम्भव हो गया है।"

"क्यों महाराज?"

"उसके खून में सभ्यता के संस्कार हैं न? वह नये-नये क़ायदे निकालती है, जो वहाँवालों को बिल्कुल पसन्द नहीं हैं।"

"आपके आश्रम में भी तो वह गड़बड़ ही करेगी!"

"मैं यहाँ साध लूँगा उसे।"

"अब कब आवेगी वह यहाँ?"

"तमाम नवयुवक वहाँ उसके विरुद्ध हो गये हैं।"

"क्यों?"

"वह किसी के गीतों का उत्तर नहीं देती। वहाँ के नवयुवकों के लिए इससे बढ़कर मान-हानि की और कोई दूसरी बात नहीं है। उसकी

माँ यही कहने यहाँ आई थी उन सब नवयुवकों ने उसे पकड़कर किसी ऊँचे पर्वत से नीचे गिरा देने का षड्यन्त्र रचा है।"

"तब उसे शीघ्र ही यहाँ बुला लीजिये महाराज!"

"हाँ, उसने तो वहाँ की और लड़कियों को भी यह सिखा दिया है कि किसी के गीतों का जवाब न दें। यह तो एक अनहोनी बात है। वह उन लोगों के बीच में से विवाह की प्रथा उड़ा देना चाहती है।"—हँसकर वह नागा बोला, "बात तो वह ठीक कहती है, जब वे लोग अपना सब कुछ प्रकृति को समर्पित किये बैठे हैं तो फिर विवाह की प्रथा ही उन्होंने कहाँ से सीख ली? जैसे प्रकृति में और जीव रहते हैं, ऐसे ही वे भी रहें।"

राजा ने घबराकर पूछा, "महाराज! उस लड़की का क्या होगा?"

कुल्लूटक बोला, "कैसा क्या?"

महाराज बोले, "अब वह लड़की बड़ी सयानी हो गई होगी। उसका विवाह किससे होगा?"

"जो दूसरों से विवाह न करो कहती है, वह स्वयं कैसे विवाह करेगी?"

"अगर विवाह जरूरी ही है तो किसी वृक्ष या पर्वत के साथ मैं उसका विवाह कर दूँगा और उनके बीच में कभी कोई कलह न होगा। अच्छा अब तू चला जा घर को। यह धनुष-बाण क्यों लाया है?"

"सगुन के लिए मार्ग में कोई आखेट मिल गया तो, उसे मार ले जाने का विचार है।"

"कोई त्योहार है क्या आज?"

"हाँ महाराज।"

नागा महाराज अपनी गुफा के भीतर चले गये। महाराज ने उनके पैर छूकर अपनी राह ली। दूर पर उनके सेवक उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज ने नौकर-चाकरों की कुछ परवा नहीं की और आखेट की धुन में चले गये। लता-वृक्ष, झाड़ियों और शिलाओं के

बीच में -छिपते-प्रकटते न-जाने कहाँ से कहाँ चले गये। कुछ दूर तक सेवक उनका अनुसरण करते रहे, फिर वे भी आपस में एक-दूसरे से विलग हो गये।

राजा एक विचित्र रूप-रंग के पक्षी के कारण भ्रमित हो गये। उनका एक दल-का-दल ही था। राजा ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया था कि एक पक्षी को मारकर अवश्य ले जाऊँगा। वे पक्षी कभी राजा की सीमा पर उड़ते और कभी उन जंगली नागाओं की।

राजा नियम-विरुद्ध काम करना नहीं चाहते थे। नागा लोगों की सीमा में जाकर वे सहज ही एक पक्षी को मार सकते थे। उनकी भूमि पर घने पेड़ थे जिनमें वे पक्षी छिपे जा रहे थे।

फिर तो वे पक्षी दूसरी भूमि पर ही उड़ने लगे और राजा को यह विश्वास हो गया कि वे अब उनकी तरफ नहीं लौटेंगे और कुछ देर बाद उन्होंने यह भी समझ लिया कि वे बिल्कुल ही पहाड़ों की तरफ चले जावेंगे।

राजा ने सोचा, "तीर तो मैं अपनी भूमि पर से छोड़ूँगा। पक्षी आकाश में हैं। आकाश में किसी का क्या? कौन उसको बाँट सकता है? अगर उस पर अधिकार है तो सभी का।"

राजा ने धनुष में चढ़ाये हुए तीर की डोरी कान तक खींचकर तीर छोड़ दिया। झुण्ड में उड़ते हुए पक्षियों में से किसी को तीर लगना ही था, अतः एक पक्षी शरबद्ध होकर भूमि पर गिर पड़ा। राजा का हृदय प्रसन्नता से भर गया।

उसके मन में यह विश्वास दृढ़ हो गया कि उसने उत्सव के सगुन को प्राप्त कर लिया है और अब वर्ष भर उसे हर जगह सफलता प्राप्त होती रहेगी। उसने इधर-उधर देखा। उसके नौकर-चाकरों में से किसी का पता नहीं था। वह कुछ देर अपने आखेट पर दृष्टि गड़ाये, अपने धनुष को भूमि पर टेके विचार-मग्न रहा।

उसने नागा लोगों की सीमा का देखा। उसने अपने मन में कहा,

"अवश्य ही यह भूमि दूसरे की है, लेकिन वहाँ मेरे शर से विद्ध आखेट पड़ा है। उसे मैंने आकाश में मारा है, वह तो मेरा ही है। मैं अगर उसे उठाकर ले आऊँ तो कोई नियम नहीं टूटता।"

बीच सीमा पर एक छोटी-सी नदी बहती थी, बड़ी-बड़ी शिलाएँ उसके बीच में थीं। कभी ज़ोर की वर्षा हो जाने पर उसका विस्तार और गहराई बढ़ जाती थी, नहीं तो शिलाओं की सहायता से वह सदैव ही पार हो जाने योग्य रहती थी।

नदी पर दोनों पक्षों का अधिकार था। शिलाओं पर पैर रखता हुआ राजा दूसरे तट पर की सीमा में जा पहुँचा। उसने अपना धनुष बढ़ाकर आखेट को अपनी ओर खींच लेना चाहा, थोड़ी कसर रह गई थी। राजा शिला से भूमि पर कूद पड़ा।

ज्योंही वह अपने चिरलक्षित शिकार की ओर हाथ बढ़ाना चाहता था कि न जाने कहाँ से एक तीखा विष-बुझा तीर बड़े वेग से आकर उसकी कोख में घुस गया। राजा तीव्र वेदना-भरी चीत्कार छोड़कर मुँह के बल भूमि पर गिर पड़ा। वह अपने आखेट को छू भी नहीं सका था कि स्वयं आखेट बन गया।

तुरन्त ही चार-पाँच नागा-युवक धनुष-बाण हाथों में लिये वहाँ पर आ पहुँचे और उन्होंने राजा को घेर लिया। नागा-सरदार का लड़का बोला, "देखो, कैसा निशाना लगाया मैंने कि फिर दूसरी साँस नहीं ली इसने।"

राजा की कुछ सुधि पलटी। उसने तीर पर हाथ रखकर उसे बाहर की ओर खींचते हुए कहा, "दुष्टो, मैंने क्या बिगाड़ा था तुम्हारा?"

नागा-युवकों ने राजा की भाषा नहीं समझी। एक नागा-युवक बोला, "क्यों रे राजा, तू और भेजेगा अपनी लड़की को हमारे बीच में हमारा भेद लेने को। ले उसी का बदला मिल गया तुझे आज।"

सरदार का बेटा कहने लगा, "यह राजा है? यह चोर है हम कभी भूलकर भी इसकी भूमि पर पैर नहीं रखते और यह हमारी

जमीन दबाने की नीयत से आया है। आज हमने पकड़ लिया। चोर की सजा मौत!"

राजा उनकी भाषा न समझा। वह कराहता हुआ तीर को बाहर निकालने के लिए बार-बार संकेत करने लगा।

उनमें से एक बोला, "यह हड्डी में अटका हुआ तीर आसानी से बाहर नहीं निकल सकता।" कोई उस तीर को बाहर निकालने के लिए राजी न हुआ। किसी के भी हृदय में राजा की उस मृत्यु-वेदना के लिए संवेदना न जागी।

राजा स्वयं ही उस तीर को खींचने लगा। एकाएक आ पड़े हुए उस कल्पनातीत दुख से राजा की बुद्धि का तमाम संतुलन खो गया। फिर तो वह प्रायः अचेत ही हो गया। चारों ओर से उसे घेरकर वे जंगली युवक उल्लसित होकर नाचने लगे।

एक बार फिर राजा ने आँखें खोलकर टूटे हुए स्वरों में कुछ कहा, लेकिन उसके पूरे स्वरों में स्पष्ट भाषा का समझनेवाला भी वहाँ कोई नहीं था। इसके पश्चात् फिर नहीं उठा राजा।

नागा-युवकों को जब यह निश्चय हो गया कि अब राजा खड़ा नहीं हो सकता तो उन्होंने उसकी कोख में घुसे हुए तीर को बाहर निकाला और वे उसे लादकर कुल्लूटक की गुफा पर ले गये।

गुफा के द्वार पर राजा की लाश को रखकर तमाम नंगे युवकों ने वहाँ भी अपने धनुष-बाण, ढाल और भाले हाथों में लेकर नाचना-गाना शुरू किया। भीतर से कुल्लूटक ने बाहर आकर कहा, "क्या शोर मचाया है रे?"

"महाराज, हम आपके पास एक चोर को पकड़ लाये हैं इन्साफ के लिए।"—नागा-सरदार के लड़के ने कहा।

बड़े आश्चर्य से कुल्लूटक ने भूमि पर पड़े हुए राजा को देखकर कहा, "अरे यह तो इस द्वीप का राजा है! अगर मुझे यह मालूम होता तो मैं इसे सीधे इसके घर भेज देता।"

"यह सीधे अपने असली घर ही पहुँच गया महाराज !"—एक ने कहा।

"ओ हो जान पड़ता है यह किसी ऊँचाई पर से ठोकर खाकर गिर पड़ा।"—कुल्लूटक बोला।

सरदार के बेटे ने कहा, "नहीं महाराज, आप हमें झूठ बोलने का बढ़ावा दे रहे हैं, लेकिन जंगली लोग बिल्कुल घृणा करते हैं ऐसी बातों से। यह तो राजा-जैसे छतों के नीचे रहनेवाले, दीपक जलानेवाले, पका खाना खानेवाले, और कपड़े पहननेवालों के काम हैं। देखिए स्वामी जी, इन श्रीमान् को ! ये सभ्यता के अवतार, हम जंगलियों की हँसी उड़ानेवाले, कैसे असहाय होकर आपके चरणों में पड़े हैं ! इनकी यह असलियत कभी देखी आपने ?"

कुल्लूटक चिल्ला उठा, "क्या तुमने इनकी हत्या कर डाली ? बहुत बुरा काम कर डाला ! अब मैं कैसे उन लोगों को अपना मुँह दिखाऊँगा ?"

सरदार का बेटा बोला, "महाराज, यह हमारी भूमि पर चढ़ आया। क्या यह हमारे पूर्वजों से चली आती हुई सन्धि नहीं है कि हम में से जो भी एक दूसरे की भूमि पर पैर रक्खेगा—उसका खून कर दिया जायगा ?"

"माना, ऐसी सन्धि है। लेकिन आज तक मेरी याद में कभी ऐसी भयानक घटना नहीं हुई। क्या किसी ने भी अपने पैर एक-दूसरे की भूमि पर नहीं रक्खे होंगे ? बेटा, तुम्हारे खून में बहुत गरमी है। तुमने द्वीप के इन दोनों हिस्सों के बीच में कलह के बीज बो दिये। तुमने राजा को पकड़कर मेरे पास लाना था।"

दूसरे युवकों ने कहा, "महाराज, अब तो जो होना था सो हो गया। आपको हमने इसकी खबर कर दी। अब हम इस लाश को ऊपर ले जाते हैं।"

"ऊपर नहीं ले जाने पाओगे।"—कुल्लूटक बोला।

वे सब नंगे युवक एकमत होकर बोले, "महाराज, यह हमारी विजय है, हम इसे सारी जाति को दिखाकर अपने देवता और पितरों के मन्दिर में भी ले जावेंगे ताकि इसकी आत्मा बाद को हमारे अनिष्ट का कारण न हो।"

"नहीं, तुम राजा का वध कर सकते हो, लेकिन उसकी लाश ले जा नहीं सकते। इस मिट्टी पर इसके वारिसों का ही अधिकार है। इसकी आत्मा तो वहीं जाने पर शान्त होगी। तुम अगर हठ करके इसे ले गये तो समझ लो तुम्हारी खैर नहीं। मैं कुछ नहीं कहता, तुम्हारे जो मन हो वही करो।"—स्वामी जी अपनी गुफा के भीतर चले गये।

नवयुवकों ने आपस में मन्त्रणा की और सरदार का बेटा बोला, "महाराज, हमें आपकी आज्ञा मान्य है, हम राजा को यहीं छोड़ जाते हैं।"

वे सब नाचते-गाते पहाड़ों को चले गये। बीच-बीच में चिल्लाते जाते थे—'राजा ने सन्धि तोड़ दी! राजा मर गया!'

राजा के दोनों नौकर उसे ढूँढ़ते ही रह गये थे। कुछ देर बाद उन्होंने नागा-युवकों का शोर सुना और वस्तु-स्थिति का एक अंदाज लगाया। वे सिर पर पैर रखकर भागे राजमहल की ओर। उनकी मन्त्री से भेंट हुई। वे रोते हुए बोले, "सरकार, बड़ी भयानक खबर है।"

"क्या खबर है? महाराज कहाँ हैं?"—मन्त्री ने पूछा।

उनमें से एक बोला, "उन्हीं का तो पता नहीं है।"

दूसरे ने कहा, "उन्हीं को तो पकड़कर नागा लोग ले जा रहे थे।"

"उन्हें पकड़कर नागा लोग ले जा रहे थे! उनकी ऐसी हिम्मत हो गई? तुम क्या होश की बातें कर रहे हो?"

"हाँ सरकार!"

एक दासी दौड़कर महारानी को यह सूचना दे आई। रानी उसी समय रोती-बिलखती मन्त्री के पास जा पहुँची और बोली, "महाराज कहाँ हैं?"

मन्त्री बोला, "महारानी जी, ये लोग कुछ अधूरी-सी बात कह रहे है। मैं स्वयं जाकर इस बात का पता लगाता हूँ।"

रानी कहने लगी, "फिर देर क्यों कर रहे हो? मेरे मन में कई-कई आशंकाएँ बनती और बिगड़ती जा रही है।"

"महारानी जी, मैंने कुछ अंगरक्षक बुलवाये हैं, उनसे सशस्त्र होकर आने को कहा गया है। वे अब आते ही होंगे। अकेले ही चला जाना ठीक न होगा। मालूम नहीं उन्होंने क्या दुरभिसन्धि की है।"

रानी आकुल होकर कहने लगी, "जी चाहता है, मैं भी तुम्हारे साथ-साथ चलूँ।"

"आपका जाना कोई अर्थ नहीं रखता।"

इसी समय रोता हुआ एक मछुवा आकर मन्त्री और रानी के सामने खड़ा हो गया और जोर-जोर से फूट-फूट कर रोने लगा। दोनों उससे पूछने लगे, "क्या बात है?"

वह बोला, "कुल्लूटक स्वामी ने मुझे भेजा है।"—वह फिर रोने लगा।

रानी ने उसके गले में लटकती हुई कौड़ियों की माला को खींचकर कहा, "कहता क्यों नहीं, बात क्या है?"

रोते-रोते ही उसने अस्पष्ट वाणी में कहा, "स्वामी जी कहते हैं अपने राजा को ले जाओ।"

रानी सिर पकड़कर भूमि पर बैठ गई, "अन्त में वही हुआ!" वह फिर इधर-उधर दौड़ने-भागने लगी, "हे भगवान्! मैं अब किधर जाऊँ?"

मन्त्री ने पूछा, "महाराज वहाँ क्या कर रहे हैं।"

"वे कुछ नहीं कर रहे है, जमीन पर पड़े है।"—मछुवे ने फिर रोते हुए कहा।

रानी रोते-रोते पैदल ही कुल्लूटक की गुफा की ओर दौड़ गई। मन्त्री के अंगरक्षक आ गये थे। वे भी सब रानी के पीछे-पीछे दौड़ने

लगे। और भी कुछ सेवकों ने वैसा ही किया।

सबसे पहले सेवक वहाँ पहुँच गये थे। उन्होंने देखा, उनका राजा असहाय होकर पड़ा है और कुल्लूटक स्वामी उनके पास खड़े हैं। वे कहने लगे, "क्यों रे! अभी तक क्यों नहीं आये तुम? आकाश और धरती के जानवरों से बचाना पड़ रहा है मुझे तुम्हारे राजा को। अगर वे इस पर टूट पड़ें तो कुछ ही देर में इसे पहचानना भी मुश्किल हो जायगा। और लोग नहीं आये?"

सेवक रोते-रोते बोले, "आ रहे हैं महाराज!"

"जाओ इसे ले जाओ, भागो। यहाँ रोने का क्या काम है? मेरे काम में बाधा न हो। अगर वैसे नहीं ले जा सकते हो तो जाओ एक-एक टाँग पकड़कर घसीटकर ले जाओ इसे। कटे हुए पेड़ के तने की तरह अब इसके कोई दर्द थोड़े होने वाला है।"—कुल्लूटक स्वामी यह कहकर अपनी गुफा के भीतर अदृश्य हो गये।

ये चारों सेवक एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। विश्व-भाषा में जो वे रो रहे थे, वह भी कुल्लूटक स्वामी के डर से उन्होंने बन्द कर दिया। धीरे-धीरे कुछ देर में सभी आ पहुँचे और सब अपनी स्वामि-भक्ति जताने को रोने लगे। रानी ने तो राजा की छाती पर अपना सिर पीटते हुए आकाश ही गुंजा दिया।

मन्त्री ने उसे धीरज बँधाते हुए कहा, "रानी जी, रोने से कोई फल न निकलेगा। इससे मृतक की आत्मा को कष्ट ही होगा। चलिये, हम इन्हें ले जाकर अन्तिम संस्कार करें।"

"हमें सबब भी तो ज्ञात हो। कहाँ है वह स्वामी? उसी ने मारा है हमारे महाराज को। वही है मेरा शत्रु।"

कुल्लूटक स्वामी नंग-धड़ंग गुफा के भीतर ही से बोला, "मैंने कुछ नहीं किया।"

रानी शाकाचेरा में बोली, "कहाँ है तू? सामने क्यों नहीं आता?"

"एक ही बात तो है, सामने आ जाऊँगा तो फिर तू आँखें बन्द कर मुझे ओट में कर लेगी। इसीलिए रहने दे मैं जहाँ पर हूँ। मतलब की बात कह और सुन।"

"फिर किसने मारा है इन्हें ?"

"नागा युवकों का तीर लग गया। यह मर गया। जाओ, ले जाओ इसे अपनी राजधानी में। वहाँ और भी तो होंगे रोनेवाले।"

मन्त्री बोला, "स्वामी जी, आपके रहते यह कैसा अन्याय हो गया ?"

"तुम मन्त्री हो, जाओ किसी को राजा बनालो और मिलकर कर लेना न्याय। लेकिन इस वक़्त इस मरे हुए को ठिकाने लगाओ। यही मुख्य कर्तव्य है।"

सभी ने यही उचित समझा और सभी रोते-बिलखते राजा को कन्धों पर उठाकर राजधानी को चले गये।

१३

मन्त्री समाप्त

समुद्र के किनारे कर्णद्वीप के मृतक राजा का दाह-संस्कार किया गया। राजा की समस्त अर्धनग्न प्रजा ने वहाँ पर उपस्थित होकर कई दिन तक शोक मनाया। प्रजा अपने मृतकों को धरती के भीतर गाड़ती थी। दाह-संस्कार की प्रथा राजघराने और कुछ राज-कर्मचारियों तक ही सीमित थी। बारह दिन तक रानी ने काले वस्त्र पहनकर एक अँधेरे कमरे में राजा के लिए शोक मनाया। बारहवें दिन राजभवन में बड़े विशाल भोज का आयोजन किया गया। द्वीप में राजा की तमाम प्रजा को निमन्त्रण दिया गया। भोजन के उपरांत ख़ास-ख़ास आदमियों की एक सभा हुई। सभा का मुख्य उद्देश्य था, द्वीप का आगामी राजत्व कैसे हो?

सबसे पहले रानी बोली, "महाराज की जो अकाल-मृत्यु हुई है वह मेरे लिए बड़ी दुखदायिनी है। जी तो यही चाहता है कि अपना शेष जीवन मैं उन्हीं के शोक में बिताती रहूँ। लेकिन मेरे साथ द्वीप को विधवा नहीं होना है। बारह दिन तक मैंने महाराज की इस मृत्यु पर विचार किया। उनकी आत्मा प्रतिहिंसा चाहती है। निरपराध की मृत्यु प्रतिहिंसा चाहती है। जब तक वह पूर्ण न होगी मृतात्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। हमारा सबका यह कर्त्तव्य है।"

प्रजा के कुछ लोगों ने कहा, "महारानी जी, लेकिन सबसे पहले हमें चाहिए यह कि जो राजसिंहासन सूना हुआ है, इसको शीघ्र ही भरा जाय। राजतिलक की रस्म पूरी हो तो फिर सब कुछ हो जायगा, हम उन जंगलियों से बदला लेने को तैयार हैं।"

रानी बोली, "महाराज के साथ इस राज्यासन पर क्या मैं

अभिषिक्त नहीं हो चुकी हूँ ? फिर इसकी क्या आवश्यकता है। मैं तो समझती हूँ राजतिलक में जो धन और समय का अपव्यय किया जाय उसका उपयोग सेना के संगठन और अस्त्र-शस्त्र के संग्रह में क्यों न किया जाय ? फिर महाराज का उत्तराधिकारी किसको बनाया जाय, यह भी एक प्रश्न है।"

मन्त्री ने कहा, "राजकुमारी वासंथी के सिवा और कौन उनका उत्तराधिकार बन सकता है ?"

रानी ने अस्वीकार कर कहा, "नहीं, मैं उसे अभी छोटी ही कहूँगी।"

"मेरा मतलब है राज-काज तो आप ही चलावेंगी, शोभा और सिंहासन की पूर्णता के लिए ही मैंने ऐसा कहा है।"—मन्त्री बोला।

रानी ने बड़े संशय से मन्त्री की ओर देखा, "नहीं मन्त्री जी, मेरी बात पर ध्यान दो। महाराज की आत्मा भटक रही है, तुम सबने उनका नमक खाया है। सिंहासन शून्य नहीं है। मैं बैठी हूँ उसमें। मेरे मुंह से स्वर्गीय महाराज की ही वाणी निकल रही है।"

मछुओं के सरदार जुकू ने कहा, "महारानी की जय हो !"

गाँव का मुखिया बासो भी उठ खड़ा हुआ। उसने दोनों हाथ ऊँचे करके कहा, "महारानी जी हमें जो हुक्म देंगी हम उसे मानने को तैयार हैं। जय हो महारानी जी की !"

महारानी का मुँह खिल उठा, "तुम्हारे इन वचनों से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। बड़ा भरोसा हुआ है। मैं अपने कर्तव्य की पूर्ति में सफल हो सकूँगी। सैकड़ों वर्षों से हमारा इस द्वीप पर अधिकार है। कभी हमने इन जंगली मनुष्यों से कोई असभ्य व्यवहार नहीं किया। न हम उनकी बोली समझते हैं और न वे हमारी। हमारा खान-पान, आचार-विचार सब अलग है। कोई संसर्ग, कोई सम्बन्ध हमारा-उनका नहीं। पूर्वकाल से चली आती हुई जनश्रुति ही हमारे उनके बीच में सन्धि है। वह सन्धि है वे हमारी सम भूमि पर नहीं उतरेंगे और

हम उनके गिरि-पर्वतों का आरोहण नहीं करेंगे । क्या हमने कभी इस सन्धि को भंग किया है ? कभी उनकी किसी धरती को दवाने की चेष्टा की या उनकी पैदावार या पशुओं के आहरण के उपाय किये ?"

"नहीं महारानी जी, कभी नहीं। हमारे क्या कमी है ? समुद्र में मछलियों का अनन्त भण्डार है और हमारी धरती पर अनगिनती फलों के वृक्ष ।"

"फिर क्यों उन्होंने हमारे महाराज को अपने विष-बुझे तीर का लक्ष्य किया ? हम सदा से ही शान्तिप्रिय शासक रहे हैं। कभी उग्रता का विश्वास नहीं किया । लेकिन जान पड़ता है अब हमें कुछ सैन्य-संगठन करना ही होगा । और वह तुरन्त ही हो जाना चाहिए। क्यों मन्त्री जी ?"

"महारानी जी, उसके लिए तो पलटन के किसी अनुभवी ऑफीसर की आवश्यकता होगी ।"

"नहीं, तुम्हें स्वयं करना होगा। सेना में प्रजा के सभी नवयुवक भरती हो जावेंगे।"

"इनके लिए शस्त्र ?"

जो-कुछ हैं वे क्या पर्याप्त न होंगे ? बहुत शीघ्रता करनी है हमें। अब एक भी दिन न खोया जायगा। हमारे महाराज का वध कर उन जंगलियों का बड़ा साहस हो गया है । वे किसी दिन सब मिलकर हमारा वध न कर डालें। इसलिए सावधान हो जाओ।"

"नहीं महारानी जी, कुक्कुटक स्वामी के रहते ऐसा कभी नहीं हो सकता।"—मन्त्री ने कहा।

"अरे यह स्वामी उन जंगलियों से मिला हुआ है, तभी तो यह उन्हीं की तरह नंगा और वैसे ही रहता और खाता-पीता है । इसकी गुफा के निकट ही महाराज का वध कर दिया गया और तुम कहते हो उसके रहते कोई अन्याय न होगा।"

मन्त्री बोला, "महारानी जी, मेरी क्षुद्र मति में सेना के संगठन

से पहले एक दिन स्वामी जी से पूछ लिया जाय। मैं सेना लेकर उन जंगलियों पर आक्रमण करने को बुद्धिमानी नहीं समझता। हमें उनके निवास का कोई पता नहीं है, न उनके मार्गों से ही परिचित हैं। कुल्लूटक स्वामी हमारे महाराज पर बड़ी कृपा रखते थे। उनके समक्ष हमारे मालिक पर कोई अत्याचार हुआ होता तो वे जरूर हमें बताते।"

"नहीं, नहीं, यह उसी धूर्त का षड्यन्त्र है, उसी ने हमारे स्वामी का वध कराकर मुझे ही नहीं इस सारे द्वीप को विधवा बनाकर रख दिया।"—रानी ने आँखों में आँसू भरकर कहा।

बासो हाथ जोड़कर कहने लगा, "रानी जी, आपको उन महात्मा के खिलाफ़ कुछ नहीं कहना चाहिए। उनके दिल में हमारे और जंगल निवासियों के बीच में कोई भेद-भाव नहीं है। वे सबका ही भला चाहते हैं।"

जूफ़ू बोला, "महारानी जी, स्वामी तो महाराज के ऊपर बड़ी कृपा रखते थे और महाराज भी जब समय मिलता था तब जरूर ही उनके दर्शनों को चले जाते थे। बात छिपाने से क्या होता है, अब तो सभी जानते हैं, उन्होंने अपनी पहली सन्तान ही उन्हें भेंट दे दी। यह क्या साधारण बात है?"

बासो ने निवेदन किया, "जुफ़ू, अब तू ने बात खोल दी है तो मुझे भी कहना ही पड़ गया। वह राजकुमारी ही महाराज के वध का कारण हो गई।"

रानी ने बड़ी आकुलता से पूछा, "कैसे कहते हो तुम यह?"

"तमाम गाँववालों के बीच में ऐसी ही चर्चा होती है। रानी जी, आप कहाँ उनकी बातें सुन सकती हैं। हमें सब मालूम रहती हैं और बिना किसी कारण के कोई अफ़वाह नहीं फैलती।"

"क्या कहते हैं गाँववाले?"—मन्त्री ने पूछा।

"एक बात तो मैं नहीं कह सकता। दूसरी बात कहूँगा, नागा

लोगों ने उस लड़की के रंग से समझ लिया है कि वह राजघराने की है। रंग ही नहीं उसकी तमाम हरकतें भी तो उन वनवासियों के बिल्कुल ही खिलाफ़ हैं। वे समझते हैं वह लड़की उनका भेद लेने के लिए, उनकी भाषा सीखने के लिए, वहाँ भेजी गई है।"

मन्त्री ने फिर पूछा, "भेद कैसा ?"

"उनके रहन-सहन का, किसी दिन उन्हें बाँधकर गुलाम बना लिया जाय और उनकी धरती पर अपना कब्ज़ा कर लिया जाय।"—बासो ने जवाब दिया।

रानी ने कहा, "वास्तव में हमारे मन में ऐसा लालच कहाँ है।"

मन्त्री ने पूछा, "जब उन जंगलियों की भाषा गाँववाले नहीं समझते तो उन्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"वे स्वामी जी की गुफा में जाते हैं। स्वामी जी ने कहा होगा, वे तो दोनों की भाषा समझते हैं।"—बासो बोला।

मन्त्री बोला, "महारानी जी, बिना स्वामी जी के पास गये इन बातों का निराकरण न होगा।"

"मैं तो अब कदापि उसका मुँह न देखूँगी।"

बासो और जुकू दोनों चिल्लाए, "महारानी जी, ऐसा न कहिए।"

"क्या डर है मुझे अब उसका ? वह मेरा सबसे बड़ा अनिष्ट कर चुका है।"

"नहीं, नहीं, हम सब आपकी प्रजा आपकी सन्तान हैं। भूचाल, आग, पानी, बिजली—इनमें से सब या एक ही हमें तहस-नहस कर देने के लिए काफ़ी है।"—एक बूढ़े ने कहा।

दूसरा दिन नियत किया गया। कुछ राज-कर्मचारी, मछुओं का सरदार, गाँव का मुखिया तथा दो-चार और गाँववालों को साथ लेकर कुल्लूटक की गुफा में मन्त्री का जाना तय हुआ।

स्वामी जी ने दूर ही से उस भीड़ को आती हुई देखकर कहा, "क्यों रे ! क्या तुम सब आज मुझे पकड़कर ले जाने आये हो ?"

मन्त्री ने उनके पैर छूकर कहा, "नहीं महाराज, हम लोग आपके सेवक हैं। हम आपको कहाँ पकड़कर ले जावेंगे ?"

"अपनी रानी के पास । वह सोचती होगी मैंने ही उसके राजा का वध कराया है।"

मन्त्री बोला, "नहीं महाराज !"

"तो कोई और सोचता होगा ऐसा ?"

सबने जवाब दिया, "नहीं महाराज, ऐसा पापी कौन होगा ?"

"फिर तुम क्यों आये हो यहाँ ?"

मन्त्री ने कहा, "आपसे कोई बात नहीं छिपाई जा सकती। हमें यह सन्देह हुआ है, कि पहाड़ में रहनेवाले इन नागा लोगों ने किसी दुरभिसन्धि के लिए हमारे महाराज को मार दिया है । वे इस झगड़े को आगे बढ़ाना चाहते हैं। हम लोग भी क्षत्रिय हैं। रण से कभी नहीं डरेंगे। हम उनका सामना करने को तैयार हैं।"

कुल्लूटक मन्त्री की पीठ थपथपाकर बोला, "तुम बड़े बहादुर हो। लेकिन ज़्यादे बातें तो मैं जानता नहीं हूँ। यह द्वीप असल में उन्हीं का है। तुम सब-के-सब बाहर से आये हो।"

"महाराज, यह तो आप सैकड़ों वर्ष पुरानी बात कह रहे हैं।"

"सच्चाई क्या प्राचीन होने से कपड़े की तरह जीर्ण और मैली हो जाती है ? तू बड़ा होशियार है मन्त्री। मन्त्री होशियार ही होते हैं। साधारण-बुद्धि मन्त्री हो ही नहीं सकता। तू पुराने सत्य को फटे कपड़े की तरह मानता है। कपड़ा फट जाता है, मैला हो जाता है और उसमें जुएँ अपना घर कर लेती हैं, इसीलिए मैं नंगा ही रहता हूँ । फिर क्या मंशा है तुम्हारी ?"

मन्त्री बोला, "महाराज, आप आज्ञा देते हैं तो हम लोग कहीं चले जायँ ?"

"बच्चों की-सी बात मत करो, तुम मन्त्री हो। कहाँ चले जाओगे ? ऐसी धमकी किसे दिखाते हो ? अगर त्याग की ऐसी ही भावना तुम्हारे

भीतर जाग उठी है तो एक बात करो जिससे साँप भी मर जाय और लाठी भी साबुत ही रह जाय।"—कुल्लूटक कहते-कहते चुप हो गया।

बासो बड़ी उत्कण्ठापूर्वक बोला, "हाँ महाराज, बता दो क्या बात है ?"

"तुम लोग कर्णद्वीप के बीच के हिस्से का लोभ छोड़ दो। इसके जो दो कान हैं उन्हीं में रहे जाओ।"

जुफू ने पूछा, "यह सारा बीच का विस्तार, यहीं से तो हमारे भोजन की अधिकांश समस्या हल होती है। राजा की आमदनी का मुख्य जरिया यही है और मजदूरों की मजूरी भी बहुत-सी यहीं है। नारियल, रबर और कॉफी के ये पेड़ कैसे छोड़े जा सकते हैं महाराज !"

बासो बोला, "और महाराज, हम लोगों के मीठे पानी का भण्डार भी तो यहीं के जलाशय हैं। हम तो प्यासे ही मर जावेंगे।"

एक और मनुष्य कहने लगा, "महाराज, एक कान से दूसरे कान तक जावेंगे भी कैसे ?"

कुल्लूटक बोला, "मैं थोड़े कह रहा हूँ तुमसे जाने को, तुम्हारे मन्त्री जी ही ऐसी बातें करते हैं। मैं तो चाहता हूँ भाई जो जहाँ पर हो, रहो वैसे ही। झगड़ा बढ़ाकर क्या लाभ है ?"

मन्त्री ने कहा, "लेकिन हमें यह तो मालूम हो जाना चाहिए, हमारे महाराज को किसने मारा है ? उनका क्या अपराध था।"

"मैंने पूछताछ की है। किसी बड़े-बूढ़े का हाथ नहीं है इसमें। कसूर तुम्हारे राजा का ही है। वह नदी के पार उन लोगों की भूमि पर चला गया, न मालूम किस लिए ? उधर नागाओं में से किसी के लौंडे ने तीर चला दिया, तुम्हारा राजा ठण्डा हो गया। ओह ! बड़ा दर्द है मेरे दाँत में।"—कहते हुए कुल्लूटक ने एक पतली हड्डी से अपने दाँत कुरेदने शुरू किये।

मन्त्री ने प्रार्थना की, "महाराज, आगे के लिए कुछ चेतावनी आपको देनी ही चाहिए उन्हें।"

"उन्हें भी दूँगा और तुम्हें भी। खबरदार जो पुरानी सन्धि चली आ रही है उसे तोड़ा तो! जो भी है मानते रहो। दूसरे की ज़मीन पर पैर रखने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। ओह! बड़ी पीड़ा हो गई दाँत में। क्या ठीक है इस नश्वर शरीर का। जिस दिन तुम्हारे राजा का प्राणांत हुआ उसी दिन मेरा एक दाँत निकल गया। जान पड़ता है एक और निकल जायगा आज। फिर क्या होगा इसी फिकर में पड़ गया हूँ मैं।"

जुक़ू ने कहा, "महाराज, इन पहाड़ी नागाओं की बात हम नहीं जानते। सुना है वहाँ भी बड़े-बड़े उमरदार हैं। हमारे बीच में तो आपकी उमर का एक भी नहीं है, और भगवान करे आपको नजर न लगे, आप सबसे तन्दुरुस्त हैं। शायद आप आग का इस्तेमाल नहीं करते इसीलिए?"

"लेकिन अब तो दाँत टूटते जा रहे हैं अब तो वहीं कहीं राज-भवन के पास डेरा मिल जाय तो गरमागरम शोरवा पिया करूँ।"—कुछ सोचकर कुल्लूटक ने कहा, "लेकिन वहाँ रानी जी मुझे नंगे रहने की आज्ञा कैसे देंगी?"

मन्त्री ने कहा, "अच्छा महाराज, हमें आज्ञा दीजिए। हमें तो सावधान कर ही दिया है आपने, उन्हें भी चेतावनी दे दीजिएगा।"

सब लोग स्वामी जी के पैर छूकर विदा हो गये। मार्ग में मन्त्री ने राजा के उस दिन के साथ के सेवकों से पूछा, "महाराज, आखेट के लिए किधर से गये थे?"

"उधर ही को ले जा रहा हूँ मैं।"—एक सेवक ने उत्तर दिया।

दूसरा बोला, "मेरी समझ में नदी के उस पार वह जो स्तूप दिखाई दे रहा है वहाँ गये थे उस दिन महाराज!"

मन्त्री ने कहा, "वह तो द्वीप के राजाओं के किसी पुरखे की समाधि है। वहाँ तो हम लोग जा सकते हैं। तुम सब यहीं खड़े रहो। यहाँ आकर मुझे उस समाधि की एक परिक्रमा कर लेनी उचित ही है।"

मन्त्री नदी पार कर उस समाधि के पास चला गया।

मन्त्री के उधर जाते ही एक तीर झाड़ियों के बीच से आया और ठीक मन्त्री की छाती में घुस गया। मन्त्री उसी समय बेसुध होकर भूमि पर गिर पड़ा। कुछ लोग दौड़कर उसे उठा लाये और तुरन्त ही तीर खींच स्वामी जी की गुफा पर ले गये। स्वामी जी ने उसकी छाती के घाव को देखा और नाड़ी की परीक्षा करके कहा, "भाई, अब क्या हो सकता है इसके तो प्राण-पखेरू चल बसे। यह फिर सचेत करने पर भी उनकी भूमि में चला गया था क्या?"

"राजा के पुरखे की समाधि पर गये थे।"

"वह समाधि तो इस तरफ है।"—कुल्लूटक ने दूसरी दिशा दिखाई।

१४

कागोशिप

रानी के सिर पर बिना मेघ-पानी के वज्र गिर पड़े। राजा और मन्त्री दोनों के एकाएक निधन से कुछ दिन तक तो उसकी समझ ही में नहीं आया कि वह क्या करे। समय सब घावों को भर देता है। धीरे-धीरे रानी के मन में साहस जाग उठा और वह अपने कर्तव्यों को हाथ मे लेने लगी।

राज्य की उन दोनो हत्याओं में वह उस अघोरी नागा का ही हाथ समझने लगी। वह दोनों जातियों के बीच में मध्यस्थ था, पर उसने सदैव ही उन हत्याकारियों का पता लगाकर उनका इन्साफ़ करने से इनकार कर दिया।

रानी ने सारा राज-काज अपने हाथों में ले लिया। इतना बड़ा राज्य का विस्तार ही क्या था? द्वीप के भीतर केवल एक ही समस्या थी उन नागा लोगों की। रानी ने खास-खास नाकों पर प्रहरी नियुक्त कर दिये थे। उन हत्याओं के बाद फिर कभी कोई आक्रमणकारी प्रगति नहीं दिखाई दी उन लोगों में। वैसे वे नागा शान्तिप्रिय स्वभाव के थे।

और रानी के बाहरी सम्बन्ध भी कोई अधिक नहीं थे। वे केवल व्यापारी सम्बन्ध ही थे, जो जिस प्रकार पहले से चले आ रहे थे, वैसे ही जारी थे। पहले की तरह उसकी सहायता के लिए वह एक मन्त्री का होना आवश्यक समझती थी। उस पद को सँभालने लायक कोई नहीं दिखाई दिया उसे द्वीप-भर में।

वासंथी अब विवाह-योग्य हो गई थी। उसकी उम्र की वृद्धि के साथ-साथ उसके रूप का भी विकास हुआ था और उसकी बुद्धि का भी। वह सदैव ही रानी को राज-काज में सहायता देती थी। कभी-कभी

रानी सोचती, वासंथी के होने पर किसी मन्त्री की आवश्यकता ही नहीं है। लेकिन रानी को मन्त्री न सही वासंथी के अनुरूप एक वर की खोज निरन्तर ही बनी रही। द्वीप में उसकी योग्यता रखनेवाला उसे कोई नहीं दिखाई दिया।

संसार की प्रगतिशील जातियाँ एक-दूसरे के प्रति शंकित होकर युद्ध के सामान जमा करती जा रही थीं। लेकिन कर्णद्वीपवासियों को इन बातों की कोई सूचना नहीं थी और अभी तक उनका इस जटिल राजनीति से कोई मतलब भी नहीं पड़ा था।

एक छोटा-सा कार्गोशिप सिंगापुर से भारतवर्ष को जा रहा था। उसके तेल की टंकी सिंगापुर से ही चू रही थी, इसका किसी को पता नहीं था। कर्णद्वीप के निकट उसके कप्तान सुन्दरम् को यह सत्य विदित हुआ। घबराकर उसने गोदाम के संग्रह में देखने की आज्ञा दी। नौकरों ने कहा, "स्टॉक समाप्त हो गया।"

बड़ी कठिनाई में पड़ गया सुन्दरम्। उसने दूरबीन आँखों से लगाकर इधर-उधर देखा, कोई भी जहाज़ आता-जाता दिखाई नहीं दिया। एक ओर एक छोटा-सा काला धब्बा जान पड़ा। उसने साथियों से कहा, "शायद कोई द्वीप है। सम्भव है वहाँ हमें कोई सहायता मिल जाय। यहाँ निराधार पड़े रहने से यह अच्छा है कि हम वहाँ चले जायँ।"

वहाँ तक पहुँच जाने लायक तेल था। किसी प्रकार वह कार्गोशिप कर्णद्वीप के किनारे जा लगा। कर्मचारियों ने जाकर रानी को सूचना दी। रानी ने जहाज़ में अपना माल आया समझा। उसने कप्तान को बुला भेजा।

सुन्दरम् उस द्वीप में पहले कभी नहीं आया था। वह जहाज़ से उतरकर जब नौकर-चाकरों से उस द्वीप के बारे में कुछ पूछताछ करना चाहता था, उसी समय रानी के सेवक ने वहाँ जाकर कहा, "इस जहाज़ का कप्तान कौन है?"

सुन्दरम् ने कहा, "मैं हूँ।"

सेवक बोला, "तुम्हें हमारी महारानी ने बुलाया है।"

सुन्दरम् ने पूछा, "इस द्वीप के महाराज कहाँ हैं?"

"महाराज की हत्या कर दी गई है। उनका स्वर्गवास हुए साल-भर से ऊपर हो गया है।"

सुन्दरम् एक विचित्र भावना से भर उठा, "महारानी क्यों बुलाती हैं मुझे?"

"वही बतावेंगी, हम नहीं जानते।"

सुन्दरम् एक भारतीय नवयुवक था। साहसी, हृष्टपुष्ट और देखने मे यथार्थ ही सुन्दर था। भारत के दक्षिण-स्थित समुद्र के किनारे उसकी जन्मभूमि थी। बचपन से उसने समुद्र की उत्तुंग तरंगों का बनना और टूटना देखा था। बड़े-बड़े जहाज़ों की गतिविधियाँ उसके मानस में समाई हुई थीं। जब वह छोटा था तो भी समुद्र में निडर होकर कूद जाता, दूर तक तैरकर उसके रहस्य को जान लेने की कोशिश करता। लेकिन कहाँ तक? जितना ही वह आगे बढ़ता क्षितिज उतना ही और आगे को खिसक जाता। उसने निश्चय किया एक दिन जहाज़ की नौकरी कर इस बात का पता लगाना होगा।

लेकिन सुन्दरम् के पिता को पुत्र की यह समुद्र-प्रियता अच्छी नहीं लगती थी। वे बड़े भीरु स्वभाव के थे। धरती पर अनेक नौकरियों के रहते फिर समुद्र में जाने की क्या जरूरत है, वे ऐसा ही समझते थे। उन्होंने थल पर उसके लिए अनेक नौकरियाँ ढूँढीं। लेकिन सुन्दरम् एक के बाद दूसरी को छोड़ता गया। उसकी लौ तो समुद्र से ही लगी हुई थी। वह तट पर उतरनेवाले जहाज़ के खलासियों से दूर-दूर के देशों की कथाएँ सुनता था।

उसने प्राकृतिक दृश्यों के चमत्कारों के बारे में सुना था। कहीं गरम श्रोतों के बहाव, कहीं ज्वालामुखी पर्वतों के उद्गार, कहीं अद्भुत फूलों और गरम स्वादिष्ट फलों से लदे हुए वृक्ष, कहीं सोने चाँदी और विविध

रत्नों से भरी हुई धरती—ये सब चीजें सुन्दरम् के मानस में अपने लिए जगह बना चुकी थीं।

उसने भाँति-भाँति के मनुष्यों की कथाएँ सुनी थीं। कहीं काले, पीले और उत्तप्त ताम्र वर्ण के, कहीं नाटे-बौने, कहीं ऊँचे, कहीं बिल्कुल नंगे, कहीं कटि-प्रदेश पर पत्ते पहननेवाले, कहीं मांस-भक्षी, कहीं मनुष्य-भक्षी, कहीं चिंपेंजी-गुरिल्ले वनमानुष, इन सबको देखने के लिए वह व्याकुल हो उठा।

स्वाभाविकता ने ही उसे आकर्षित कर लिया लेकिन बहुत से बूढ़े नाविकों ने उसे प्रकृति के कुछ विचित्र सत्य भी दे दिये थे। एक ने उसे माया-राज्यों की बात कह दी और दूसरे ने उसे परियों के जगत का विश्वास दिला दिया। इन रहस्यों से अवगत होने के लिए उसके मन में विचार उत्पन्न हो गया।

उसके हृदय में सुन्दर ही के लिए नहीं, भयानक के लिए भी बड़ी प्रीति थी। उसे भयानक-से-भयानक जंगली जानवरों और समुद्री जीवों के देखने का चाव हो गया था। उनके क्रुद्ध और रौद्र रूप में रस लेने की वृत्ति हो गई थी।

जब तक उसके पिता जीवित रहे तब तक सुन्दरम् का यह शौक दबता ही रहा। जितना ही यह दबता रहा, उतना भीतर-ही-भीतर उसमें उद्वेग बढ़ता ही गया। पिता के मरने पर वह मनमानी करने के लिए मुक्त हो गया और उसने एक जहाज पर खलासी की नौकरी कर ली। धीरे-धीरे वह एक प्राइवेट कम्पनी के जहाज़ पर कप्तान हो गया।

सुन्दरम् पहले कभी उस द्वीप में नहीं आया था। वह एक चाकर के साथ महारानी के पास चला। द्वीप के रूप-रंग और उसकी प्राकृतिक सम्पत्ति को देखकर प्रसन्न हो उठा। मार्ग में उसने कमर पर पत्ते पहने नर-नारियों को देखा। उसके मन में बचपन के गड़े हुए कई चित्र उभर गये। उसने चाकर से पूछा, "क्या तुम्हारी महारानी भी इसी तरह के कपड़े पहने रहती है?"

चाकर ने हँसकर जवाब दिया, "महारानी ऐसे क्यों पहनेंगी ?"

"तुम क्यों पहनते हो ?"

"हमारे द्वीप में रुई नहीं होती, न कातने और बुनने का ही उद्योग है। इसके सिवा यहाँ की गरम आबहवा हमारे मन में कपड़े के लिए प्रेम नहीं उपजाती।"

"जहाजों के मार्ग से हटे रह जाने के कारण ही तुम्हारा यह सुन्दर द्वीप इतना पिछड़ा हुआ है।"

"राजभवन में पहुँच जाने पर आपका यह विचार दूसरी दिशा ले सकता है और इस द्वीप में रहनेवाले नागाओं को अगर आप देख लेंगे तो फिर और ही सोचने लगेंगे।"

"वे कहाँ हैं ? किस प्रकार रहते हैं ?"

"उन्हें बिल्कुल वनमानुष समझिये, जानवरों में और उनमें थोड़ा ही अन्तर है। नंगे ही घूमते रहते हैं। स्त्री हो चाहे पुरुष, रहने का कोई घर नहीं, न खेती करते हैं, न आग या दीपक ही जलाते हैं।"

"आग के साधन नहीं होंगे।"

"यह बात नहीं, इन सब बातों को वे बड़ा असगुन मानते हैं। कपड़े पहनने, मकान के अन्दर रहने और रात को दीपक जलाने या खाना पकाकर खाने से देवता नाराज हो जावेंगे—ऐसा कहते हैं वे।"

"बड़ी विचित्र जाति है, मैंने इनके बारे में सुन तो रक्खा है, देखने की बड़ी लालसा भी है पर आज तक कोई अवसर ही नहीं मिला था। अब देखूँगा।"

"नहीं, लेकिन आप उन्हें देखने नहीं जा सकते।"

"क्यों ?"

"महारानी के और उनके बीच में ऐसी ही एक सन्धि है।"

सुन्दरम् राजभवन के निकट आ गया था, उसका ध्यान उधर चला गया। थोड़ी देर में वह रानी के सम्मुख उपस्थित कर दिया गया। उसने रानी को दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया।

कमरा अच्छी तरह सजा हुआ था। सजावट और उपयोग के सभी उपकरण मौजूद थे। रानी ने भी हाथ जोड़कर उसका स्वागत किया और उसको बैठने के लिए कुरसी दी। सुन्दरम् बड़ा विनम्र और शीलवान था, रानी को धन्यवाद देकर कुरसी पर बैठ गया।

रानी बोली, "माफ करना, तुम्हें कष्ट दिया है। मैं समझी थी कि तुम हमारा माल लाये हो या यहाँ की पैदावार ले जाने के लिए आये हो, लेकिन नौकर-चाकरों से मालूम हुआ कि दोनों में से कोई बात नहीं है।"

सुन्दरम् ने जवाब दिया, "रानी जी, मेरा तेल समाप्त हो गया है और मालूम नहीं मैं कब तक उसका प्रबन्ध कर सकूँ। आपके यहाँ तो न मिल सकेगा शायद ?"

"नहीं, कहाँ से ? महाराज चाहते थे छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे यहाँ आरम्भ कर द्वीप की आर्थिक अवस्था सुधारी जाय और रहन-सहन का स्तर ऊँचा किया जाय। उनकी इच्छा एक मोटर और एक जहाज खरीदने की भी थी, पर द्वीप के षड्यन्त्रों के बीच में उनको अपने प्राण देने पड़े। उन्हें ही नहीं मन्त्री को भी। अब इस समय मैं अकेली और असहाय हूँ।"—बड़ी निराशा के स्वर में रानी ने कहा।

"कौन हैं वे षड्यन्त्रकारी ? आप उन्हें कठोर दण्ड क्यों नहीं देतीं ? क्या आपके पास सेना पर्याप्त नहीं है ?"—सुन्दरम् की पहली ही बातचीत में सारी संवेदना रानी की ओर हो गई।

रानी भी ऐसा समझने लगी, मानो वह भगवान् का भेजा हुआ कोई आ गया है। वह बोली, "क्या बताऊँ वे षड्यन्त्रकारी कौन हैं ? सबसे मुख्य एक कुल्लूटक नाम का नागा है, धूर्त और पाखण्डी !"

"आप उसे पकड़कर उसका न्याय क्यों नहीं करती हैं ?"

"हाँ, तुम्हारे-जैसा कहनेवाला तो मुझे कोई एक भी नहीं मिला इस द्वीप में ! सब-के-सब कायर और डरपोक हैं। तुम्हें देखते ही मुझे एक आश्वासन मिला। मैं सोच रही थी तुम्हारे जहाज में कुछ जगह हो तो तुम्हारी मार्फत कुछ द्वीप की पैदावार भारत को भेजूँ। पर अब मेरे

मन में कुछ दूसरा ही लालच हो गया है। युवक, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मुझे सुन्दरम् कहते हैं।"

"सुन्दरम्, हमारे बीच की यह भाषा हमारी जन्मजात है। इससे तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि हमारा भारत से सम्बन्ध रहा है। तुम कुछ दिन यहाँ ठहर नहीं सकते क्या ?"

"रानी जी, संसार की अन्तर्जातीय स्थिति खतरे में पड़ गई है। आपके यहाँ रेडियो नहीं है ?"

"नहीं, जो था वह बिगड़ गया।"

"आपको द्वितीय विश्व-युद्ध के छिड़ जाने की बात तो ज्ञात ही हो गई होगी।"

"उसे छिड़े तो लगभग दो साल हो गये हैं अब।"

"हाँ, अब वह आग इधर पूर्व में भी फैलने लग गई है। जापान ने संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन पर युद्ध-घोषणा कर दी है। यही नहीं उन्होंने मलाया प्रायद्वीप की कुछ ही दूरी पर अंग्रेजों के युद्ध-पोत 'प्रिंस ऑफ वेल्स' को डुबा दिया है और उनके 'रिपल्स' नामक क्रूजर को भी जल-समाधि दे दी है।"

रानी घबराकर बोली, "तब तो वे बहुत निकट आ गये।"

"इसीलिए मैं भाग आया हूँ। उस भगदड़ में हम लोग इतनी सुध खो बैठे कि तेल-जैसी अत्यन्त आवश्यक चीज़ का स्टॉक न देख सके और दुर्भाग्य को टंकी के छेद ने पूरा भर दिया।"—सुन्दरम् ने फिर दूसरी बार रानी से पूछा, "आपके यहाँ हमें नहीं मिल जायगा तेल ?"

रानी ने उत्तर दिया, "सुन्दरम्, मैं तुम्हें इसका जवाब दे चुकी। तुम यहाँ रह जाओ कुछ दिन।"

"आपके यहाँ कोई जहाज आता तो होगा ? कब तक आवेगा ?"

"अभी कोई ठीक नहीं है। तुम्हें यहाँ कोई असुविधा न होगी। हमारी अतिथि-शाला में कोई कष्ट न होगा।"

"महारानी जी, मुझे जन्मभूमि छोड़े बहुत दिन हो गये हैं।"

"तुम्हारे घर पर कौन-कौन हैं ? क्या तुम्हारा विवाह हो चुका है ?"

"घर पर कोई नहीं, माता-पिता दोनों का देहान्त हो चुका है। अभी तक मैंने विवाह भी नहीं किया है। इस नीले सागर के वक्ष में निरन्तर घूमते रहना ही जीवन का लक्ष्य बनाया है। इसकी गहराई में पग-पग पर जो मौत बिछी हुई है, वह कब अपना फंदा डाल दे, इसका कोई ठीक नहीं है। इसीलिए किसी परायी कन्या को जीवन-भर रोने और कुढ़ने के लिए छोड़ देना नहीं चाहता। पहले समुद्र के नीचे ही मृत्यु थी और अब इस वायुयान के युग में वह आकाश में भी छा गई। युद्ध अपनी भयानकता में घनीभूत होता जा रहा है। मैं भारत की धरती के लिए बेचैन हो उठा हूँ।"

"सुन्दरम् जब वहाँ कोई तुम्हारा निकट सम्बन्धी नहीं है तो क्या सभी धरतियाँ एक-सी ठोस नहीं हैं ? क्यों नहीं तुम हमारे होकर रह सकते यहाँ ?"

"महारानी जी, एक पूरे जहाज़ का उत्तरदायित्व है मेरे ऊपर। वह छोटा हो सकता है, लेकिन एक चालान कीमती लदा है उसमें। उसे छोड़ मैं यहाँ कैसे रह सकता हूँ ?"

"क्योंकि तुम्हारी राह यहाँ टूटकर आ पड़ी है, तुमने मेरे शत्रु के खिलाफ़ आवाज़ उठाई है, इसी से मैं समझने लगी हूँ तुम्हें भगवान् ने मेरे पास भेजा है।"

"तुम्हारा शत्रु जो वह नागा है उसकी कितनी सेना है ?"

हँसती हुई रानी बोली, "वह सरदार नहीं है, लेकिन एक राजा से भी अधिक प्रभाव रखता है वह इस द्वीप की आबादी पर। द्वीप की जो नंगी आबादी है उसका तो वह साक्षात् प्रभु ही बना बैठा है।"

सुन्दरम् ने चौंककर फिर अपना आसन सँभाला, "द्वीप की नंगी आबादी कैसी है ?"

"यहाँ का सारा पहाड़ी भाग उनके अधिकार में है। बड़ी बेशरम जाति है वह। नर और नारी दोनों नंगे फिरते हैं। वे कपड़ों के उपयोग

को अधर्म और असभ्यता का चिह्न समझते हैं।"

"ऐसी जंगली जातियों के बारे में मैंने सुना तो है। उनकी रीति-रिवाजों के अध्ययन की मुझे बड़ी लालसा है।"

"नहीं, इसके लिए मैं कदापि न रोकूँगी तुम्हें। सुन्दरम्, वे बड़े अचूक निशानेबाज हैं और उनके तीर भयानक विष के बुझे हैं। मेरा यह वैधव्य उक्त कथन की साक्षी है।"

"तब तुम्हें नूतनतम युद्ध के उपकरणों का उपयोग करना चाहिए। हवाई जहाजों द्वारा बम बरसा दो उनके ऊपर तो उनके विष-बुझे तीर तरकसों में ही पड़े रह जायेंगे। जब तक मेरे तेल का प्रबन्ध न हो जाय, मैं देख तो सकता हूँ न उन्हें?"

"नहीं सुन्दरम्, हमारे बीच में जो सन्धि है उससे हम एक-दूसरे की भूमि पर नहीं जा सकते।"

सुन्दरम् गालों पर हाथ रखकर बड़ी गहराई में कुछ सोचने लगा था। अचानक उसे बड़े मीठे स्वरों में कोई गीत का टुकड़ा सुनाई दिया। शब्द नहीं समझ सका वह, पर पवन में उठे हुए प्रकंपनों ने उसके प्राणों में एक गुदगुदी उठा दी। उसने पूछा, "यह कौन गा रहा है?"

रानी ने जवाब दिया, "यह राजकुमारी वासंथी है।"

"और राजकुमार?"

रानी ने बड़े दुःख से दृष्टि आकाश की ओर कर कहा, "भगवान् का कोप, सुन्दरम्! और कुछ नहीं है।"

कुछ यति के बाद वासंथी के गीत की एक कड़ी और सुनाई दी। रानी ने पुकारा, "वासंथी!"

कदाचित् उसने नहीं सुना। कोई जवाब नहीं मिला। रानी ने खिड़की से बाहर देखकर कहा, "वह उपवन में जा रही है। वह अपने ही विचारों में विलीन है। मेरी पुकार नहीं सुनी उसने।"

सुन्दरम् ने उसकी पीठ पर उसे देखा। जो गीत उसे सुनाई दिया

था, मानो वही गीत मूर्त्तरूप होकर जा रहा था। जिस तरह वह उस गीत के बोल नहीं समझ सका था ऐसे ही उसकी केवल पीठ देखकर वह राजकुमारी को नहीं समझ सका।

रानी फिर एकाएक उदास होकर कुरसी पर बैठ गई। एक दीर्घ निश्वास लेकर कहने लगी, "एक इसकी बहन और है लेकिन उसकी आत्मकथा मेरे जीवन का बड़ा तीखा काँटा है।"

रानी को चुप देखकर सुन्दरम् के मन में कौतूहल हुआ। मन में कहने लगा, "वह राजकुमारी कहाँ है ?"

"वह इसकी जुड़वाँ बहन है। वह उन जंगलियों के अधिकार में चली गई। वह उन्हीं की तरह वन-पर्वतों में लज्जा और शील को गँवाकर पशुओं की भाँति बिल्कुल नंगी—विवसना और निरालंकारा होकर घूमती है। ओह ! मैं शरम के मारे धरती पर गड़ी जाती हूँ। क्या करूँ ? कुछ नहीं समझ सकती। मेरा मन्त्री मेरी सहायता करता, लेकिन उसे भी भगवान ने छीन लिया।"—रानी की आँखों में आँसू आ गये।

सुन्दरम् एक अजीब भूलभुलैयाँ में फँस गया। वह बोला, "महारानी जी, वह राजकुमारी क्यों इतनी नंगी हो गई ? क्या किसी वनमानुष से उसका प्रेम हो गया ?"

"नहीं, ऐसा नहीं हुआ। वह जब पैदा हुई थी तभी उन लोगों को दे दी गई। उन लोगों के बीच में वह क्या जाने उसकी कुल-परम्परा क्या है ?"

"किसने दे दिया ? इसे आपकी उदारता क्यों न कहा जाय ?"—सुन्दरम् ने पूछा।

"मैं अपने होश में नहीं थी। महाराज ने दे दिया उसे उस धूर्त कुल्लूटक को। वह जादू जानता है।"—रानी की आँखों से दो बूँदें आँसू की भूमि पर टपक पड़ीं।

"जादू कोई चीज नहीं, केवल प्राणों में गड़ा हुआ एक भय है।

मैं देख सकता हूँ उस जादूगर को ?"—सुन्दरम् कुरसी पर से उठ खड़ा हो गया। मानो वह उसी समय जाने को तैयार हो गया हो।

रानी ने उसका कन्धा पकड़कर उसे बिठाते हुए कहा, "नहीं बेटा, मैं नहीं जाने दूँगी तुम्हें उसके पास। वह बड़ा भयानक मनुष्य है।"

बहुत दिन बाद ऐसा ममता का स्पर्श पाकर सुन्दरम विह्वल हो उठा। कुरसी की बाँह पर अपनी उँगलियाँ धीरे-धीरे बजाकर वह सोचने लगा कुछ।

रानी बोली, "सुन्दरम्, तुम्हें देखकर मेरे प्राणों में एक भरोसा जाग उठा है। मैं क्यों न तुम्हें भगवान् का भेजा हुआ समझूँ ? तुम अवश्य ही उसके भेजे हुए हो। मेरे मन में अनेक भार जमा हो गये हैं। सुन्दरम्, मैं अकेली उनका वहन नहीं कर सकती, मैं तुम्हें सौंप दूँगी उन्हें, मुझे न्यस्तभार हो जाने दो।"

"विचार करूँगा।"—वह उठकर जाने लगा।

"नहीं, अब कहाँ जाते हो ?"

"जहाज़ पर। मैं उसका कप्तान हूँ।"

"लेकिन तुम्हारा तेल समाप्त हो गया है। उसके प्रबन्ध तक यहीं रहो। जहाज़ पर उसकी रक्षा के लिए और नौकर-चाकर तो हैं न। कम हो तो मैं दे दूँ। वैसे हमारे द्वीप या इस समुद्र पर किसी चोर या डाकू का भय नहीं है।"

"मैं अपने उत्तरदायित्व से विवश हूँ माताजी ! चीन के चालान की एक मूल्यवान पेटी है, उसी की चिन्ता है। बाकी तो सब रबर की चादरें और साबूदाने के थैले हैं।"

"जाकर उस पेटी को ले आओ, यहीं तुम्हारे सिरहाने रख दी जायगी।"

कप्तान रानी के अनुरोध का विरोध न कर सका। उस द्वीप में उसने देखा रूप और रहस्य के दोहरे बन्धन उसे जकड़ देने के लिए तैयार

हो गये थे । उसने कहा, "महारानी जी, मैं उस पेटी को यहाँ ले आता हूँ और अपना उत्तरदायित्व अपने सहकारी को सौंप आता हूँ।"

रानी प्रसन्न होकर कहने लगी, "जल्दी करना सुन्दरम्, अब तुम यहीं रहोगे । तुम्हें इस असहाय अबला की रक्षा करनी है । इसकी इज्जत बचानी है । इसकी वह राजकुमारी जो उन जंगलियों के साथ बेहया और नंगी होकर घूम रही है, उसे छुड़ाना है।"

सुन्दरम् ने हाथ जोड़कर कहा, "भगवान् की इच्छा !"

"मैं तो कहती हूँ, तुम वह चीन का मूल्यवान चालान भी अपने सहकारी को ही सौंप दो। सुन्दरम्, मैं तुम्हें बहुत मूल्यवान संपत्ति सौंप दूँगी।"

सुन्दरम् सिर से पैर तक सिहर उठा । उसके मानस में एक कपड़े पहने और दूसरी विवसना नारी नाचती हुई दिखाई पड़ी। वह बोला, "माताजी, मैं शीघ्र ही आता हूँ।"

रानी बहुत दूर तक बाहर उसे पहुँचाने गई। उसका विचार था वासंथी से उसका परिचय करा देने का। लेकिन वह मिली नहीं। फाटक पर सुन्दरम् राजभवन के एक चाकर के साथ रानी से विदा हो गया। रानी ने पहरेवाले से पूछा, "वासंथी कहाँ है ?"

उसने जवाब दिया, "समुद्र-तट की ओर गई है ।"

१५

वासंथी

कप्तान जहाज की ओर चला। इस बार वह कुछ दूसरा ही होकर जा रहा था। बाल्य-काल से वह जिस रहस्य और रोमांच की खोज में था, उसे जान पड़ा उसका समय अब आ गया। वह अपने मन में कुछ निश्चय कर चुका था। जहाज, तेल का प्रबन्ध हो जाने पर आगे बढ़ सकता था, लेकिन उसने सोचा, कदाचित् वह नहीं होगा।

उसने दूर समुद्र-तट की ओर दृष्टि की, क्षितिज के ऊपर नारियल के पेड़ों के बीच में उसने राजकुमारी का पवन से खेलता हुआ दुकूल और उसके अंग की यष्टि पहचान ली। उसने राजभवन के चाकर से कहा, "जाओ, मुझे मार्ग ज्ञात है, अब तुम चले जाओ।"

चाकर अभिवादन कर चला गया। सुन्दरम् तेजी से आगे को बढ़ा। कुछ दूर जाने पर उसे लौटती हुई राजकुमारी मिली। वह अभी तक उसी गीत को गा रही थी। सुन्दरम् को देखकर खिल-खिलाकर हँस पड़ी, "यह तुम्हारा ही जहाज है? तुम इसके कप्तान हो?"—वह मुख में अपनी साड़ी का अंचल रखकर फिर हँसने लगी।

सुन्दरम् ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा, "हाँ।"

"मैं दौड़ती हुई यहाँ चली आई तुम्हारे जहाज की सीटी सुनकर कि हमारा जहाज आ गया। मैंने एक नया रेडियो मँगा रक्खा था। मुझे क्या मालूम तुमने बिना मतलब ही अपना जहाज हमारे किनारे से लगा दिया, क्या तुम राजभवन से आ रहे हो?"

"हाँ, वासंथी!"

"तुम्हें मेरा नाम मालूम है! तुम बड़े चतुर जान पड़ते हो। एक अपरिचित के मुख से अपने नाम की ध्वनि मुझे बड़ी प्रिय जान पड़ी है।"

"इसी तरह भारत से इतनी दूर की एक प्रवासिनी के मुख से अपनी मातृ-भाषा सुनकर मेरा सन्तोष बढ़ा है।"

"तुम इतना भी नहीं जानते, हमारे पितरों की भूमि भी भारत ही है और हमने बड़े आदरपूर्वक अपनी मातृभाषा की रक्षा कर रक्खी है।"

"लेकिन तुम जिस गीत को गा रही थीं, वह मैं समझा नहीं।"

"समझते भी कैसे, वह तो हमारी प्रजा का लोक-गीत है। इनकी भाषा हम से कुछ भिन्न है।"

"ये भारत के नहीं हैं?"

"मैं नहीं जानती। सम्भव है ये बहुत पुराने प्रवासी हों। एक जाति यहाँ और भी रहती है, उसकी बोली हम कोई भी समझ नहीं सकते।"

"मैं जानता हूँ उन्हें।"

"नहीं, तुम्हें नहीं जानना चाहिए उन्हें। वे बड़े भयानक मनुष्य हैं। सच बता दो तुम क्यों आये हो हमारे द्वीप में?"

"सच बताना बड़ा कठिन है वासंथी। काल की इस निस्सीम गहराई में कोई मुझे बुलाता था समुद्र-पार से। यह बुलानेवाला मेरे अनुभव में नहीं आ सका। तब मैंने धरती छोड़कर जहाज पर नौकरी कर ली।"

वासंथी ने उदास होकर एक दीर्घ साँस ली, "राजभवन में क्या तुम महारानी जी से मिले?"

"हाँ।"

"उन्होंने क्या कहा?"

सुन्दरम् ने हँसकर कहा, "मुझे राजभवन में निमन्त्रण मिला है।"

वासंथी बहुत प्रसन्न होकर बोली, "क्या तुम अभी फिर चलोगे हमारे यहाँ?"

"हाँ।"—सुन्दरम् जहाज की ओर जाने लगा।

"तब मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगी। क्या नाम है तुम्हारा ?" —वह भी उसके साथ-साथ चली।

"सुन्दरम्।"

मन-ही-मन वासंथी ने उस नाम की आवृत्ति की, "सुन्दरम्!" फिर ज़ोर से बोली, "सुन्दरम!"

"हाँ, क्या कहती हो ?"

"नहीं, मैंने कुछ आज्ञा देने के लिए तुम्हारा नाम नहीं पुकारा। मै इसको ध्वनि में सुनना चाहती थी कि इसमें कितनी कर्ण-प्रियता है।"

"तुमने इसमें स्वर पहनाकर नहीं सुना ?"

वासंथी गाने लगी, "सुं ऽ द र म्......" इसके आगे उसने पूरी एक पंक्ति गाई, लेकिन सुन्दरम् केवल अपने नाम के सिवा और कुछ भी नहीं समझ सका।

वह बड़े आग्रह से पूछने लगा, "वासंथी, तुमने क्या गाया यह ? मेरी पहुँच से दूर!"

"मैं नहीं बताऊँगी।"

"कोई गाली दी होगी।"

"गीत क्या गाली देने के लिए होते हैं ? स्वर की इतनी कोमल और उज्ज्वल सृष्टि! फूल क्या कभी घृणा का बर्ताव करता है ?"

"अनेक दूर के द्वीपों से मैंने सुना है, मांस-भक्षी पेड़-पौधे होते है, फूल भी होते होंगे।"

"लेकिन हमारे द्वीप में ऐसा कुछ नहीं। पर्वत के उन नागों के बीच में होते होंगे।"—कहते-कहते वासंथी चुप और उदास हो गई।

"तुम मेरे साथ कहाँ तक चलोगी ?"

"दूर! बहुत दूर तक सुन्दरम्, लेकिन क्या तुम मुझे साथ ले जा सकते हो ?"

"इसके जवाब के लिए बहुत सोचना पड़ेगा। वासंथी तुम लौट जाओ।"

"क्यों, तुम इतने डरपोक हो ?"

"तुम एक नवयुवती हो, तुम्हें एक अपरिचित युवक के साथ इस तरह अकेले ही घूमते हुए तुम्हारे राजभवन के लोग क्या कहेंगे, और क्या मेरे जहाज़ के साथी सोचेंगे ?"

"वे क्या कहेंगे, वे कुछ नहीं कह सकते। तुम तो इतनी ही दूरी से घबरा गये। मैं तो तुम्हारे साथ बहुत दूर तक चलना चाहती थी। सुन्दरम्, तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?"

सुन्दरम् ने भौंहों को दूरी कम करके कहा, "मेरा विवाह ही कहाँ हुआ है ?"

"फिर तुम्हें किस बात का भय हो गया ? तुमने धरती छोड़कर जहाज़ की नौकरी क्यों की ?"

"भय और रहस्य की खोज के लिए।"

"क्या वे दोनों तुम्हें हमारे द्वीप में मिल गये, इसीलिए तुमने अपना जहाज़ हमारे तट से लगा दिया ?"

"नहीं, उसका तेल समाप्त हो गया।"

"क्या उसे हमारे निकट आकर ही समाप्त हो जाना था ?"

सुन्दरम् ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

वासंथी बोली, "सुन्दरम्, कोई मुझे भी बुलाता है, जिस तरह तुम्हें। रात को उस भयानक अन्धकार में मैं बहुत साफ़ उसकी आवाज़ सुनती हूँ। तुम्हें समुद्र-पार से पुकारता है, लेकिन मुझे इस द्वीप के भीतर से। क्या वह पुकारनेवाले दोनों एक ही नहीं हो सकते ?"

सुन्दरम् अपने मन के भीतर की जटिलताओं को सुलझाने लगा था, अतः उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

वासंथी उसके साथ-साथ जाती हुई कहने लगी, "न-जाने क्यों तुम हमारे द्वीप से आ लगे। मुझे कितना बड़ा धोखा हो गया इसका तुम अनुमान भी नहीं कर सकते।"

"क्या धोखा हो गया तुम्हें ?"

"यही कि मेरा रेडियो आ गया ! सुन्दरम, तुम्हारे जहाज में होगा तो सही कोई रेडियो ?"

"हां, है ।"

"क्या तुम उसी को लेने आ रहे हो ?"

"नहीं ।"

"संसार से बिल्कुल कटकर हम रह गये हैं । सुना है युद्ध बड़ी तेजी पकड़ रहा है । हम युद्ध के समाचारों के लिए व्याकुल हैं ।"

"युद्ध के समाचार मैं बता सकता हूँ तुम्हें ।"

"हमें जापान की प्रगति से मतलब है ।"

"जापान ने अमेरिका को अपना राजदूत भेजा था । वाशिंगटन में दोनों दलों की बातचीत भंग हो गई है । अमेरिका ने उन्हें चेतावनी दी है कि जापानियों ने जो चीन और इंडो-चीन में प्रवेश किया है, वहाँ से फौरन ही हट जायँ ।"

वासंथी प्रसन्न हो गई ।

"ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने घोषणा की है, अगर संयुक्त राज्य अमेरिका जापान से भिड़ गया तो एक घंटे के भीतर ही ब्रिटेन भी जापान के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर देगा ।"

वासंथी और अधिक खुश हो गई, "और क्या समाचार हैं ?"

"लेकिन जापान ने पिछले दिनों अमेरिका और ब्रिटेन दोनों की जल और थल की शक्ति को बड़ी भारी हानि पहुँचाई है ।"

वासंथी कुछ चिन्ता में पड़ गई । वे दोनों जहाज के निकट आ गये थे । वासंथी ने पूछा, "रेडियो तुम्हारा अपना है या जहाज के स्वामी का ?"

"मेरा अपना है ।"

जहाज के प्रवेश पर जो प्रहरी पहरा दे रहा था, उसने कप्तान को सलामी देते हुए कहा, "हुजूर, डेक के नीचे अँधेरे गोदाम में कुछ

फटे हुए बोरों के नीचे दबा हुआ एक तेल का ड्रम अभी-अभी मिला है। जान पड़ता है, किसी खलासी ने चोरी की नीयत से शायद उसे वहाँ छिपा दिया हो, या कोई और बात हो।"

"चुप रहो!"—संतरी को डाँटते हुए सुन्दरम् जहाज के भीतर जाने लगा। उसने मुसकान द्वारा वासंथी का स्वागत किया। वह भी उसके पीछे-पीछे जहाज के भीतर को चली।

डाँट खाकर सन्तरी मन में सोचने लगा—'कप्तान साहब एक सुन्दरी को लेकर आए हैं, इन्हें खुश होना चाहिए था। ये तो बिना बात ही नाराज हो रहे हैं। मैं समझा था मैंने इन्हें खुशखबरी सुनाई है।'

कप्तान सबसे पहले जहाज के मशीन के कमरे में चला गया। वह वासंथी को बाहर ही छोड़ गया। उसने कुछ कल-पुरजे खोल-खाल दिये। कुछ देखा-भाला, फिर बाहर आ गये। वासंथी डेक-चेयर पर बैठी-बैठी समुद्र की उत्ताल तरंगों को बनते और बिगड़ते देख रही थी। कप्तान भी उसी के साथ बैठ गया। उसने अपने सहकारी को बुला भेजा।

एक सेवक आकर उनके सामने एक छोटी-सी मेज़ बिछा गया। सुन्दरम् का सहकारी आ पहुँचा। सुन्दरम् ने कहा, "हमें किसी ने परिचित नहीं कराया मित्र! लेकिन तुम्हें मैं बताता हूँ, ये द्वीप की महारानी की एकमात्र राजकुमारी हैं। और ये मेरे सहकारी कप्तान हैं।"—उसने अपने सहकारी की तरफ दृष्टि की।

दोनों ने एक दूसरे को हाथ जोड़े। एक दूसरे सेवक ने आकर चाय की ट्रे रख दी मेज़ पर। सहकारी बड़ी प्रसन्न मुद्रा में बोला, "तेल का एक ड्रम तो मिल गया है।"

लेकिन इस समाचार से सुन्दरम् के मुख पर कोई प्रसन्नता नहीं खिली, "सिर्फ़ तेल से क्या होगा, इंजिन में भी तो कुछ खराबी हो गई है। मैंने अभी जाकर देखा है। उसे ठीक करना पड़ेगा। जब तक वह खराबी ठीक न की जायगी, जहाज का लंगर उठा देना बुद्धिमानी

का काम न होगा।

सबने चाय पीनी शुरू कर दी थी, सहकारी ने कप्तान की हाँ में हाँ मिलाई। उसने एक बार वासंथी की ओर दृष्टि कर मन में सोचा—'ऐसे तीखे नैन सहज ही किसी के हृदय में विंध सकते हैं, फिर कैसे उसका जहाज़ आगे को चले।'

सुन्दरम् बोला, "अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति युद्ध के बढ़ जाने से बड़ी भयानक हो उठी है, उसे जितना हम जानते हैं, महारानी जी नहीं। बिल्कुल यह द्वीप दुनिया से कटा हुआ है। इनके पास कोई डाक नहीं आती। और-तो-और इनका रेडियो भी बेकार हो गया है। इसलिए मित्र, अगर तुम आज्ञा दोगे तो······" वह चुप हो गया।

सहकारी ने कहा, "सहकारी अपने से बड़े पद को कैसे आज्ञा दे सकता है?"

" और भी महारानी इधर पूर्व की स्थिति समझ लेना चाहती हैं। इस बार का यह द्वितीय विश्व-युद्ध जरूर बड़े विस्तार को घेर लेगा। हम लोग उधर अपनी आँखों से बहुत कुछ देख आए हैं। यही सब महारानी को समझा देना है। इसी कारण उन्होंने आज मुझे अपने यहाँ निमन्त्रण दिया है। उनका यह छोटा-सा द्वीप, बड़े-बड़ों के संघर्ष में पड़ने पर क्या करे यही समझ लेना चाहती हैं वे।"

सहकारी बाहरी तौर पर सिर हिलाते रहने पर भी मन-ही-मन सोच रहा था—'आज कप्तान सुन्दरम् का जहाज़ भारी भँवर में फँस गया है। तेल मिला था, तो इंजन खराब हो गया।'

"खाना खाने के बाद न-जाने कितनी देर तक बातचीत होती रहे। फिर महारानी का आग्रह है कि मैं विश्राम वहीं करूँ।"

"ठीक ही तो है, अचानक उनके साथ हमारा परिचय हो गया। सम्भव है, आगे के लिए हमारे-उनके बीच में व्यापारिक सम्बन्ध भी हो जाय।"—सहायक ने कहा।

वासंथी बोल उठी, "हाँ-हाँ, भारत के साथ हमारा बड़ा आयात-

निर्यात होता है । हम तो पश्चिम के देशों से भी भारत के द्वारा ही संबद्ध हैं।"

सुन्दरम् ने सहायक को चाबी देकर कहा, "चीन की वह जो जोखिम की पेटी है उसे निकालकर ला दो । अपना उत्तरदायित्व तुम पर नहीं रक्खूँगा। रात में मेरी अनुपस्थिति में न जाने क्या हो ?"

"हाँ कप्तान, मैं भी यही सोच रहा था।"—सहायक चाबी लेकर चला गया।

वासंथी ने कहा, "और वह रेडियो ?"

सुन्दरम् ने फिर सहायक को बुलाया, "हाँ, वह रेडियो भी ला दो। आज रात उसे भी इनका निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ेगा।"

सहायक चला गया। चीन की पेटी बहुत बड़ी नहीं थी। सहायक एक ही खलासी के सिर पर सब कुछ रखवाकर ले आया। सुन्दरम् और वासंथी भी जाने के लिए उठ खड़े हुए। वासंथी सहायक की तरफ़ देख कर बोली, "ये सहायक भी वहाँ चलें तो क्या हानि है ?"

सहायक संकुचित होकर कहने लगा, "राजकुमारी जी, आपको इसके लिए धन्यवाद है। कप्तान अपना उत्तरदायित्व मुझे सौंप सकते है, मैं नहीं सौंप सकता। रात ही भर में जहाज में न जाने क्या हो जाय इसलिए कम-से-कम एक अधिकारी का यहाँ रहना जरूरी है।"

वासंथी बोली, "तब आपके लिए भोजन वहीं से आवेगा।"

"नहीं, उसकी कोई आवश्यकता नहीं।"

"ऐसा नहीं हो सकता। आप आज हमारे अतिथि हैं। मैं तो चाहती हूँ कि आप भी वहीं चलें। एक दिन हमारा रूखा-सूखा आतिथ्य आपको स्वीकार करना ही पड़ेगा।"

सुन्दरम् ने अपने सहकारी की तरफ़ से कहा, "हाँ, हाँ, आज आपका आतिथ्य ग्रहण करेंगे ये।"

सुन्दरम् और वासंथी दोनों राजभवन की ओर चले और उनके पीछे-पीछे रेडियो और चीन की पेटी का भारवाही।

१६

चीनी चालान

रानी ने जब नौकर-चाकरों से यह सुना कि वासंथी भी उस जहाज़ के कप्तान के साथ समुद्र-तट की ओर गई है, तो उसका संतोष बढ़ गया। जब उसने दोनों को एक ही भावना से संयुक्त होकर आते देखा तो वह बहुत खुश हो गई।

"महारानी जी, मैं इस धोखे में पड़कर कि हमारा जहाज़ आ गया, उधर समुद्र-तट पर चली गई थी। मैं समझी थी, मेरा रेडियो आ गया। कभी-कभी हमें धोखे में भी हमारी इच्छा मिल जाती है। रेडियो तो मिल गया।"—वासंथी ने कहा।

"और महारानी जी, तेल का एक ड्रम भी जहाज़ के एक गोदाम में ढूँढ़ लिया गया।"—सुन्दरम् ने कहा।

"नहीं सुन्दरम्, उसके मिलने से क्या होता है? इस अवधि में मैं कुछ और सोच चुकी हूँ।"

वासंथी ने आकुलता से सुन्दरम् की ओर देखकर पूछा, "तेल से क्या होगा? आपने अपने सहकारी से कहा न था, जहाज़ के इंजन में कुछ खराबी हो गई है, जब तक वह ठीक न हो जायगी, जहाज़ अपना लंगर उठा नहीं सकता।"

"जहाज़ अपना लंगर उठा ले जाय, लेकिन सुन्दरम् तुम अब इस द्वीप के होकर रहोगे।"—महारानी ने कहा।

सुन्दरम् ने वासंथी को और वासंथी ने सुन्दरम् को देखा। सुन्दरम् ने तुरन्त ही उस पर से दृष्टि हटाकर खिड़की से बाहर देखते हुए पूछा, "किस तरफ़ रहता है वह नागा?"

वासंथी बोली, "तुम कैसे जानते हो उसे?"

सुन्दरम् को उस चीन के चालान की याद आ गई। उसने उस पेटी को वहाँ मँगवाकर रानी से कहा, "इसे किसी सुरक्षित स्थान में रखवा दीजिए।"

रानी ने अपनी विशेष लोहे की तिजूरी में उसे रखवा दिया उसी समय अपने सामने। वासंथी रेडियो बजाने लगी और उसके गीत में निमग्न हो गई।

महारानी और सुन्दरम् कमरे में बैठकर बातें करने लगे। महारानी बोलीं, "आज पूरे वर्ष भर बाद हम लोग संसार से संबद्ध हुए हैं।"

रेडियो बजाते-बजाते वासंथी को कुछ याद आया। वह सुन्दरम् के पास आकर बोली, "सुन्दरम्, अब हम तुम्हें नहीं जाने देंगे कहीं।"

सुन्दरम् हँसकर बोला, "इस द्वीप के दर्शन की भेंट-स्वरूप मैं इस रेडियो को यहीं तुम्हारे पास छोड़ जाऊँगा।"

महारानी ने कहा, "लेकिन सुन्दरम् मेरे मन में कुछ दूसरा ही विचार है।"

वासंथी बड़ी एकाग्रता से दृष्टि दूसरी ओर कर सुनने लगी। महारानी बोली, "वासंथी, हमारे अतिथि के भोजन का प्रबन्ध समुचित रीति से हो रहा है या नहीं, तुम्हें उसे देखना चाहिए।"

"हाँ महारानी जी, मैं इनके सहायक कप्तान को भी निमन्त्रित कर आई हूँ। उनका भोजन वहीं भेजा जायगा।"

"तब तुम्हें रेडियो छोड़कर उधर ही ध्यान देना चाहिए। जितने जहाज के कर्मचारी हैं—सभी हमारे अतिथि हैं, सभी के लिए भोजन भेजना होगा।"—महारानी ने कहा।

वासंथी रेडियो बन्द कर रसोईघर की ओर चली गई।

महारानी बोली, "बात ऐसी है, हमें इस द्वीप के राज्य-संचालन के लिए एक मन्त्री की नितान्त आवश्यकता है। महाराज की मृत्यु के बाद ही से यह अभाव हमें खटक रहा है। महाराज की शून्यता तो मैंने किसी तरह रख ली, पर मन्त्री का स्थान अभी तक रिक्त ही चला आ

रहा है।"

"आपके कर्मचारी तो कई जान पड़ते हैं, उनमें से योग्यतम को यह अवसर क्यों नहीं दिया जाता ?"

"नहीं, वे अत्यन्त स्वार्थलोलुप हैं। मन्त्री का पद एक विशेष पद है। मैं उसकी सबसे बड़ी विशेषता मनुष्य की स्वार्थ-विहीनता समझती हूँ। आत्म-केन्द्री मनुष्य अन्धा होता है और सबके लिए दया-दाक्षिण्य की भावना रखनेवाला ही बहुदर्शी होता है।"

"फिर किसी दूसरे देश से किसी को बुला लीजिए।"

"नहीं, बिना जान-पहचान का न-जाने कैसा हो ? मैं तो तुम्हें समझी हूँ, तुम यहाँ इसी भार को संभालने के लिए नियति द्वारा नियत किये गये हो।"

"मैं !"— हँसकर सुन्दरम ने कहा, "मैं एक जहाज़ का खलासी, मैं क्या राजनीति को समझता हूँ ?"

"मुझे तो विश्वास हो गया है।"

"केवल एक दिन की जान-पहचान से धोखा हो सकता है । इतने दिन से आप राज्य-संचालन करती आ रही हैं।'

"युद्ध की अग्नि भी अब पड़ौस ही में धधक उठी है। मैं स्त्री-जाति, हमने कभी युद्ध के बादल देखे ही नहीं हैं। सीधी-सादी यह द्वीप की आबादी तो हमारे वश को है पर हमारा यह भीतरी कलह भी अपना सिर उठाने लगा। भीतर और बाहर की इन दोनों ज्वालाओं में कभी हम फँस गये तो बड़ी मुश्किल हो जायगी। सुन्दरम्, मुझे तुम्हारे भीतर एक मनुष्य दिखाई देता है।"

सुन्दरम् ने कहा, "एक साधारण नाविक होने के अतिरिक्त मुझ में और कोई गुण नहीं है। मेरी शिक्षा भी अधूरी है। कॉलेज में ज़रूर भरती हुआ था मैं, पर अपनी समुद्र-प्रियता के कारण मैंने परीक्षा नहीं दी।"

इतना ही पर्याप्त है हमारे लिए । मैं इस बाहरी शिक्षा की

कायल नहीं हूँ, यह तो एक सजावट है, कीमती वस्त्र-भूषा की तरह। तुम सफलतापूर्वक हमारा मन्त्रित्व चला सकोगे। तुमने उस नागा के लिए जो शब्द कहे, उनका कहनेवाला मुझे दूसरा कोई मिला ही नहीं आज तक।"

कप्तान बोला, "आपके बाहरी सम्बन्धों के लिए हो मेरे पास क्या अनुभव है? आप एक जहाज़ खरीद लें तो अलबत्ता मैं उसका कप्तान हो सकता हूँ।"

"इस द्वीप को एक अचल जहाज समझा जा सकता है सुन्दरम्! तुम इसके ही कप्तान बनोगे अब। केवल एक प्रश्न तुमसे पूछना शेष है। जितनी स्पष्टता से मैं पूछ रही हूँ, उतना ही साफ तुम्हारा उत्तर होना चाहिए।"—महारानी कुछ सोचने लगीं।

सुन्दरम् ने अधीर होकर पूछा, "आप क्या पूछना चाहती हैं?"

"यही कि तुम अविवाहित हो यह तो मुझे ज्ञात हो चुका है। पर मैं यह भी जान लेना चाहती हूँ कि धरती पर कोई ऐसी कन्या तो नहीं है जिसे तुमने कभी कोई वचन दिया हो।"

"वचन कैसा?"

"किसी तरह का जिसके कारण वह तुम्हारी चिन्ता करती हो। तुम्हारी प्रतीक्षा करती हो। कप्तान, मुझे तुम्हारी आकांक्षा और तुम्हारे जीवन को सुखी करना है।"

सिर-हिलाकर सुन्दरम् बोला, "नाविक की जीवनी ही क्या है? दिन-रात इस जल के मरु में, भयानक लहरों के बीच से अपना मार्ग खोदना। किसी समय समुद्र के खुले जबड़े में हम समा सकते हैं। युद्ध के इन दिनों में किसे मित्र-शत्रु की पहचान रहती है! जंगी जहाज़ों की गोलाबारी में हमारा यह छोटा-सा जहाज, गोलाबारी की आवाज़ से ही डूब सकता है। ऊपर से हवाई जहाजों की बम-वर्षा और नीचे जल में बिछी हुई लाइनों का भयानक विस्फोट! स्वजन-स्वदेश से दूर! न-जाने किस समय मृत्यु आकर हमारी साँस उड़ा ले जाय, कोई ठिकाना

है ? जब कोई भूमि का तट हमें दिखाई देने लगता है, तो हम सोचने लगते हैं—क्या हम वस्तुतः इसी स्थल के जीव हैं। नृत्य और क्रीड़ाओं से मुखरित, रूप और रस से परिप्लावित, फूलों और फलों से सुवासित वसुन्धरा जब हमारी कामना को डाँवाँडोल कर देती है, तब हमें उसकी निर्वासित सन्तान होने का बड़ा दुख होता है।"

महारानी बड़ी तन्मयता से सुन्दरम् की बातें सुन रही थी। उसी समय धीरे और मन्द्र चापों से वासंथी ने उस कमरे में प्रवेश किया।

सुन्दरम् कहता जा रहा था, "जब हम धरतीमाता से विदा होते हैं, तो हमारे मन में न-जाने कैसी-कैसी हिलोरें उठती हैं। जब हमारा किसी बन्दरगाह में अधिवास होता है, उसकी अवधि ही क्या है ? जैसे एक क्षण की झपकी, एक छोटा-सा सपना ! समुद्र की सर्वभक्षी सतह पर लौट जाना ही निरन्तर हमारे प्राणों में तीर-सा गड़ा रहता है। ऐसे जीवन में यदि कभी हमने किसी होटल की नौकरानी से या बार-कन्या से कोई परिहास कर दिया तो क्या वह हमारा उसे वचन देना हो गया ?"

सुन्दरम् की वाक्चातुरी और स्पष्टवादिता से महारानी सन्तुष्ट हो गई। उसके माथे पर का भार बहुत हल्का पड़ गया। तब उसने देखा, पास ही एक सोफे पर, गाल पर हाथ रक्खे हुए, वासंथी बैठी हुई बड़े ध्यान से बातें सुन रही थी।

महारानी ने पूछा, "वासंथी, तुम कब आईं यहाँ ?"

"भोजन का प्रबन्ध तो कभी से हो रहा था, आपने तो सभी कुछ कर दिया है।"

भोजन के समय तक तीनों ने बातचीत करते हुए सारे राजभवन की परिक्रमा की। रानी ने द्वीप की विभिन्न ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति से सुन्दरम् को अवगत कराया।

सब-कुछ देख-सुनकर सुन्दरम् के मन में एक विश्वास जाग उठा।

भोजन के समय महारानी ने उससे पूछा, "फिर क्या निश्चय किया तुमने ?"

"सम्भव है, यहीं से मैंने किसी की पुकार सुनी हो। आपकी आज्ञा-पालन के लिए पूरी चेष्टा करूँगा। ठीक-ठीक उत्तर कल को अपने सहकारी के साथ बातचीत करने पर ही दे सकूँगा।"

× × ×

दूसरे दिन सुबह ही सुन्दरम् अपने जहाज पर जा पहुँचा। दूर से ही उसे देखकर उसका सहकारी रूमाल हिलाकर हर्ष-उल्लास प्रकट करने लगा। जब कप्तान दौड़कर उसके पास आया तो वह कहने लगा, "कप्तान साहब, सब-कुछ ठीक हो गया है। मैंने जहाज में तेल भर लिया है। उसके पुर्जों की भी मरम्मत कर ली है। आपकी आज्ञा की देर है।"

"लेकिन मित्र !"—कप्तान ने बड़ी लालसा-भरी दृष्टि राजभवन की ओर निक्षेप की।

"आपने कल रेडियो की खबर नहीं सुनी। मैं भी आपसे कहना भूल गया। जापानियों ने हांगकांग पर अधिकार कर लिया है। वे जल और स्थल के मार्ग से मलाया प्रायद्वीप की ओर बढ़ना चाहते हैं। हृदय में अपने-आप बुरी-बुरी भावनाएँ बनती जा रही हैं। ऐसे नाज़ुक समय में हमें घर की ओर बढ़ना चाहिए। इस अपरिचित धरती और अगाध पानी में जीवन का जुआ नहीं खेलना चाहिए। इसके अतिरिक्त हमारे मालिक के प्रति कुछ कर्त्तव्य हैं। सम्भव है, एक दिन की देर से ही हमें जीवन-भर पछताना पड़ जाय।"

कप्तान को सहकारी के वक्तव्य में कुछ उपदेश की गन्ध मिली। उसे वह असह्य हो उठी, "तो क्या तुम समझते हो, मैंने अपने हाथ से मजबूरी गढ़ ली है और मौज उड़ाने के लिए यहाँ ठहर गया हूँ।"

सहकारी बड़ी नम्रता से बोला, "नहीं, मेरा ऐसा मतलब नहीं है।"

सुन्दरम् ने कहा, "देखो मित्र, मालिक के अतिरिक्त मानवता के प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य है। उसकी पूर्ति में अगर हमारे मालिक के अर्थ को कोई ठेस नहीं पहुँचती तो हम चाहे जो कर सकते हैं।"

"मैं नहीं समझा।"

"अगर मैं यहाँ मर जाऊँ तो क्या होगा?"

"यह क्या कह रहे हैं आप? ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

कप्तान ने सहकारी के कन्धे पर वात्सल्य का हाथ रक्खा, "मित्र, इस नश्वर जगत् में असम्भव कुछ भी नहीं है। थोड़ी देर के लिए मान लो, मालिक के उत्तरदायित्व की कोई क्षति किये बिना अगर मैं मर गया तो क्या तुम्हारा यह कर्तव्य न होगा कि तुम इस जहाज को हिन्दुस्तान ले जाओ।"

"ले जाना ही पड़ेगा।"

सुन्दरम् ने उसकी पीठ ठोक दी, "शाबाश, इसी उत्तर की तुमसे प्रत्याशा थी। अब समझ लो कप्तान सुन्दरम् सचमुच में मर गया और तुम इस जहाज को लेकर जाने के लिए विवश हो।"

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता!"—सहकारी ने विरोध किया।

"तुम अभी इसके विपरीत कह चुके हो। मैं तुम्हारा ऑफीसर हूँ। तुम्हें मेरी आज्ञा माननी पड़ेगी। लो यह चाबियों का गुच्छा है। इसके हस्तांरित होते ही कप्तान का पद तुम्हारा हो गया। मैं लिखकर भी तुम्हें दूँगा। चलो केबिन में।"—उसने गुच्छा दे दिया।

दोनों केबिन को चले। सहकारी बोला, "अब मैं तुमसे इस जहाज पर बड़ा हो गया हूँ।"

"अवश्य, मैं तुम्हें इसके लिए बधाई का पात्र समझता हूँ और बड़ी प्रसन्नता से बधाई देता हूँ।"

"मैं कुछ कहूँगा, तुम बुरा न मानना। सुन्दरम्, मैंने तुम्हें हमेशा ही एक सच्चरित्र युवक पाया था। इस द्वीप की आबहवा में तुम्हें यह क्या हो गया!"

"नहीं, कुछ नहीं हुआ है। भगवान् साक्षी है।"

"तुम एक नवयुवती के मोह-जाल में फँस गये प्रतीत होते हो।"

"ऐसी बात नहीं है, लेकिन रानी की विवशता ने मुझे जरूर खींच लिया है। इस द्वीप में एक भयानक नागा रहता है, वह अघोर तांत्रिक है—उसकी माया ने जरूर मुझे आकर्षित कर लिया है।"

नये कप्तान ने संशय की हँसी हँसते हुए कहा, "मित्र, मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा कि तुम इस पद-त्याग पर फिर कुछ देर विचार कर लो।"

"मैंने अच्छी तरह विचार कर लिया है। तुम पर यथार्थता प्रकट कर देता हूँ। बात ऐसी है इस द्वीप के महाराज और मन्त्री दोनों मार डाले गये हैं। द्वीप में कुछ खूँखार और जंगली लोगों की आबादी भी है। महारानी के मन में न जाने क्यों मेरे लिए विश्वास पैदा हो गया है।"

"उन जंगली लोगों से भिड़ाने के लिए उन्हें किसी की जरूरत होगी। द्वीप-वासी कोई तैयार न हुआ होगा। तुम परदेसी होने के सबब सहज ही नारी के प्रलोभन में फँस गये। नहीं, मैं अपने साथी को इस तरह प्रवास में प्राणों के संकट के लिए नहीं छोड़ जाऊँगा। मुझे इस जहाज़ की कप्तानी का लोभ त्याज्य है। लो अपनी चाबियाँ सँभालो।" —कहते हुए नया कप्तान उसे चाबियाँ लौटाने लगा।

सुन्दरम् ने केबिन की कुरसी पर बैठते हुए कहा, "अभी ठहर जाओ, सुन्दरम् के मन में कभी पश्चात्-विचार उत्पन्न नहीं होता। वह साफ़ सोचकर ही कोई काम करता है, और उसे बहुत कम पछताने के अवसर मिले हैं। बैठ जाओ कुरसी पर।"

नया कप्तान भी कुरसी पर बैठ गया, "अगर तुम्हारे माता-पिता या स्त्री-पुरुष भारत में होते तो तुम कदापि इस उच्छृंखल निश्चय पर कभी न पहुँचते।"—उसने चाबियों का गुच्छा मेज पर रख दिया।

"मनुष्य का कहीं घर नहीं है, वह तो पवन और पानी की तरह बहता ही रहता है। कायर और डरपोक लोग ही एक जगह अपना घर समझते हैं। प्राणों के लिए सर्वत्र ही संकट है। महारानी की असहाय

दशा ने मुझे द्रवित किया है। उन्होंने मुझे जो मन्त्री-पद दिया है, वह लालच के लिए इतना नहीं है जितना सेवा के लिए।"

"तब तुम्हारे मन्त्री-पद के लिए मैं भी बधाई देता हूँ।"—कहकर सहकारी ने चाबियों का गुच्छा मेज़ पर से उठा लिया।

"धन्यवाद, तुमने जिस तरह मेरी सहायता की ऐसे ही भगवान भी तुम्हारी मदद करेंगे।"—कहकर सुन्दरम् ने अपना वक्तव्य एक कागज़ में लिखकर नये कप्तान को दे दिया।

नये कप्तान ने उसे पढ़कर कहा, "ठीक है।"

"यह मालिक को दे देना। मेरी स्थिति समझा देना। कर्त्तव्य को परिश्रम और ईमानदारी से करना।"—दोनों बाहर निकल आए केबिन से।

सुन्दरम् का कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वह आगे कुछ न कह सका। उसने अपने साथी को गले लगाया और हाथ जोड़कर उससे नमस्कार किया। वह भूमि पर उतर गया और बड़ी माया-भरी दृष्टि से उस जहाज़ को देखने लगा।

नये कप्तान की आज्ञा से सीढ़ी ऊपर खींच ली गई और जहाज़ द्वीप के संसर्ग से विलग हो गया। वह सीटी देकर जहाज की विदाई की घोषणा करना चाहता था कि हठात् उसने पूर्व के आकाश में कुछ भयोत्पादक चिन्ह देखे। वह झट से अपनी दूरबीन निकाल लाया और उससे देखकर चिल्ला उठा, "हवाई जहाज़ों का बेड़ा!"

सुन्दरम् ने आकाश में देखा। अब ये जहाज़ तेजी से बहुत निकट आ गये थे। सुन्दरम् बोल उठा, "ये तो युद्ध-यान हैं!"

देखते-देखते कई हवाई जहाज द्वीप के ऊपर मँडराने लगे। खटा-खट उनमें से छतरियाँ खुलती गईं और पेराशूट कूदने लगे द्वीप की भूमि पर।

१७

जापानी ! जापानी !

नये और पुराने दोनों कप्तानों के मुख से सहसा निकल पड़ा—"जापानी ! जापानी !" दोनों कुछ देर के लिए उस विकट परिस्थिति पर जड़वत् हो गये। कैसे उसका प्रतिकार हो, उनकी समझ में ही नहीं आया।

घबराकर नये कप्तान ने कहा, "अब क्या होगा ?"

"नाड़ियों को दृढ़ करो और पूरी चाल से भगा ले चलो जहाज को।"—पुराने ने राय दी।

"भागते देख वह हवाई जहाजों से बम-वर्षा कर देंगे।"—नये कप्तान ने अपना संशय प्रकट किया।

"यहाँ रहने पर अगर छूट सकते हो तो जाने पर भी कोई कुछ न करेगा। मेरा विश्वास है अगर कोई क्षण नष्ट नहीं करते हो तो जान भी बच जायगी और मालिक का जहाज तथा माल भी। साहस करो, जल्दी करो।"

"तुम नहीं चलोगे ?"

"मैंने अपना जीवन-मरण द्वीप की रानी को सौंप दिया है। सीटी दो और भगदड़ मत दिखाओ, सहज चाल से चल दो।"

नये कप्तान ने अपनी प्रभुता की पहली सीटी बजाई। सहसा उसे कुछ याद आया। उसने दूसरी सीटी बजाकर पहली काट दी। जहाज रुका ही रह गया।

नया कप्तान चिल्लाया, "मित्र, वह चीन की पेटी !"

"हाँ ! वह चीन की पेटी ! निश्चय वही हमारी शत्रु हो गई ! अब तुम नहीं जा सकते। जापानी सैनिक द्वीप में उतर गये हैं।"

"सम्भव है उनकी दृष्टि अभी न खिंचे। मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ, चलो पेटी दिला दो। खलासी की कोई आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं ही उसे ले आऊँगा।"

"तुम जहाज़ पर ही रहो, मैं दौड़कर ले आता हूँ।"—कहता हुआ सुन्दरम् राजभवन की ओर दौड़ने लगा।

नया कप्तान भी जहाज़ पर से नीचे उतर गया था। दोनों साथ-साथ दौड़ने लगे। कुछ ही दूर जाने पर चार जापानी सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। चारों के पास रिवाल्वर थे। उनमें से एक ने कहा, "सावधान! ऐसे ही रुक जाओ।"

वे दोनों शस्त्रविहीन थे। रुक जाने के सिवा दूसरा कोई चारा ही नहीं था। फिर भी सुन्दरम् साहस करके बोला, "तुम हमें रोकने वाले कौन हो?"

"हम जापान के सिपाही हैं। तुम्हारे राजा अंग्रेज़ों ने हमारे विरुद्ध युद्ध छेड़ा है, इसलिए तुम भी हमारे शत्रु हो। यदि हमारा सामना करने के लिए तुम्हारे पास शस्त्र नहीं हैं, तो चलो हम तुम्हें अपने बन्दियों में भरती कर लेंगे।"

अंग्रेज़ी के माध्यम से सिपाहियों और कप्तान में बातचीत चल रही थी। कप्तानों ने अपनी मातृभाषा में बोलना शुरू किया। पुराना कप्तान बोला, "चीन का चालान मैं किसी तरह तुम्हारे पास पहुँचा दूँगा। तुम रात में इन्हें चकमा देकर भाग जाना।"

नया बोला, "और तुम?"

पुराने ने जवाब दिया, "ये मेरा कुछ नहीं कर सकते। मैं अंग्रेज़ की प्रजा नहीं हूँ। इस द्वीप की रानी का नौकर हूँ।"

इतने ही में एक जापानी सिपाही बीच में पड़कर बोला, "ख़बरदार तुम ऐसी भाषा में आपस में बातचीत नहीं कर सकते, जिसे हम न समझ सकें।"

सुन्दरम् बोला, "मेरा साथी अंग्रेज़ी नहीं जानता।"

"कुछ भी हो। तुम्हें चुप रहना होगा।"

दोनों बाध्य होकर चुप हो गये। एक सिपाही ने पूछा, "यह जहाज़ किसका है ?"

सुन्दरम् ने जवाब दिया, "मौजू भाई केकी भाई नामक एक प्राइवेट कम्पनी का।"

दूसरे सिपाही ने पूछा, "क्या माल लदा है ?"

"रबर और साबूदाना।"

तीसरे ने जिज्ञासा की, "जहाज़ सिंगापुर को जा रहा है ?"

सुन्दरम् ने जवाब दिया, "रबर और साबूदाना लेकर सिंगापुर को कैसे जायगा ?"

"दिखाओ गोला-बारूद तो नहीं है इसमें ?"

"देख लो।"—सुन्दरम् ने निर्भीक होकर कहा।

दूसरा सिपाही पूछने लगा, "फिर कहाँ को जा रहा है जहाज़ ?"

सुन्दरम् बोला, "चलकर देख क्यों नहीं लेते ? माल से ही पता लग जायगा। जहाज़ मद्रास को जा रहा है।"

उन चारों सिपाहियों में जो सबसे बड़ा ऑफ़ीसर था, उसने बाकी तीनों को जहाज़ में चलकर तलाशी लेने की आज्ञा दी। वह खुद भी उनके साथ गया, दोनों कप्तान भी। अच्छी तरह से देख-भाल कर सब बाहर आए।

ऑफ़ीसर ने पूछा, "जहाज़ का कप्तान कौन है ?"

पुराने कप्तान ने नये को आगे बढ़ाकर कहा, "यह है।"

"लेकिन इसे अंग्रेज़ी नहीं आती।"

"टूटी-फूटी जानता है।"

"तुम कौन हो ?"—ऑफ़ीसर ने पूछा।

"मैं द्वीप की रानी का प्राइवेट सेक्रेटरी हूँ।"

ऑफ़ीसर बोला, "मैं इस सामरिक अभियान का अधिनायक हूँ। तुम्हारा इस जहाज़ से क्या सम्बन्ध है ?"

"इसका यह कप्तान मेरा मित्र है।"—सुन्दरम् बोला।

"अगर यह हमारा एक काम कर दे तो हम इसे छोड़ सकते है।" कुछ सोचकर अधिनायक बोला, "हम इसे पारितोपिक देकर भी प्रसन्न कर सकते हैं। नहीं तो…"

'टूटी-फूटी' अंग्रेजी में आँखें तरेरकर नया कप्तान बोला, "नहीं तो क्या ? अंग्रेजों से तुम्हारी शत्रुता हुआ करे, मैं भारतीय हूँ।"

"तुम अंग्रेजों के गुलाम हो, इसलिए तुम्हारी गिनती क्यों न हम अपने दुश्मनों में करेंगे ?"

"नहीं, पिछली शताब्दी से हम स्वाधीन होने के लिए छटपटा रहे हैं।"

"अच्छी बात है, गुलामी को जो जाति हेय समझती है, वह आदर की पात्र है। जो उससे छूटने की चेष्टा करना चाहती है, हम उसकी सहर्ष सहायता करने को तैयार हैं।"

नया कप्तान बोला, "आप अपने काम की कहिए।"

अधिनायक ने उत्तर दिया, "हम अपने साथ कुछ परचे लाये हैं। हम उस साहित्य का प्रचार करना चाहते हैं। हम हवाई जहाजों द्वारा भारत के बड़े-बड़े नगर और ग्रामों में उन्हें बरसा देना चाहते थे, पर अभी उसका सुयोग नहीं आ रहा है। तुम इस जहाज में उन्हें ले जा सकते हो ?"

"अगर कहीं पकड़े गये तो…मैं तो जाऊँगा ही, मालिक की गर्दन भी फँस जायगी।"

"होशियारी के साथ छिपाकर ले जाना, कौन देखता है ?"—अधिनायक बोला।

सुन्दरम् ने कुछ सोचकर कहा, "बिना पढ़े कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता।"

"पढ़ने की क्या आवश्यकता है ?"

नया कप्तान बोला, "हमारे जहाज की तलाशी लेने की ही क्या आवश्यकता थी ?"

अधिनायक हँसा, "युद्ध के दिनों में मित्र-शत्रु दोनों के मन में ऐसी ही शंकाएँ बढ़ जाती हैं। जिस तरह हमें तुम्हारे जहाज़ में आपत्तिजनक कुछ नहीं मिला, ऐसे ही तुम भी हमारे साहित्य को बिल्कुल निर्दोष पाओगे।"

नए कप्तान ने सुन्दरम् की ओर देखा।

अधिनायक बोला, "जापान तुम्हारी सदियों की बेड़ी तोड़ने के लिए इधर आ रहा है, वह तुम्हारी मुक्ति का सहायक है।"

नया कप्तान बोला, "हम अपने ही बल पर मुक्त होना चाहते हैं। अपने ही बलिदान से राष्ट्रों ने अपनी बेड़ियाँ काटी हैं। हम विजाति की सहायता लेना घोर पाप समझते हैं।"

अधिनायक बोला, "तुम्हारा यह आदर्श और यह साहस स्तुति के योग्य है। लेकिन हम सारे एशिया का संगठन करना चाहते हैं। इस उद्देश्य में फिर तुम हमें विजाति का नाम नहीं दे सकते हो। हमारी ध्वनि होनी चाहिए—एशिया एशियावासियों के लिए!"

सुन्दरम् ने इस ध्वनि के समर्थन की दृष्टि से अपने मित्र की ओर देखा। उसने अधिनायक से पूछा, "उस साहित्य में है क्या, यह तो बता दो।"

"अंग्रेजों की कूटनीति का भंडाफोड़ किया गया है उसमें।"

"एक जाति दूसरे के लिए कूट ही होती है। आपका यह प्रचार-साहित्य भी तो वैसी ही चीज़ है।"—नये कप्तान ने कहा।

सुन्दरम् ने संकेत से नये कप्तान को कुछ समझा दिया और वह जापानियों के कैम्प में चलने के लिए सम्मत हो गया।

थोड़ी ही देर में सब लोग वहाँ पहुँच गये। जापानियों को उस द्वीप के तट में उतरे अभी कुछ ही देर हुई थी। इतने ही में उन्होंने वहाँ पर पूरा कैम्प बसा दिया था। दफ़्तर, गारद, कैंटीन, किचन, गोदाम सब इन्तज़ाम पूरे कर दिये थे और सभी अपने-अपने कर्त्तव्यों में लग गये थे।

पहरे पर के सिपाही ने बड़े आदर से अधिनायक को सलामी दी। अधिनायक ने उससे कहा, "ये दोनों जापान के मित्र हैं, इन्हें मेरे साथ कैम्प में आने दो।" सिपाही फिर सलाम कर पीछे हट गया। और पूर्ववत् पहरा देने लगा।

अभी कुछ देर पहले जहाँ पर कुछ भी नहीं था, बात-की-बात में जापानियों ने तम्बुओं का एक छोटा-सा गाँव वहाँ पर बसा दिया। अधिनायक उन दोनों को अपने शिविर में ले गया और जी खोलकर उनकी आवभगत की। जापानी नाश्ते, चाय और बढ़िया सिगरेटों से उनका सत्कार किया। दोनों कप्तानों को उसने सहज ही अपने वश में कर लिया।

छोटे-छोटे लिफ़ाफ़ों में वे परचे पहले ही से पैक किये हुए रक्खे थे। सुन्दरम् उनके उस कैम्प के विस्तार को देखकर बोला, "इतना बड़ा कैम्प क्या आपने पैराशूटों में ही उतारकर यहाँ पर रख दिया?"

हँसता हुआ अधिनायक बोला, "यह सब फोल्डिंग सामान है, सफ़री। पैकिंग की सफ़ाई है। भारी चीजें सब हवाई जहाज़ों से ही गिराई गई थीं। कुछ हल्का सामान पैराशूटों के साथ भी उतरा है। खोलकर फैला दिये जाने से ही इसने तुम्हारे मन में आश्चर्य पैदा कर दिया है।"

सुन्दरम् ने एक परचा पढ़कर अपने साथी को देते हुए कहा, "सत्य और पक्षपात-विहीन होकर देखा जाय तो इन काग़ज़ों में कोई अनुचित आक्षेप नहीं है।"

साथी ने कहा, "अंग्रेज जाति आज तक बौखला गई है भारत में। जब उसका भारत में कोई अस्तित्व ही नहीं था, तब के चार-पाँच सौ साल के पुराने हमारे साहित्य में भी उसे अराजकता की गन्ध आने लगी है। उसने कुछ पुरानी पुस्तकों के अंशों में प्रतिबन्ध लगा दिए हैं।"

सुन्दरम् बोला, "अराजकता! अंग्रेजों के लिए यह शब्द जो अर्थ रखता है, हमारे लिए उसके विरुद्ध ही इसकी व्याख्या है। उनकी अराजकता हमारी दिव्य स्वतन्त्रता है। लेकिन शब्दों के अर्थ तलवारों

की नोंक और तोपों के मुखों द्वारा लगाये जाते हैं।"

अधिनायक बोला, "जब तक उनका आतंक क्षीण नहीं हो जाता, तब तक कौशल से काम लिया जा सकता है। रबर की चादरों के बीच में यह साहित्य बड़ी आसानी से छिपकर जा सकता है। अंग्रेज कहाँ तक एक-एक चादर उठाकर देखने आवेगा ? अंततः तुम्हीं लोग तो उनके कर्मचारी हो।"

"हमारे ही कुछ स्वार्थ-लोलुप और खुशामदी लोगों ने ही दासता के बन्धन दृढ़ कर रक्खे हैं, नहीं तो सौ वर्ष पहले ही स्वतन्त्र हो गये होते।"—नया कप्तान बोला।

"नहीं, अब वैसी कोई बात नहीं है। शायद अब हमारे पापों का प्रायश्चित हो चुका है और हमें अपने कर्तव्यों की ठीक-ठीक पहचान हो गई है। कोई डर नहीं है मित्र, देश के लिए काम आ जाना ही इस नश्वर जन्म का सबसे बड़ा उपयोग है।"—सुन्दरम् ने मित्र की पीठ ठोककर कहा।

अधिनायक बोला, "शाबाश, तुम्हारे भीतर यह नया युग बोल रहा है। हम जापानियों ने देश के लिए अपने जीवन को मिट्टी के खिलौने की तरह तोड़ डाला है। हमारे शत्रुओं का इतिहास भी हमारे इस गौरव पर फूल चढ़ाता है।"

नया कप्तान कहने लगा, "हम क्या मौत से डरते हैं ? हम जिन्दगी को कपड़े की तरह मानते हैं, एक गया तो दूसरा बदल लिया।"

"तब तुम जरूर हमारा काम करोगे। हमारा क्या, वह तो तुम्हारी ही देश-सेवा है। वह समस्त एशिया का एकीकरण है। एशिया एक है, गोरी राजनीति अब उसके टुकड़े नहीं कर सकती।"—अधिनायक ने हाथ उठाकर बड़ी स्थिरता के साथ कहा।

नया कप्तान भी जोश में आ गया। बोला, "लाओ, जितने भी परचे हैं मुझे दो। मैं एक सत्य को अपने देशवासियों के बीच में फैलाने के लिए सब-कुछ करने को तैयार हूँ।"

अधिनायक ने एक सन्तरी को उन परचों के बण्डल निकाल लाने की आज्ञा दी और उसने कप्तान से कहा, "हर सूबे की काँग्रेस 'कमेटी के नाम एक-एक पार्सल भेज देना, हर पार्सल में एक-एक पत्र है। वे उस हिसाब से अपने-अपने जिलों में इन परचों को घुमा देंगे। डाक-खर्च के लिए भी हम आपको आपके ही सिक्कों में क़ीमत अदा कर देंगे।"

नया कप्तान बोला, "लेकिन हमने सुना है, काँग्रेस कमेटियों में कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। कई जगह तो ताले भी पड़े हैं।"

"ताले पड़ने से क्या होता है? युग की लहर तो अवरोध पाकर लोहे की दीवारों को भी तोड़ देती है। प्रतिबन्ध केवल दिखावे के होकर रह जाते हैं। छिपे-छिपे दूनी-चौगुनी शक्ति से सब काम होने लगते हैं।"—अधिनायक ने कहा।

"अच्छी बात है, मैं किसी तरह इन्हें बँटवा दूँगा।"

सन्तरी पार्सलों के बोझ को ले आया और एक दूसरा ऑफ़ीसर एक लिफ़ाफ़े में कुछ नोट लेकर आया। उसने वे नोट अधिनायक को दे दिये। अधिनायक ने उन्हें कप्तान को देते हुए कहा, "लो, यह डाक-खर्च है।"

"नहीं, मैं अपनी देश-सेवा को बेचूँगा नहीं।"

अधिनायक बोला, "अब निश्चिन्त हुआ। तुम जरूर इस काम को सफलता से पूरा करोगे। एक-एक काग़ज़ कम-से-कम एक-एक हज़ार मनुष्यों की आँखों से होकर गुजर जाय, हमने ऐसी योजना बनाई है। ऐसा हो सकेगा, हमें अब इसका विश्वास हो गया।"

सुन्दरम् ने कहा, "आप अपनी गतिविधियाँ अभी अपने कैम्प तक ही सीमित रखिये। इस द्वीप के निवासी बड़ी सरल प्रकृति के हैं। रानी तो और भी जरा-जरा-सी बातों में घबरा उठती हैं। मैं उन्हें जाकर सारी स्थिति समझा दूँगा, तब तुम अपने हाथ-पैर फैलाना। मैं तुम्हारे इस साहित्य को भिजवा आता हूँ और साथ ही अपनी एक

पेटी भी।"

अधिनायक ने दोनों हाथ मिलाकर उन्हें विदा किया। कप्तान साहित्य-सहित उस सन्तरी को लेकर जहाज को चला और सुन्दरम् राजभवन को। आकाश पर के हवाई जहाज उसी समय जहाँ से आये थे, वहीं को चल दिये थे।

१८

कर्नल हिक्स

जापानी हवाई जहाजों से कर्णद्वीप का आकाश-मण्डल घिर जाने से वहाँ इतना आतंक नहीं छा गया, जितना उन पैराशूटों के उतरने से। वे लोग उसे कोई महान् दैवी आक्रमण समझकर भयत्रस्त हो उठे। जो जहाँ था, वहीं छिप गया।

द्वीप-भर में जीवन इस प्रकार अदृश्य और स्तब्ध हो गया मानो उसके ऊपर काली रात छा गई। उजाड़ और बन्द झोंपड़ियों में भय और संशय खुसफुसाने लगे। राजधानी में उसके निवासियों की क्या, पहरेदार भी द्वार बन्द कर भीतर हो गये। पशु-पक्षियों की भी दम सूख गई। कुत्ते भी अपनी दुम दबाकर रह गये।

हवाई जहाज तो हमेशा ही उस द्वीप से होकर आते-जाते ही थे, पर दूरी पर एक निर्दोष पक्षी की तरह उनका आवागमन होता था। इस तरह उनमें से दर्जनों छतरियाँ खुलकर कभी कर्णद्वीप की धरती पर नहीं कूदी थीं। जिसे भगवान् की सत्ता में सन्देह था, वह भी हाथ जोड़कर उनसे अपने पापों के लिए क्षमा माँगने लगा।

द्वीप के पश्चिमी कर्ण पर जापानी उतरे थे। पहाड़ों पर वन-वासियों की आबादी को इसकी कोई खबर न हुई। इसलिए उनके बीच में कोई भय नहीं फैला और वे रोज़ की तरह अपने काम करते जा रहे थे।

रानी उन पैराशूटों के उतरते ही समझ गई, द्वितीय विश्व-युद्ध में उसकी इच्छा के विरुद्ध वह भी सान ली गई। लड़नेवालों में से किसी के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। लड़ाकुओं में से एक दल के वहाँ आ जाने से अब उसकी वह उदासीन वृत्ति कुंठित हो जायगी, यह

सोचकर वह बड़े त्रास में पड़ गई। वह अपनी एकमात्र राजकुमारी को लेकर राजभवन के सबसे बीच के कमरे में जाकर बन्द हो गई।

सुन्दरम् अकेला ही राजभवन को जा रहा था। मार्ग में उसने देखा—आगे-पीछे, अगल-बगल, जल-स्थल कहीं पर भी उसे जीवन का कोई स्पन्दन नहीं दीखा। नर-नारी, पशु-पक्षी किसी की भी छाया उसे नहीं मिली। वह जाते-जाते अपने मन में सोचने लगा—'ये लोग बड़े डरपोक स्वभाव के हैं। ऐसी भी मौत की क्या डर? उसका तो एक ही समय और एक ही स्थान नियत है। शायद ये लोग अपढ़ मजदूर हैं। फिर कभी इन लोगों ने युद्ध के इन नवीनतम उपकरणों से साक्षात्कार नहीं किया है।'

लेकिन राजधानी में पहुँचकर भी उसने उसी शून्यता का अनुभव किया जो मजदूरों की बस्ती में थी। सब अपने-अपने घरों के दरवाज़े ढककर भीतर बन्द पड़े थे। सुन्दरम् के मन में यह भावना उठी—'इसी कारण रानी ने मुझे इतने दिन से शून्य पड़े हुए मन्त्री के स्थान से नियुक्ति दी है। महारानी के राज-कर्मचारियों ने भी जान पड़ता है कभी देश-परदेश के दर्शन नहीं किये हैं। न कभी युद्ध और विग्रह में भाग ही लिया है।'

उस अवरुद्ध कक्ष में अपने ही बन्धन पहनकर रानी ने कहा, "वासंथी, ऐसे संकट के समय में हमने जो मन्त्री की नियुक्ति की है, वह शायद एक शुभ संयोग है।"

"लेकिन उनकी नियुक्ति के दिन ही यह पैराशूटों का यहाँ कूद जाना, कदाचित् उनके लिए भयानक विपद का सामना करना हो गया है। इतनी देर हो गई और वे अभी तक नहीं लौटे हैं।"—वासंथी ने कहा।

"हाँ, मुझे भी यह देर खटकने लगी है।"

"महारानी जी, कोई उपाय करना चाहिए।"

"हमारे सैनिकों में शौर्य और साहस कुछ भी नहीं रहा। महाराज

और मन्त्री की मृत्यु के बाद तो वे बिल्कुल डरपोक और आलसी हो गये। ठहरो, मैं बाहर जाकर कुछ प्रबन्ध करती हूँ । थोड़े-से सिपाहियों को समुद्र-तट पर भेजकर समाचार मँगाती हूँ।"

वासंथी ने कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ।"

दोनों कमरे के द्वार खोलकर बाहर आईं। ऊपर से उन्होंने अन्तः-पुर की रक्षिका को पुकारा। वह भी छिपी बैठी थी, उसे साथ लेकर वे नीचे उतरीं। वहाँ से वे दो प्रहरियों को बुलाकर प्रांगण में आईं। बाहर का द्वार खोलने के लिए प्रहरी हिचकिचाने लगे।

इतने में बाहर से किसी ने खटखटाया, "द्वार खोलो इससे पहले महारानी जी की आज्ञा ले लो।"

महारानी ने भयाकुल होकर पूछा, "क्या है?"

"वही कलवाला परदेशी आया है, वह आपसे भेंट करना चाहता है। हम नहीं जानते उसके मन में क्या है, इसलिए हमने उसे बाहर ही रोक रक्खा है।"—प्रहरी ने बाहर से कहा।

वासंथी अपने हाथ से द्वार खोलने लगी थी। महारानी ने उसका हाथ रोककर कहा, "जाकर उनका नाम पूछ आओ।"

कुछ देर की संशय-स्तब्ध प्रतीक्षा में प्रहरी ने कहा, "उनका नाम सुन्दरम् है।"

"आदर के साथ उन्हें भीतर बुला लाओ।"—महारानी ने स्वयं द्वार खोलकर कहा।

मन्त्री को देखते ही महारानी ने पहला प्रश्न किया, "मन्त्री, यह क्या हो गया?"

"महारानी जी, चिन्ता की कोई बात नहीं है। हमारे सन्निकट के देशों में युद्ध ने अपना विकराल रूप प्रकट किया है। अगर एकाध चिनगारी हमारे द्वीप पर भी पड़ गई तो क्या बात है?"

महारानी घबरा उठीं, उन्होंने सुन्दरम् को राजभवन के भीतर खींचकर द्वार बन्द करने को हाथ बढ़ाया।

"यह क्या कर रही हैं आप ? आप भारत की क्षत्राणी हैं। आपकी यह भय की भावना सारे द्वीप में संकट फैला देगी।"—सुन्दरम् ने द्वार को उन्मुक्त कर कहा, "प्रहरियो, जाओ राजधानी के सब बन्द द्वारों को खुलवा दो। सबसे कह दो सब अपने-अपने काम करें। भय का कोई कारण नहीं है।"

महारानी ने पूछा, "सुन्दरम्, ये लोग कौन हैं ?"

"जापानी आक्रमणकारी हैं।"

वासंथी अपनी माता की ओट में छिप गई, "जापानी आक्रमण-कारी ! बड़े निर्दय और कठोर ! हे भगवान्, ये क्यों हमारे द्वीप में आ गये ?"

रानी चिल्ला उठी, "हमने क्या बिगाड़ा है किसी का ?"

"नहीं, वे भी हमारा कोई बिगाड़ न कर सकेंगे। मैंने इस अभियान के अधिनायक से बातें की हैं। वह समझदार और दयालु है। वह युद्ध करना भी जानता है और न्याय का भी उसे ध्यान है।"

"क्या यही उसका न्याय है मन्त्री ! यह मेरी भूमि है। कितना ही इसका क्षेत्रफल छोटा क्यों न हो, अधिकार तो अधिकार ही है। किसी के अधिकार को इस तरह रौंदनेवाले को तुम न्यायी कह रहे हो ?"—रानी अभिमानपूर्वक बोली।

"आपके लिए उसके हृदय में पूरा-पूरा सम्मान है।"

"कहाँ से है ? बिना मेरी आज्ञा लिये वह मेरी धरती पर कूद आया ! क्यों कूद आया ? यह सरासर मेरा अपमान है। मन्त्री, इसके सिवा हम उदासीन हैं। हमें किसी मित्र-शत्रु की पहचान नहीं है।"

"महारानी जी, मैं आपका यह सन्देश उसके पास तक ले जाऊंगा और उसके यहाँ आने से जो हमारी प्रजा को मानसिक कष्ट पहुँचा है; तथा काम-काज के बन्द हो जाने से जो आर्थिक हानि हुई है—उसकी क्षति-पूर्ति करने को कहूँगा।"

"हाँ, तुम्हारी इसी योग्यता पर तो मैंने तुम्हें अपना मन्त्री-पद

दिया है।"—रानी ने धैर्य की साँस लेकर कहा।

वासंथी ने पूछा, "वे कितने लोग हैं?"

सुन्दरम् बोला, "सबको देखा नहीं। वे तम्बुओं के भीतर अपने-अपने काम में लगे हैं। होंगे अन्दाजन बीस-पच्चीस मनुष्य।"

वासंथी ने फिर पूछा, "उन्होंने तुमसे किस भाव से बातें कीं—मित्रता के या शत्रुता के?"

"मित्रता का ही भाव है।"

"इसमें कोई धोखा या कूटनीति तो नहीं है?"

"भगवान् जाने! इस समय सबसे पहले मुझे अपने जहाज़ को भारत भेज देना है। वह चीन की पेटी दे दीजिए।"

महारानी अवसन्न होकर कुछ सोचने लगी, "नहीं सुन्दरम्, अभी उस जहाज़ को कुछ दिन के लिए रोक क्यों नहीं देते?"

"महारानी जी, इससे कोई मतलब सिद्ध नहीं होता। यह दूसरे की चीज़ है, उसे अपने मालिक के पास शीघ्र से शीघ्र जाना चाहिए।"

"पेटी भेज दो किसी खलासी के हाथ, तुम यहीं रहो।"

"नहीं, मुझे अपने मित्र को विदा देने के लिए तट पर जाना ही चाहिए। अगर वह सम्मत न होता तो मैं इस द्वीप की सेवा के लिए कदापि अवसर न पाता।"

महारानी विचारों में निमग्न वासंथी और सुन्दरम् के साथ राज-भवन की सीढ़ियों का अतिक्रमण करती हुई अपने कक्ष में आई। उसने तिजूरी खोलकर वह चीन की पेटी मन्त्री को सौंपते हुए कहा, "इसकी रक्षा के लिए कुछ लोगों को साथ ले जाना ठीक होगा।"

"नहीं महारानी जी, आप कोई चिन्ता न करें। मैं शीघ्र वापस आ जाऊँगा।"—कहकर सुन्दरम् उस पेटी को लेकर चला गया।

वासंथी के मन में एक शंका प्रकट हुई, "महारानी जी, अगर सुन्दरम् उस जहाज़ में चढ़कर स्वयं भी चले गये तो?"

"हाँ, मेरे मन में भी यही विचार आता है।"—महारानी द्रुत

पद से सीढ़ियों पर उतर गईं और उन्होंने पुकारा, "सुन्दरम्! सुन्दरम्!"

सुन्दरम् कुछ दूर जा चुका था। एक पहरेदार उसे बुला लाया। वह आकर रानी के सामने खड़ा हो गया। वह रानी के मन की शंका समझ गया। बोला, "महारानी जी, मैं आपकी बात समझ गया हूँ। नहीं ऐसी बात नहीं है। सुन्दरम् को युद्ध का ऐसा भय नहीं है कि वह भारत को जाते हुए जहाज़ में बैठकर भाग जाय। मैंने आपको जो वचन दिया है उसे अपने रक्त की अंतिम बूँद से भी पूरा करूँगा।"

महारानी और वासंथी के आश्चर्य का पारावार न रहा। रानी हाथ जोड़कर कहने लगी, "सुन्दरम्, तुम तो कोई योगी जान पड़ते हो। हमें क्षमा करो। अवश्य ही हमारे मन में तुम्हारे लिए ऐसी झूठी बात उपज गई थी।"

"आप चलें न मेरे साथ।"

"नहीं, हमारा अंतःकरण अब तुम्हारे लिए शुद्ध हो चुका।"

"शुद्ध अंतःकरण निर्भय होता है। मनुष्य के बहुत बड़े दुर्गुण का नाम भय है। विपद् स्वयं नहीं आती, भय ही उसे अपने पास खींच लेता है। भय-त्रस्त होकर अपने ही भवन को कारागार बना लेना राजसी तेज का उपहास करना है। राजभवन के द्वारों को बन्द देखकर ही तो सारी प्रजा में भय फैल गया है। इन्हें मुक्त देख लेने पर सब निर्भय हो जावेंगे।"

महारानी ने सुन्दरम् की बात मान ली और उसी समय सारे राजभवन के द्वारों को खोल देने की आज्ञा दे दी। सचमुच में उनकी देखा-देखी सभी द्वार खुलने लगे।

सुन्दरम् अकेले ही चीन की पेटी हाथ में लिये समुद्र-तट की ओर चला। वहाँ पहुँचकर उसने देखा, उसके मित्र ने तमाम परचों के पार्सल जहाज़ में छिपाकर रख दिये थे। चीन की पेटी को यथास्थान रखकर उसने अपने मित्र से विदा ली और नीचे उतर गया। सीढ़ी खींचकर जहाज़ ने सीटी दी। और कुछ देर तक दोनों मित्र अपने-अपने रुमाल

हिलाकर अपने स्नेह की शृंखला जोड़ते रहे।

कार्गोशिप को भारत की दिशा में प्रस्थान कराकर सुन्दरम् जापानियों के कैम्प में जा पहुँचा। प्रहरी ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया। अधिनायक स्वयं बाहर आकर उसे अपने तम्बू में ले गया। उसे एक कुरसी पर बिठाकर बोला, "मित्र, हमारा सम्बन्ध बहुत दिन तक चलेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। शक मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है। संसार का यह महाभारत शक की बुनियाद पाकर ही इतना उग्र रूप धारण कर लेता है। हमारे बीच में शक की कोई जगह नहीं बनी है इसी से कहता हूँ। हम और भी अधिक एक-दूसरे के निकट आवेंगे। मेरा नाम हिंकू है—कर्नल हिंकू।"—अभियान के प्रधान ने सुन्दरम् की तरफ हाथ बढ़ाया।

सुन्दरम् ने उठकर अपना हाथ मिलाते हुए कहा, "इस सेवक का नाम सुन्दरम् है।"

हिंकू ने एक बढ़िया सिगरेट सुन्दरम् की ओर बढ़ाते हुए कहा—"मित्र, एशिया एशियावालों के लिए है—इस आवाज को सारे जगत् में व्याप्त कर देना है। कोई कारण नहीं है कि ये गोरे चमड़ेवाले हमारे विधायक होकर एशिया की धरतियों का सार-सर्वस्व लूटते रहें। हमें इनको यहाँ से निकाल बाहर करना है। इस महती प्रेरणा को लेकर आज जापान आगे बढ़ा है।"

सुन्दरम् अपने मन में सोचने लगा, "जापान ने रोम-बर्लिन धुरी के साथ सम्बन्ध किया है—क्या यही इसकी वह महती प्रेरणा है?"

हिंकू बोला, "तुम्हारे मन में जरूर यह शंका उठती होगी, गोरी जातियों से सम्बन्ध कर यह कैसी बातें कर रहा है? भाई, यह राजनीति है, इसमें अगर इतनी कूटता का व्यवहार न किया जायगा तो हम कुचल दिये जावेंगे।"

सुन्दरम् ने उदासीन भाव से कहा, "ऐसा तो नहीं, पर ऐसा हम जरूर सोच रहे हैं, क्या एक एशियावासी को दूसरे एशियावासी की

भूमि दबा लेनी उचित है ?"

हिंकू बगलें झाँकता हुआ बोला, "क्या ? क्या ? सुन्दरम् तुम क्या कह रहे हो यह ?"

सुन्दरम् ने उसी उच्चारण में जवाब दिया, "हाँ हिंकू, हमारे-तुम्हारे बीच में कोई मैली धारणा न रह जानी चाहिए, नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि हमारी मित्रता की बुनियाद में ही पोल रह जायगी।"

हिंकू ने कहा, "हाँ, मैं भी सफ़ाई-पसन्द हूँ।"

"मेरे द्वीप की रानी की यह घोर आपत्ति है, आपने बिना किसी लिखा-पढ़ी के, बिना किसी राजदूत को भेजे ही हमारे द्वीप के तट पर जो अधिकार कर लिया है, यह सर्वथा राजनीति के सभ्य सिद्धान्तों के ख़िलाफ़ बात है।"

कुछ पछतावे के साथ कर्नल हिंकू बोला, "हो सकता है, पर इस द्वीप के साथ डाक की कोई व्यवस्था तो है नहीं। न बेतार के तार ग्रहण का ही कोई साधन है यहाँ। अधिकांश नक्शों में तुम्हारे इस द्वीप का ही पता नहीं है। हवाई जहाज़ पर से हमने तुम्हारे द्वीप की स्थिति पाई और इसे अपने अभियान का आधार बनाने योग्य पाया, अतः हम यहाँ उतर गये।'

सुन्दरम् ने सोचा—'कर्नल ठीक ही कह रहा है।"

"मित्र, अगर तुम्हारे द्वीप की भौगोलिकों द्वारा उपेक्षा न भी होती तो शायद हम यही मार्ग अनुसरण करने के लिए विवश होते। युद्ध-काल में कई योजनाएँ इतनी जल्दी हमें कार्य में बदलनी होती हैं कि साधारण शिष्टाचार भी नहीं कर पाते। हमारे प्रवेश की इस विवशता के लिए हम बार-बार माफ़ी चाहते हैं। तुम्हारे द्वीप को कोई क्षति पहुँचाना हमारा उद्देश्य नहीं है। अगर तुम्हारी रानी को हमारा यहाँ आना मान्य नहीं है तो हम यहाँ से चले जावेंगे।"

"लेकिन आप जा कैसे सकते हैं। हवा और पानी के दोनों मार्गों के लिए आपके पास यान ही कहाँ हैं ?"—सुन्दरम् ने पूछा।

"यानों की कोई चिन्ता नहीं है । हम अभी बेतार द्वारा संवाद भेजकर कुछ भी अपने लिए प्रस्तुत कर सकते हैं।"—हिंकू ने रूखेपन से कहा, "जाकर अपनी रानी से पूछो, यदि हमारा यहाँ आना प्रतिकार नहीं है तो···"

सुन्दरम् ने बीच ही में कहा, "नहीं, आप हमारे हिताकांक्षी हैं। सम्पूर्ण एशिया के हिताकांक्षी हैं। आप हमारे अतिथि होकर रहें यहाँ। मैं रानी जी से आपकी सिफारिश करूँगा । कहिए, हम आपकी क्या सेवा करें ?"

हिंकू प्रसन्न होकर प्रसन्न होकर बोला, "तुम्हें धन्यवाद है। बहुत कुछ रसद हम अपने साथ लाय हैं । शेष आवश्यकताएँ हमारी हवाई जहाजों द्वारा पूरी होती रहेंगी। अगर किसी चीज की जरूरत हो गई तो हम जरूर आप से कहेंगे।"

सुन्दरम् उससे हाथ मिलाकर विदा हो गया । बाहर पहरे के सिपाही ने इस बार अपनी गति में यति देकर उसे सलामी दी। सुन्दरम् ने अपने मन में सोचा—'जरूर इसे यह शिष्टाचार सिखाया गया है। अब मुझे कर्नल हिंकू के तम्बू में घुसने के लिए प्रतीक्षा न करनी पड़ेगी।'

१६

हिंकू का अँगूठा

आशंकित होकर रानी ने कहा, "उनकी मित्रता हमारे किसी काम की वस्तु नहीं है। इस महासमुद्र में अंग्रेजों का ही बोलबाला है, अगर उन्हें ज़रा भी यह पता चल गया कि हमने जापानियों को आश्रय दिया है तो वे हमारे इस छोटे-से द्वीप के टुकड़े-टुकड़े उड़ा देंगे। मन्त्री, हमारे लिए तो न इनकी मित्रता चाहिए, न उनकी शत्रुता। दोनों भयानक चीज़ें हैं।"

सुन्दरम् ने प्रत्युत्तर में कहा, "लेकिन रानी जी, हमें उदासीन होकर रहने कौन देगा? इस भयानक विश्व-समर में, दो लड़ाकुओं के बीच में पड़ा हुआ कैसे कोई अछूता रह सकेगा? ज़रूर कहीं-न-कहीं से उस पर चिनगारी पड़ जायगी। अवश्य किसी-न-किसी के साथ के लिए वह खींच ही लिया जायगा।"

रानी सोच-विचार में पड़ गई।

सुन्दरम् ने तेजस्विता के साथ कहा, "साथ देना ही पड़ेगा। यह अटल निश्चय है। किसका साथ दें? हमारी बुद्धिमत्ता उस साथी की सही छाँट में है रानी जी।"

वासंथी रानी के पास सिमटकर बैठ गई थी। सुन्दरम् की बातें सुनकर वह उससे विभक्त होकर बोली, "ठीक तो है।"

"तो क्या जापानी ही ठीक साथी हैं हमारे?"—रानी ने पूछा।

"मेरी समझ यही कहती है।"

"क्यों?"

"अनायास ही वह हमारे द्वीप में उतर पड़े हैं।"

"यह उनकी कुचेष्टा है।"

"नियति का संकेत भी हो सकता है। रानी जी, उनका स्वर है—'एशिया एशियानिवासियों का'—मैं इस मन्त्र के वशीभूत हुआ हूँ। हम कितने ही दुर्बल और अरक्षित क्यों न हों, अगर नैतिकता हमारा आधार है तो हमारा कोई बाल बाँका नहीं कर सकता।"

"क्या है वह नैतिकता ?"

"एशिया एशियावासियों के लिए!"

"बड़ा स्वार्थ-भरा तुम्हारा यह मन्त्र है। ब्रिटिश सिंह, जो हमारे सन्निकट है, इसका क्या अर्थ लगावेगा। फिर हमारी क्या दशा होगी मन्त्री ?"—रानी ने वासंथी को अपनी ओर खींच लिया।

वासंथी ने अपने दोनों हाथ रानी के कन्धों पर रखकर अपना मुख उसकी पीठ पर लटका दिया।

"क्या कर लेगा वह ब्रिटिश सिंह ? दूसरे के घर में दहाड़ने का उसे क्या अधिकार है? एशिया एशियानिवासियों के लिए! इस ध्वनि में क्या अधर्म है ? क्या अनीति है ? वह जितना ही इस ध्वनि का विरोध करेगा, उतना ही यह प्रबल होती जायगी। एक दिन उसे अपने समुद्र-पार के साम्राज्य को तिलांजलि देकर अपने घर लौट जाना पड़ेगा।"—सुन्दरम् ने उस कक्ष को प्रतिध्वनित कर कहा।

रानी के मन में कुछ आश्वासन बढ़ता जान पड़ा।

सुन्दरम् बोला, "महारानी जी, जीवन का तत्व यही है, अगर हम किसी को निगल जाने का लक्ष्य नहीं रखते तो कोई हमको क्षति नहीं पहुँचा सकता।"

रानी ने पूछा, "इन जापानियों का यहाँ उतरने से मतलब क्या है ?"

"युद्ध के इस भाग के लिए उन्होंने हमारे द्वीप को आधार बनाया है। वे भारत में श्वेतांगों के खिलाफ प्रचार कर अपना बल बढ़ाना चाहते हैं। मेरे कार्गोशिप द्वारा हजारों बम उन्होंने भारत को भेज भी दिये हैं।"—कुछ मुसकान के साथ सुन्दरम् बोला।

वासंथी मुख पर भय दिखाकर बोली, "बम कैसे ?"

"परचे भेजे हैं, वह क्या बम से कम भयानक हैं।"

रानी बोली, "लेकिन वे बिना मेरी आज्ञा के यहाँ आये ही कैसे ?"

सुन्दरम् को हिंकू ने इसके पक्ष में जो तर्क दिया था, वह उसने रानी को समझाकर कहा, "नकशों में हमारे इस छोटे-से द्वीप का कोई चिह्न न होने से भी यह सम्भव हुआ। इसके सिवा उनके उड़ते हुए हवाई जहाज़ों ने इस द्वीप को देखकर ही, इसे आधार बनाने का निश्चय किया।"

"इस अशिष्टाचार का उन्हें कुछ क्षोभ नहीं है ?"—रानी ने पूछा।

"रानी जी, वे तो यहाँ तक कहते हैं—अगर आपको उनका यहाँ आना मान्य नहीं है तो वे शीघ्र ही यहाँ से चले जावेंगे।"

वासंथी कहने लगी, "नहीं, नहीं।"

रानी ने भी कहा, "नहीं सुन्दरम्, जब तुम्हें उनके यहाँ आने में कोई आपत्ति नहीं है तो मुझे भी नहीं होनी चाहिए। मैंने तुम्हें जब अपना मन्त्री बनाया है तो मुझे तुम्हारे निर्णय का आदर करना चाहिए। वे आ गये हैं, उन्हें आ जाने दो। पर उन्हें कुछ प्रतिबन्ध हमारे मानने ही पड़ेंगे।"

"क्या हैं वे ?"

"वे कितने लोग आये हैं ? और अपने साथ क्या-क्या लाये हैं ?"

"वे बहुत सामान लाये हैं। थोड़ी ही देर में उन्होंने एक छोटा-सा गाँव बसा दिया है। पूरी छावनी आबाद कर दी है वहाँ पर।"

"इतनी जल्दी ?"

"तम्बू लाये हैं, फोल्डिंग फरनीचर, वायरलेस के सेट, रेडियो, औज़ार, हथियार, गोला-बारूद और समुद्र में बिछाने को माइनें भी लाये हैं। तमाम कर्मचारी सधे हुए हैं। पलक मारते ही मानो बिजली का कोई बटन दबाकर उन्होंने पूरी छावनी खड़ी कर दी। बीस-पचीस आदमी हैं अभी लेकिन आवश्यकता होने पर और भी आ सकते हैं"

"बड़े भयानक लोग जान पड़ते हैं ये। सुन्दरम्, तुम इन्हें द्वीप की मित्रता का वचन दे आये हो, वह निभाना ही पड़ेगी। समस्त एशिया की एकता का तो मुझे यह स्वाँग ही जान पड़ता है। राजनीति के भीतर उदारता का अर्थ दोहरा होता है।"

"लेकिन इतना बड़ा जापान साम्राज्य हमारे छोटे-से द्वीप पर क्या दाँत गड़ावेगा ?"

"पर हम बीच में कुचले जा सकते हैं, इसलिए हमें बहुत सावधान होने की आवश्यकता है।"

"हम सावधान रहेंगे महारानी ! इस अभियान का अधिनायक कर्नल हिंकू मेरा मित्र हो गया है, और वह मुझे समझदार व्यक्ति जान पड़ता है।"

"सुन्दरम्, राजनीति में अपना स्वार्थ ही सबसे बड़ी समझ है। इसलिए तुम्हें सावधान होने के लिए उन्हें अपने प्रतिबन्धों में बाँध लेना पड़ेगा। कर्नल हिंकू को हमें यह लिखकर देना पड़ेगा कि उसकी गति-विधि उसके कैम्प तक ही सीमित रहेगी। उसके दल को हमारी भूमि के किसी भाग पर जाने का कोई अधिकार न होगा। उसे यह लिखकर हमें देना होगा।"

"मैं आज ही लिखा लाऊँगा।"

"इसके सिवा एक बात और है। उन्हें यहाँ जापानी वेश-भूषा छोड़ देनी होगी। उनके समस्त नौकर-चाकरों को द्वीप-वासियों की तरह कमर में पत्ते बाँधने पड़ेंगे और शेष अंग नंगा ही रखना पड़ेगा। ताकि समुद्र में आने-जाने वाले जहाजों या आकाश-यानों को उन्हें यहाँ देखकर कोई सन्देह न हो। ये युद्ध के भयानक दिन हैं मन्त्री और दिन-दिन यह आग धधकती ही चली जा रही है। कूटनीतिज्ञ ब्रिटिश सिंह की आँखों में हम धूल नहीं डाल सकते।"

सुन्दरम् ने हँसकर कहा, "महारानी, जब बुरे दिन आते हैं तो शेर फँस जाता है मकड़ी के जाले में।"

वासंथी बड़ी ऊँची आवाज़ में हँसती रही।

सुन्दरम् ने कहा, "जापानियों को नंगे होकर कमर में पत्ते लपेट लेने पर क्यों कोई आपत्ति होगी? इस द्वीप की आबहवा ऐसा ही फ़ैशन माँगती है। यह पतलून और कमीज़ मुझे भी असह्य हो गई है।"

"सुन्दरम्, तुम भी क्यों न कमर में पत्तियाँ बाँधकर द्वीप की आबादी में विलीन हो जाओ।"—वासंथी हँसती हुई अपनी रेशम की बारीक चोली और परिकर को देखने लगी।

सुन्दरम् कहीं यही वाक्य वासंथी को लौटा न दे, यह सोचकर रानी कहने लगी, "मनुष्य अपने मन से कुछ नहीं गढ़ता। प्रकृति के सामंजस्य में ही उसे सब-कुछ करना पड़ता है। चाहती तो हम भी हैं, इन वस्त्रों के संभार को और कुछ कम कर दें..."

"चादर तो कम कर रक्खी है आप लोगों ने।"

"क्या करें? रूढ़ि की रेखा बड़ी गहरी गड़ी होती है, उसकी अर्थविहीनता जान-बूझकर भी उपयोग में लानी पड़ती है। इन द्वीप-वासियों के इस अर्द्धनग्न फैशन को देखते-देखते हम आदी हो गये हैं। वास्तव में विकार मनुष्य के मन में है। द्वीप की इस वेश-भूषा से क्या इनके शील में कोई कमी दिखाई देती है तुम्हें?"

"नहीं, कुछ भी नहीं।"—सुन्दरम् ने जवाब दिया।

"राजधानी के उच्च घराने के पुरुष कर्मचारी तो अर्द्धनग्न रहते ही थे। कमर में एक तहमत बाँधते थे, कोई-कोई कन्धे पर एक चादर भी रख लेते थे। नारियाँ ऊपरी अंग में आधे-आधे बाँहों की चोली और घाघरा पहनती थीं। कुमारियाँ कम घेर की और विवाहिता नारियाँ अधिक-से-अधिक घेर की पहनती थीं। नारियाँ चादर का उपयोग नहीं करती थीं। सिर नंगा ही रखती थीं। चोटियाँ गूँथकर उसे फूल और आभूषणों से सजाती थीं।"

महारानी को कुछ और याद आई। उन्होंने पूछा, "सुन्दरम्, उन्होंने कितने तम्बू गाड़ रक्खे हैं?"

"चलकर देख लीजिए न।"

"नहीं, अभी नहीं। हिंकू भी अगर मेरे पास आने का प्रस्ताव करे तो उसे भी मना कर देना। कह देना हमारी रानी परदे में रहती हैं।"

सुन्दरम् बोला, "यह बर्बर युग की-सी बात है।"

"तुम भूल रहे हो सुन्दरम्, जापानियों का राजा पुरुष होकर परदे में रहता है। मैं नारी होकर परदे में रहती हूँ तो क्या अनुचित है?"

"कोई पन्द्रह तम्बू होंगे। किसी में दफ्तर, कोई बारूद का गोदाम, बेतार का तम्बू, किसी में कैन्टीन, रसोईघर, सोने के कमरे।"

"ओह! पूरा शहर ही आकर बसा दिया, जाओ सुन्दरम्, वे सफेद-सफेद बड़े अजीब दिखाई दे रहे होंगे। दूर ही से किसी की नज़र को खींच लेंगे फिर दूरबीनों के द्वारा तो सारा भेद खुल जायेगा। उन्हें उन तम्बुओं को फौरन ही हटा देने को कहो। उनकी जगह वे यहाँ के नमूने पर की झोंपड़ियाँ बना लें। यही तो यहाँ की भौगोलिकता के हिसाब से ठीक रहेगा। उनसे जाकर कहो, आजकल मेघों ने कुछ दिन से कृपा कर रक्खी है, अगर कहीं अचानक बरस गये तो उनके तम्बुओं में पानी-ही-पानी भर जायगा।"

सुन्दरम् जाने के लिए उसी समय उठ गया। वह बोला, "द्वीप के अनुरूप झोंपड़ी बनाने का उन्हें अभ्यास न होगा। अगर हम यहाँ के कुछ मज़दूर उन्हें दे दें तो उनकी सहायता हो जायगी।"

रानी ने कहा, "तुम जाओ देर न करो। मैं स्वयं इसका प्रबन्ध कर अभी मज़दूरों को भेजती हूँ।"

सुन्दरम् को हिंकू के पास पहुँचते देर नहीं लगी। पहरेवाला आज उसके मार्ग पर रुक गया। उसने अपनी बन्दूक का स्पर्श कर सुन्दरम् को सलामी दी। सुन्दरम् ने पूछा, "कर्नल हिंकू?"

पहरेवाले ने एक तम्बू की तरफ़ उँगली उठा दी। सुन्दरम् बेधड़क उसके भीतर घुस गया। हिंकू हेडफोन सिर और कानों में लगाकर

बेतार से कुछ सुन रहा था। उसने सुन्दरम् को एक कुरसी पर बैठ जाने का संकेत दिया।

कुछ देर हो गई तो हिक्रू ने सुन्दरम् को एक सिगरेट का पैकिट और सिगार-लाइटर दे दिया और स्वयं बेतार का सन्देश सुनता हुआ एक काग़ज़ पर कुछ लिखता चला।

सुन्दरम् उस तम्बू के भीतर का दृश्य देखकर अपने मन में सोचने लगा—'इनका साहस और शौर्य ही प्रशंसा के योग्य नहीं हैं, इनके मस्तिष्क की शक्ति भी अद्भुत है। विज्ञान की सभी शाखाओं में इन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा चमकाई है।"

कुछ देर बाद हिक्रू सुन्दरम की ओर प्रमुख हुआ, "बड़ी जल्दी लौट आये मित्र ! तुम्हें खुशखबरी सुनाता हूँ। हमारी सेनाएँ फिलिपाईस में बढ़ रही हैं। इधर जल, थल और आकाश-मार्ग में टैंक, जहाज़, हवाई जहाज़, बाइसिकलों ही में नहीं—एक पेड़ से दूसरे पेड़ में कूदते हुए भी हमने मलाया प्रायद्वीप पर अधिकार कर लिया। हमने अंग्रेज़ों की सेना को वहाँ से भगा दिया है। प्रायद्वीप का सबसे बड़ा नगर क्वालालंपुर हमारे कब्ज़े में आ गया है।"

"यह बड़ी प्रसन्नता की बात है !"—सुन्दरम् ने कहा।

"क्या कहती हैं तुम्हारी रानी ?"

सुन्दरम् ने रानी का सारा अभिप्राय बड़े सुन्दर शब्दों में लपेटकर हिक्रू के सामने रख दिया।

हिक्रू ने सिगरेट जलाई और उसका धुवाँ सिगरेट की नोंक पर छोड़ता हुआ हँसने लगा।

सुन्दरम् ने व्याख्या की, "कुछ अन्यथा न समझना मित्र, केवल स्त्री-स्वभाव'''। उसका मन भरने के लिए एक काग़ज़ काला कर देने में तुम्हें कोई आपत्ति न होनी चाहिए।"

"एक दर्जन काग़ज़ काले करने में भी तो नहीं मित्र।"—हिक्रू ने कहा, "यह तुम्हारी रानी अभी श्वेत-प्रपंच की दल-दल में नहीं फँसी है,

इसी से बहुत सीखी है और काग़ज़ काला कराकर रख लेने को ही सबसे बड़ी राजनीति समझे बैठी है । मनुष्य के हृदय पर जहाँ क़ाबू नहीं पाया गया, वहाँ बड़े-बड़े सन्धि-पत्र फाड़कर रौंद दिये गये हैं ।"

सुन्दरम् ने उदास स्वर में कहा, "हाँ ।"

"हमारे कपड़े तो तुम्हारी रानी की आज्ञा से पहले ही भूमध्य-रेखा के सूर्य की आज्ञा मानने को हमें उतार देने पड़े । सभी ने अपनी-अपनी कमीजें उतार दी हैं, मैं भी उतारकर तुम्हारी रानी को सलाम दे आऊँगा । लेकिन तुम तो पूरे कपड़ों में हो ।"

"द्वीप के शासकों के लिए ऐसी कोई क़ैद नहीं है । तुम्हें भी नहीं, तुम भी ऑफ़ीसर हो लेकिन तुम्हारे अनुचरों को पैंट, हाफ़ पैंट के स्थान पर कमर में पत्ते पहनने पड़ेंगे ।"

"निश्चय बन्धु, यदि हमारे साथ महिलाओं का दल होता तो भी शायद उपयोगिता के आगे हमें रूढ़ि का बलिदान कर देना पड़ता ।"

"शाबाश हिंकू !"—ताली बजाकर सुन्दरम् बोला, "शायद जापान की इतने शीघ्र तरक्की कर लेने का रहस्य यही है, उसने उपयोग को देखा, लकीर की फ़क़ीरी को साइन्स की तोप से उड़ा दिया !"

जाति की स्तुति का कोई दर्प अंकित नहीं हुआ हिंकू के मुख-मण्डल में । वरन् और भी विनीत होकर वह बोला, "समझ लो इस बेतार के यन्त्र में ही हमने तुम्हारी रानी की आज्ञा को सुन लिया । कह देना उनसे, वे सब नंगे हो गये हैं । केवल पेटियों में कुछ पत्ते खोंस लेने बाकी हैं ।"

शंकर ने कृतज्ञता प्रकाश की, "काग़ज़ में हस्ताक्षर कर भी अभी दे दो ।

"ज़रूर, जो कुछ भी लिखाओगे ।"—हिंकू अपने साथियों के पास गया । सम्भव है उनसे कुछ कह-सुनकर तुरन्त ही वापस चला आया और बोला, "श्वेतांगों ने इस द्वीप के भीतर घुसकर तुम्हारी रानी को सभ्यता की शिक्षा दी है क्या कभी ? उनका बड़ा भय समाया हुआ है

रानी की चेतना में ?"

"राजभवन में कुछ यूरोपीय प्रभाव परिलक्षित तो होते हैं। मैं नहीं जानता वे सीधे जल-मार्ग-द्वारा इस द्वीप में प्रविष्ट हुए हैं या भारतवर्ष की मार्फ़त।"

हिंकू कुछ अन्यमनस्क होकर सुन्दरम् की बात पर लौटकर बोला, "हाँ सुन्दरम्, क्या कहा तुमने ?"

"अंग्रेज़ कोई हो, कैसा ही हो। लेकिन अंग्रेज़ी का एक गुण तो अवश्य हमें मानना ही पड़ेगा।"

"क्या गुण है वह ?"

"यह अंग्रेज़ी भाषा की ही सार्वभौमिकता है, उसी की बदौलत हम आज एक-दूसरे के सन्निकट हुए हैं, हमारे हृदयों का विनिमय हुआ है। नहीं तो कहाँ जापान और उसकी भाषा थी और कहाँ भारत की भाषा ? इसी भाषा की बदौलत आज मेरी और हिंकू की मैत्री हुई है। यह उसी के कारण होगा अगर कभी एशिया का संगठन हुआ तो। अंग्रेज़ों की नीति ने हमें विभक्त किया हो, पर उनकी भाषा ने हमारे बीच की खाइयाँ पाटकर हमें पास-ही-पास रख दिया है।"

वे बात कर ही रहे थे कि बाहर कुछ शोर-गुल सुनाई दिया। पहरे पर के सिपाही ने बन्दूक की नोंक पर कुछ द्वीप की प्रजा को आगे बढ़ने से रोक दिया और वे अपनी भाषा में न-जाने क्या बकने लगे।

हिंकू और सुन्दरम् तम्बू से बाहर निकल आये। उन्होंने देखा, द्वीप के निवासी कई मज़दूर डरते-सिमटते उधर आने की चेष्टा कर रहे थे। कुछ के कन्धों पर कुल्हाड़ियाँ थीं, कुछ आरी-हथौड़े आदि हथियार लिये थे। कुछ लकड़ियों के लट्ठे और रस्सियाँ लेकर आ रहे थे।

सुन्दरम् उनके आने का मतलब समझ गया। उसने हिंकू से कहा, "ये तुम्हारे लिए नये निवास बनाने आये हैं।"

हिंकू ने कहा, "इन तम्बुओं के ऊपर हम घास-फूस डालकर हवाई जहाज़ वालों की नज़रों में धूल डाल देंगे।"

सुन्दरम् ने कहा, 'लेकिन बारिश हो जाने पर तम्बुओं में पानी भर जायगा। यहाँ बारिश का कोई खास मौसम नहीं है। आकाश के बादलों की इच्छा पर ही निर्भर है।"

"हमारा इंजीनियरिंग विभाग जब नक्शे बनायेगा उसी हिसाब से हमारी झोंपड़ियाँ बनेंगी।"

"अच्छी बात है, ये मजदूर आपकी सेवा में रहेंगे।"

"हमें इनकी उचित मजदूरी देने से कोई इनकार नहीं।"

"हमारे द्वीप में कोई सिक्का नहीं चलता। इन्हें कोई सिक्का देकर तुम्हें इनके बीच में असंतोष के बीज नहीं बोने हैं।"

हिंकू बोला, "सचमुच में सारे असंतोष की जड़ें इसी सिक्के पर पनपती हैं। फिर तुम लोग इनकी मजदूरी कैसे चुकाते हो?"

सुन्दरम् ने कहा, "ये राज्य को कर के रूप में अपना श्रम देते हैं।"

"अच्छी बात है, मैं शीघ्र-से-शीघ्र झोंपड़ियाँ बनवाने का प्रबन्ध करता हूँ। उनकी भीतरी बनावट हमारे सुभीते के अनुसार और ऊपरी छत हम यहाँ की रीति-रिवाज की तरह बना लेंगे।"

सुन्दरम् ने कहा, "लेकिन ये तुम्हारी भाषा न समझेंगे।"

"तुम समझा दो इन्हें आरम्भिक बातें। बाकी हमें क्या करना है, हम इशारों से काम चला लेंगे।"

सुन्दरम् हँसकर बोला, "मैं भी इनकी बोली से अनभिज्ञ हूँ। किसी खलासी को भेज दिया जायगा, जो टूटी-फूटी अंग्रेजी जानता होगा।"—सुन्दरम् ने जाने की चेष्टाएँ कीं।

"हाँ, मैं समझ रहा हूँ तुम्हारी बात। चलो दफ्तर में तुम्हारा कागज बन गया होगा। मैं तुम्हारे सामने दस्तखत कर दूँगा।"

दोनों ऑफिस में गये। क्लर्क ने कागज तैयार करके रख दिया था। सुन्दरम् ने उसे पढ़कर कहा, "ठीक है।"

हिंकू ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। उसके सेकिण्ड-इन-कमाण्ड ने भी। सुन्दरम् हिंकू का अँगूठा काटकर रानी के पास ले चला।

२०

प्रेम की भेंट

उस जंगली राजकुमारी का नाम रक्खा गया था रुकू। रंपो उसे स्वामी जी की गुफा में पहुँचा गई एक दिन। पहाड़ पर वह उसे बड़ी भारी जान पड़ी। उस रूढ़ि-ग्रस्त जाति के भीतर उसने बड़ी गड़बड़ मचा दी।

जंगलियों के सरदार का बेटा सुलक उससे प्रेम करना चाहता था। उसने कई बार उसकी गुफा के आगे गीत गाने की चेष्टा की। रंपो बराबर उसे समझा-बुझाकर घर भेज देती थी।

उस दिन रंपो बीमार थी, ज्वर से अपने होश में नहीं थी। रात को सुलक चुपचाप रंपो की गुफा में घुस गया और उसने रुकू के कान में कहा, "रुकू!"

"कौन है?"

"धीरे-धीरे बोलो, रुकू! मैं हूँ सरदार का बेटा सुलक। चलो, बाहर कैसी चाँदनी चमक रही है। इस अँधेरे में बिता देने के लिए नहीं है यह नवीन आयु।"—सुलक ने धीरे-धीरे कहा।

"ज़ोर से क्या कह रहा है?"

"बड़ा जरूरी काम है, चलो बाहर चलो।"—सुलक उसका हाथ पकड़कर बाहर ले चला।

नींद के झोंके में न-जाने क्या समझकर रुकू सुलक के साथ बाहर चली आई। बाहर हवा के झोंके और चन्द्रमा की रोशनी में उसकी चेतना जागी। उसने अपना हाथ छुड़ाकर पूछा, "कौन है तू?"

"मैं हूँ सुलक—सरदार का बेटा। तुम क्या नहीं पहचानती हो मुझे? मैं तुम से प्रेम करता हूँ।"

"हाँ"—आँख मलकर रुकू ने कहा, "हाँ, मैं तुम्हें तो ज़रूर पहचानती हूँ लेकिन तुम्हारे प्रेम को नहीं जानती। कैसा होता है वह ?"

सुलक ने उसका हाथ पकड़ लिया और बड़ी आकुलता से उसने उसे अपनी छाती पर रखकर कहा, "यही है वह प्रेम।"

"कहाँ ? यह तो मेरा हाथ है।"

"मेरे दिल में जो है।"

"तुम्हारे दिल की क्या जानूँ ?"

"चलो पितरों के मन्दिर की उस चोटी पर चढ़ें। उस सूने एकांत में साथ-साथ गीत गावें।"—सुलक ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

"खबरदार! जो मेरे अंग पर हाथ रखा तो···"—रुकू ने उसका हाथ झटककर अपने कंधे पर से हटा दिया।

"क्यों, क्या तुम मुझ से प्रेम नहीं करती हो ?"

"मैं कहती हूँ, मैं जब प्रेम को जानती ही नहीं तो फिर प्रेम क्या खाक करूँ! न जाने तुमने प्रेम-प्रेम की यह क्या झड़ी लगा रक्खी है ? हटो, मुझे जाने दो, मुझे नींद लगी है!"—रुकू जाने लगी।

सुलक ने उसकी राह रोक ली, "देखो, यही है प्रेम।"

"कहाँ ?"

सुलक ने उसके दूध पर हाथ रखकर कहा, "यही है प्रेम, इस सुन्दर चाँदनी में तुम्हारे यह गोरे-गोरे दूध कैसे चमक रहे हैं। रुकू, मैं तुम से प्रेम करता हूँ।"—उसने एक ठंडी साँस ली।

धीरे से रुकू ने उसका हाथ हटाकर कहा, "अच्छा मैं अब समझ गई, तुम प्रेम किससे कहते हो।"

प्रसन्न होकर सुलक बोला, "चलो, फिर हाथ में हाथ देकर हम सारी वनस्थली को अपने गीतों से प्रतिध्वनित कर दें।"—उसने फिर रुकू के चन्द्रिका-उद्भासित गोरे दूध पर हाथ रख दिया।

"यह क्या कर रहे हो तुम ? जान पड़ता है, तुमने अपनी माता का दूध नहीं पिया बचपन में। इसी से तुम्हें मेरा दूध पीने की लालसा

हो गई है।"—उसने फिर उसका हाथ हटा दिया।

सुलक कहने लगा, "तुम बड़ी कठोर जान पड़ती हो रुक्रू। तुम पिछले एक वर्ष से मेरी आँखों में नाच रही हो। आज बड़ी मुश्किल से तुम्हें पा सका हूँ।"—उसने उसके दोनों हाथ फिर पकड़ लिये।

"तुम सहज ही न मानोगे। मैं चिल्लाकर अपनी माता को उठाती हूँ।"

"वह बीमार पड़ी है, तभी तो आज मेरा दाव पड़ा है।"

"मैं अपने भाई को उठाती हूँ।"

"वह मेरा दोस्त है।"

"मैं अपने चाचा को जगाती हूँ।"

"वे मेरे पिता से डरते हैं।"

"मैं और किसी को उठाती हूँ।"

"मैं तुम्हें कन्धे पर उठाकर दूर चल दूँगा। तुम में मेरा अवरोध करने की शक्ति नहीं है।"—सुलक ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और उसे लेकर पर्वत पर चढ़ गया।

रुक्रू ने देखा, वह उससे नहीं जीत सकती तो उसने उससे सन्धि कर लेने में ही लाभ देखा, "ठहरो सुलक!"

"अब समझी हो तुम प्रेम को! इतनी बड़ी आयु हो गई तुम्हारी, और प्रेम ही नहीं समझ में आया तुम्हारे।"

"अब आ गया। छोड़ो मुझे।"

"पहले वादा करो, तुम मुझ से प्रेम करोगी।"

"वादा करती हूँ।"

सुलक ने उसे अपनी गोद पर से भूमि में उतार दिया और बलपूर्वक उसके गले में अपनी बाँह डाल दी।

रुक्रू बोली, "देखो, इसे प्रेम नहीं कहते, यह तो अत्याचार है।"—उसने उसका हाथ हटा दिया।

सुलक ने फिर उसकी कमर पकड़कर अपना मुँह उसके मुँह की

तरफ बढाते हुए कहा "देखो मैं सरदार का लड़का हूँ मेरा विरोध करने से तुम्हारे लिए पग-पग पर मुश्किलें पैदा कर दी जावेंगी।"

"मैं स्वामी जी की लड़की हूँ, तुम्हारे पिता-जैसे सरदार उनकी गुफा के पत्थरों पर अपनी नाक रगड़ते हैं।"—रुकू बोली।

सुलक ने अपने दोनों हाथों से उसके विरोध करने वाले दोनों हाथों को पकड़ लिया और उसके मुँह की तरफ अपना मुँह बढ़ा ही दिया।

रुकू ने विद्युत के वेग से अपना मुँह ऊपर कर उसकी नाक अपने मुँह में देकर अपने जबड़ों की बत्तीसी मिला दी। नाक कट जाने से सुलक बड़ी जोर से चिल्ला उठा। उसके दोनों हाथ ढीले पड़ गये और वह उसकी नाक का हिस्सा अपने मुँह से अपने हाथ में लेकर अपनी गुफा को दौड़ गई।

कुछ देर तक सुलक कटी हुई नाक को पकड़कर उस निर्जन में चीखता-चिल्लाता रहा। जब कुछ उसकी पीड़ा शान्त हुई तो सोचने लगा, "अब क्या करूँ? यह कटी हुई नाक लेकर कहाँ जाऊँ? साथी और सम्बन्धी क्या कहेंगे? इससे बड़ी लज्जा की और क्या बात हो सकती है? एक नारी से मैंने अपनी नाक कटा ली! सच कहूँ तो कैसे कहूँ?"

अभी तक उसकी नाक से खून की धारा बन्द नहीं हुई थी। कुछ जंगली पत्तियाँ पीसकर उसने नाक के घाव पर थोप दीं और मन में इस अपमान की आग को छिपाकर रख लेना ही श्रेयस्कर समझा। वह वन में एक पेड़ के नीचे सो गया।

रुकू मानो बड़ी भारी विजय का दर्प लेकर शोर मचाती हुई अपनी गुफा में गई। उसका चाचा बोला, "कौन है?"

"मैं हूँ चाचा, रुकू।"

"इस रात में तुम कहाँ गई थीं?"

"सुलक मेरा हाथ पकड़कर मुझे ले गया था प्रेम करने। मैं

प्रेम कर आई। लेकिन वह रोने लगा और जरूर अभी तक रो ही रहा होगा।"—रुकू बोली।

उसका चाचा चुप हो गया। लेकिन रंपो की नींद टूट गई थी। उसका ज्वर भी कुछ हल्का पड़ गया था। उसने उसकी आधी बात सुनकर पूछा, "कौन रो रहा है?"

"सुलक—सरदार का बेटा। उसको बड़ा घमण्ड हो गया माँ। वह मुझसे कहता था—मैं सरदार का बेटा हूँ, तू मेरे साथ प्रेम कर।"

"क्या हुआ फिर?"

"हुआ क्या, मैं उसके साथ प्रेम कर आई। जान पड़ता है उसने बचपन में अपनी माँ का दूध नहीं पिया। लेकिन मैंने तेरा दूध नहीं लजाया।"

रंपो समझ गई रुकू आज जरूर कुछ गड़बड़ कर आई है। वह साल-भर से स्वामी जी की खुशामद कर रही थी कि अब वे अपनी धरोहर वापस ले लें, लेकिन उनके कान में कोई जूँ तक न रेंगती थी। वह घबराकर उठ बैठी। उसने पूछा, "तू सुलक के साथ क्यों गई? मैंने तुझसे कहा नहीं था तू युवकों के साथ न जाया कर।"

"मैं अपने मन से नहीं गई। वह खुद आकर मेरा हाथ खींच ले गया। लेकिन मैं उसको बदला दे आई।"

"कैसा बदला?"

"उसने मेरी नाक काटने को अपना मुँह बढ़ाया था। मैं उसका मतलब समझ गई थी। मैंने जल्दी कर उसी की नाक काट ली। यह देखो उसी का टुकड़ा है।"—रुकू ने रंपो का हाथ टटोलकर उसकी हथेली में सुलक की नाक का टुकड़ा रख दिया।

रंपो चिल्ला उठी, "यह सरदार के बेटे की नाक का टुकड़ा है? अब क्या होगा? सरदार हमें जीता ही खा जायगा। तुमने यह क्या कर दिया!"

"माँ, क्या यह अच्छा होता, तुम इस तरह अपनी हथेली में मेरी

नाक का टुकड़ा लिये होतीं। मैंने बदला लिया है।"

रंपो का पति चुपचाप पड़ा-पड़ा सोचने लगा, "ज़रूर इसने अपने पिता के खून का बदला लिया है, लेकिन साफ़-साफ़ मालूम नहीं है इसे।"

रंपो बोली, "तुम नहीं सुन रहे हो जी।"

"कहो भी न, सुन रहा हूँ।"—उसका पति बोला।

"क्या होगा अब?"

"मैं क्या बताऊँ?"

रंपो कहने लगी, "रुक्कू, ले इस नाक के टुकड़े को कहीं दूर फेंक आ और अपने बदन पर के खून के दागों को धो ला, जल्दी कर। मैं कह दूँगी, यह तो यहाँ पड़ी सो रही है।"

"नाक के टुकड़े को फेंक क्यों आऊँ? मैं सबको इसे दिखा दूँगी। अगर वह कहेगा कि अपमान से बचने को किसी जानवर ने मेरी नाक काटी है तो मैं इस टुकड़े से उसकी झूठ साबित करूँगी।"—रुक्कू ने अपनी माता के हाथ से वह टुकड़ा ले लिया।

"जा गुफा के भीतर छिप जा तू, तेरे हाथ जोड़ती हूँ।"—रंपो ने साग्रह कहा।

"छिपने को क्या मैंने कोई चोरी की है?"

"सुलक अभी तुम्हें ढूँढ़ता हुआ आवेगा।"

"आने दो, देखा जायगा तुम मत बोलना कुछ। मैं खुद भुगत लूँगी उसे।"

"हे भगवान्, किसी तरह कल को सुबह हो तो मैं तुझे रख आऊँ स्वामी जी के पास। अब तो तुझे किसी तरह मैं यहाँ नहीं पहुँचा सकती।"

उसका पति गुफा के भीतर से आकाश की ओर देखकर बोला, "जाना ही है तो अभी अँधेरे ही में चल दो। चन्द्रमा डूब गया है और मार्ग में तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा। सुबह भी नजदीक ही है। वह देखो, प्रभात का तारा उदय हो चुका है।"

रंपो उठी। उठकर बैठ गई, "मेरे सिर में चक्कर आ रहा है।"

"तुम्हें झूठी ही चिन्ता हो गई है। देखो तो सही सुबह होने पर क्या होता है ?"—रुकू ने कहा।

रंपो विवश थी। उसका पति रुकू को लेकर जाने को तैयार नहीं हुआ। उसका लड़का कहीं गया हुआ था और लड़की सो रही थी। अन्त में उसने स्वयं ही उसे लेकर जाना निश्चित किया।

"रुकू, चल बेटी।"

"नहीं माँ, मैं तो नहीं जाती इस अँधेरे में।"

उसका पति बोला, "क्या ज़रूरत है, जब ताकत ही नहीं है तो सो रहो। देखा जायगा जो होगा।"—वह फिर सो गया।

लेकिन रंपो की आँखों में नींद कहाँ ? वह प्रत्येक क्षण में अपनी गुफा के द्वार पर क्रुद्ध सरदार के आने के सपने देखने लगी। उसने देखा, कुछ देर में रुकू भी सो गई थी। उसने उसकी ओर हाथ बढ़ाया। उसकी मुट्ठी टटोली। वह ढीली पड़ गई थी। उसने सुलक की नाक का टुकड़ा उसके हाथ से ले लिया। वह बाहर जाकर उस मांस के भाग को एक पेड़ के नीचे धरती में दबा आई।

धीरे-धीरे प्रभात हुआ। पर सुलक या उसके पिता का कोई भी चिह्न उनको गुफा में नहीं नज़र आया। धूप निकल आने पर उसका बेटा और पति दोनों आखेट के लिए चले गये। उसकी लड़की उठ गई थी। उसने पूछा, "माँ, तुम्हारा जी कैसा है आज ?"

"ठीक है बेटी।"

"स्वामी जी के यहाँ चलकर कुछ दवा माँग लाओ।"

"हाँ, वहाँ जाने का विचार तो कर रहा हूँ। रुकू को उन्हें सौंप आती हूँ आज।"

"नहीं माँ।"

"उसे यहाँ अच्छा नहीं लगता।"

"मैं कैसे रहूँगी उसके बिना ?"

"तू भी चली जायगी अपने पति के यहाँ।"

रुकू उठकर चिल्लाने लगी, "नाक का टुकड़ा कहाँ गया ?"

रंपो ने उसे चुप रहने का इशारा किया और उसकी लड़की उसकी नाक पर हाथ रखकर बोली, "तेरी नाक यह अपनी जगह पर ही तो है। जान पड़ता है, तुझे कोई भयानक सपना दिखाई पड़ा है !"

रुकू ने रंपो की तरफ़ दृष्टि की और उसे समझ नहीं पड़ा, वह क्या उत्तर दे। रुकू को फिर रंपो ने इशारों में ताड़ना दे दी और वह उसी समय उसे लेकर स्वामी जी के पास जाने के लिए तैयार हो गई। उसकी लड़की ने भी साथ चलने की हठ की। तीनों स्वामी जी की भेंट के लिए कुछ फल-फूल लेकर चले।

मार्ग में रंपो का पति मिला। वह कुछ हँसकर कहने लगा, "मुझे सुलक मिला जंगल में, उसकी नाक रात में कोई पशु चबाकर चल दिया। वह डर के मारे अभी तक अपने पिता के पास भी नहीं गया है।"

रुकू अपनी बहन का हाथ पकड़कर हँसने लगी।

रंपो के मन में कुछ धीरज हुआ। अब तक वह लुकती-छिपती हुई सुलक के भय से जा रही थी, अब कुछ उसके मन में साहस बढ़ा। उसने पति से कहा, "मैं इसे पहुँचा आती हूँ अब स्वामी जी के पास।"

"इसका क्या काम है वहाँ ?"—कहकर रंपो का पति अपनी लड़की को अपने साथ लेकर चला गया। वह बहुत शिकार मार लाया था। कुछ मुर्गियों की टाँगें पकड़कर उसने अपने कन्धे पर लटका ली।

कुल्लूटक की गुफ़ा में पहुँचकर दोनों ने स्वामी जी को प्रणाम किया। स्वामी जी बोले, "तू क्यों ले आई अभी इसे ?"

"महाराज, अब यह मेरे काबू से बिल्कुल बाहर हो गई है। यह कहना नहीं मानती मेरा।"

"यहाँ भी मैंने बहुत से कबूतर उड़ते देखे थे आसमान में। मैं नहीं कह सकता वे इस द्वीप में उतरे हैं या चले गये हैं।"

"महाराज, इसने कल रात सुलक के लड़के की नाक काट ली।"

"बदला ! रंपो, बदला !"—कुल्लूटक बोला।

"कैसा बदला ?"—रंपो ने पूछा।

"खून का बदला और कैसा ?"—कुल्लूटक फिर चुप हो गया।

रुकू ने पूछा, "स्वामी जी, कैसा बदला ?"

"तुमने क्यों उसकी नाक काट ली ?"

"वह मेरी नाक काटने को बढ़ रहा था, मैंने उसकी ही साफ करदी। स्वामी जी, क्या इसी बदले को तुम कह रहे हो ?"

"हाँ, इसी को कह रहा हूँ। बड़ी बुरी बात है ! सचमुच में तुमने अब अपना वहाँ रहना असम्भव कर दिया। रंपो, जाओ तुम। अब देखा जायगा, यहीं रहेगी यह। और कब तक तुम इसे रखतीं ?"

रंपो बोली, "स्वामी जी, मुझे कई दिन से ज्वर आता है।"

कुल्लूटक आस-पास की झाड़ियों में से दो-तीन तरह की जड़ें उखाड़ लाया और रंपो को देकर बोला, "इन्हें पीसकर पानी के साथ पी लेना।"

रंपो रुकू को छाती से लगाकर बोली, "बेटी, स्वामी जी का कहना मानना। मैं बीच-बीच में तुझ से मिलने आती रहूँगी।"

२१

रेडियम

कुछ ही महीनों के भीतर कर्णद्वीप के मज़दूरों की सहायता से जापानियों ने अपने लिए सुन्दर निवास बना लिये। बाहर से उनमें कोई विशेष रूप-रेखा नहीं दी गई थी पर भीतर उनकी दर्शन की रुचिरता और उपयोगिता सब प्रकार से बढ़ाई गई थी।

जापानियों के कैम्प और राजधानी के बीच में भी रानी ने रातों-रात अपने पहरे के लिए भी कई झोंपड़ियाँ तैयार करवा लीं, इसलिए कि न जाने किस समय कैसी स्थिति का सामना करना पड़ जाय। रानी को कोई भरोसा नहीं था जापानियों का। उसने अपनी सेना भी बढ़ा ली और एक पुराना कर्मचारी उन्हें नियमित रूप से सुबह-शाम परेड कराने लगा।

सुन्दरम् रोज़ ही हिंकू के कैम्प में जाता था। तरह-तरह के बहाने बनाकर रानी उसे उनका भेद लेने के लिए भेजती थी। कच्चा मांस, दूध, मेवे और तरकारी-फलों का निश्चित परिमाण का राशन रोज़ प्रभात-समय जापानी कैम्प में रानी की तरफ़ से जाने लगा।

हिंकू ने सुन्दरम् से कहा, "हमें यहाँ सिर्फ़ पैर रखने की ही जगह चाहिए। हमारे भोजन की जो यह आप अतिरिक्त चिन्ता कर रहे हैं, इसे हम सधन्यवाद लौटाते हैं।"

"नहीं, ऐसा करने से हमारी रानी का अपमान होगा।"—सुन्दरम् ने कहा।

"हमारे भोजन की तुम क्यों कोई फ़िक्र करो?"

"क्यों न करें? तुम्हारे यहाँ कौन-सी खेती है?"—हँसते हुए सुन्दरम् ने पूछा।

"अपने हेड क्वार्टर से मँगा लेने के साधन तो हैं न ? अभी हमने उनको अपनी आवश्यकताओं का सन्देश भेजा है। एक-दो दिन में हमारा जहाज़ आ पहुँचेगा।"—हिकू बोला।

मुख पर बड़ी कठिनाई अंकित कर सुन्दरम् ने कहा, "यही तो, इसी पर हमारी रानी को आपत्ति है। द्वीप के ऊपर हवाई जहाज़ों के मँडराने से व्यर्थ ही हमारे बारे में अन्य राष्ट्रों के संशय बढ़ जावेंगे। छोटी-सी बात के लिए रानी का अस्तित्व खतरे में पड़ जायगा। इसके सिवा हम लोग अतिथि को भोजन देना अपना धर्म समझते हैं।"

"अपनी रानी को समझाओ, हम उनकी सहायता के लिए यहाँ आये हैं। दूसरे किस राष्ट्र के संशय का उन्हें भय है ? उन्हें अभी हाल की खबरें नहीं ज्ञात हैं ?"

सुन्दरम बोला, "क्या खबरें हैं ?"

"जिस ब्रिटिश जाति का उन्हें खौफ़ है, उसके साम्राज्य की सेनाओं को हमने मलाया प्रायद्वीप से निकाल बाहर कर दिया है। अब उन्होंने सिंगापुर में जाकर शरण ली है। सात दिन के भीतर हम सिंगापुर पर भी कब्जा कर लेंगे।"

सुन्दरम् ने आश्चर्य के साथ इस समाचार को सुना।

"और भी बर्मा की खबरें सुनो, वहाँ भी हमें बड़ी विजय मिली है—हमने मौलमीन से उन्हें खदेड़ दिया है। रानी जी को इन खबरों से बड़ा साहस मिलेगा। उनसे कहो ब्रिटेन की प्रभुता का सूर्य अब अस्त होने जा रहा है।"

"लेकिन भारत में तो अभी उनकी प्रभुता है ही। अभी एक दम तीव्रता ठीक नहीं है। तुम महीने में एकाध जहाज़ मँगवा लो, क्या अभी इतने से काम न चल जायगा ? बाकी बाद को देखा जायगा।"—सुन्दरम् ने कहा।

"क्या देखा जायगा ? तुम्हारे राशन में सिगरेट और शराब का भी कोई पता है ? दिन और रात की विषमताओं में, सर्दी-गर्मी की

तीक्ष्णताओं में, गिरि-आकाश और सागर के पंजों में फँसा हुआ सैनिक का जीवन है। सिर पर मृत्यु को धारण कर उसको एक-एक क़दम उठाना पड़ता है। यह हँसी-खेल है क्या? उसकी चेतना को ढक देने के लिए, उसे भुलावा देने के लिए, उसे सांसारिक माया-मोह के बन्धन तोड़ने के लिए इनकी जरूरत है, कहो है या नहीं?"—हिंकू ने सुन्दरम् का कंधा पकड़कर कहा।

सुन्दरम् ने उत्तर दिया, "है।"

"इसके सिवा, अपनी रानी से कहो, हम यहाँ सिर्फ़ द्वीप की आबादी बढ़ाने नहीं आये हैं। एक इतिहास की रचना करने आये हैं। भारत को जो प्रचार-साहित्य भेजना है, वह कहाँ से आवेगा?"

"हाँ, यह तो ज़रूरी चीज है।"

"और फिर प्रचार-साहित्य के बाद अस्त्र-शस्त्र, बम और विस्फोट भी तो?"

चौकन्ना होकर सुन्दरम् ने यह सुना। वह मन में सोचने लगा—'हे! बम और विस्फोट! पहले तो इन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा। मैंने तो रानी को विश्वास दिलाया है, ये जापानी अहिंसात्मक अभियान लेकर ही यहाँ आये हैं। केवल शत्रु-पक्ष की चौकसी के समाचार हेड क्वार्टर को भेजना ही इनका मुख्य लक्ष्य है। या सिर्फ़ काग़ज़ी प्रचार! मरने-मारने का कोई खतरा नहीं। दो-चार बन्दूकें और पिस्तौल जो मैंने इनके पास देखे थे, उन्हें हिंकू ने आत्म-रक्षार्थ बताया था।'

हिंकू बोला, "क्यों सुन्दरम्, क्या सोच रहे हो?"

"इन लाल लेबुल लगे बक्सों में क्या भरा है?"

"इनमें माइनें हैं।"

"किस लिए?"

"समुद्र में बिछाने के लिए, शत्रु की प्रगति को रोक देने के लिए।"

"तुमने पहले कभी नहीं बताया!"

"मित्र, तुमने पहले पूछा ही कब था ?"

"रानी क्या कहेंगी ?"

"कैसी रानी हैं तुम्हारी ?"

"नारी स्वभाव से ही डरपोक होती है।"

"उन्हें समझाओ, सैनीय अभियान शाकाहारी नहीं होते। समर-संचालक पेटेन्ट दवाओं के प्रचारक नहीं हैं कि सिर्फ हैंडबिल बाँटकर चले जायँ। माइनें बिछाकर हम चारों ओर से उनको सुरक्षित कर देंगे। एशिया केवल एशियावासियों के लिए ! चुपचाप कौन विदेशी इस प्रस्ताव को मान लेगा ? युद्ध तो करना ही पड़ेगा। लड़नेवाले हम हैं। वे चुपचाप अपने राजभवन में पड़ी रहें।"

"बाहर इस प्रकार आग लगी हो तो भीतर कौन चुपचाप पड़ा रह सकता है ?

"हाँ," हिंकू को एक बात याद आई, "हम सागर के तट पर इस मैदान के इन नारियल के पेड़ों को साफ़ करना चाहते हैं, रानी जी से आज्ञा माँग दो।"

"क्यों ?"

"हवाई जहाजों के उतरने के लिए। मित्र, यह हवाई जहाज़ का युग है। मनुष्य को पवन में जो नया मार्ग मिला है, वह उसकी उन्नति के लिए बड़ा जरूरी है। मैं तो कहता हूँ एक जहाज़ यदि तुम्हारी रानी के अधिकार में भी रहे तो क्या उससे द्वीप के भीतर और बाहर उनके मानसंभ्रम की वृद्धि न होगी ?"—हिंकू ने स्वयं ही उसका उत्तर दिया, "अवश्य होगी।"

सुन्दरम् बोला, "अवश्य ! द्वीप के भीतरी पहाड़ों पर एक जंगली आबादी है। वे लोग बड़े खूंखार हैं। राजा की हत्या उन्हीं लोगों ने की है। अगर हवाई जहाज़ होगा तो वे उसे देखकर ही दबे रहेंगे।"

"एशिया पर इस प्रकार गोरों की छाया का और दूसरा कारण ही कोई नहीं है। उसने अंधविश्वासों में फँसकर विज्ञान से घृणा की है,

इसीलिए विदेशियों की विजय हो गई।"

सुन्दरम् ने कहा, "मैं आज ही उनसे कहूँगा, कर्णद्वीप के लिए जापानी सम्बन्ध से यह समय आ गया है कि वह संसार के साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर चले और वह बिना भाप, बिजली से चालित मशीनरी के संयोग से न होगा।"

हिंकू बोला, "हाँ, अगर वे राज़ी हों तो हम सहज ही उनके लिए यह सुयोग साध देंगे। उनसे जाकर कहो, जापान अपनी मित्रता की स्मृति में उन्हें पहला हवाई जहाज़ भेंट देना चाहता है।"

"ठीक है!"—सुन्दरम् ने कहा, "जब उनके पास एक-दो हवाई जहाज़ हो जावेंगे तो फिर किसे द्वीप के आकाश या उसकी धरती पर हवाई जहाज़ों के होने में कोई संशय होगा?"

"अवश्यमेव!"—हिंकू ने फिर एक सिगरेट निकालकर सुन्दरम् को दी, "अब तुम्हारा द्वीप प्रकाश के मार्ग में आ गया है। जापान की इस पर दृष्टि पड़ जाने से अब कोई मानचित्रकार इसकी उपेक्षा न कर सकेगा। बात द्वीप के क्षेत्रफल पर नहीं है, उसकी शक्ति होनी चाहिए। जापान का क्षेत्रफल क्या है? लेकिन आज उसने अंग्रेज़ और अमरीकनों को नचा रखा है।"

जापानी सिगरेट का धुवाँ छोड़ता हुआ, भाँति-भाँति के विचारों में उलझता और सुलझता हुआ सुन्दरम् रानी जी के पास जा पहुँचा। रानी के कोई प्रश्न करने से पहले ही उसने कहा, "महारानी जी, यह अभियान का कमाण्डर हमारे लिए बहुत बड़ा वरदान होकर आया है। वह हमारे द्वीप के लिए बिल्कुल नवीनतम प्रकाश लाया है।"

वासंथी भी वहाँ आ पहुँची और बड़ी उत्सुकता से सुनने लगी।

सुन्दरम् ने कहा, "रानी जी, हम अपने द्वीप को बहुत जल्दी ही संसार के नक़शों में उभार सकते हैं।"

"क्यों सुन्दरम्, छिपकर रहने में क्या बुराई है?"

वासंथी बोली, "नहीं माँ, छिपकर रहना भी कोई बात है?

भगवान् ने पक्षियों को रूप और हरियाली को रंग-बिरंगे फूल दिये हैं कि वे धरती पर प्रकट हों।"

"जापान की भी पहले यही दशा थी। छोटा-सा द्वीप, कौन जानता था उसे धरती पर ? राजा परदे में रहता था और प्रजा तरह-तरह के अंधविश्वासों में जकड़ी थी। उसने जागकर शक्ति प्राप्त की और उतने बड़े शक्तिशाली रूस के भालू को पछाड़कर रख दिया और आज बिल्कुल ताज़ी खबर है—उसने फिलिपाइन्स में अमरीकनों को भारी शिकस्त दी है और मलाया प्रायद्वीप से अंग्रेज़ों को भगा दिया है। उन्होंने जाकर सिंगापुर में शरण ली है।"

"युद्ध इतने निकट आ गया ?"—रानी ने कहा।

"उसे आने दो महारानी, आप इस चिन्ता से मुक्त होकर अपने राजभवन में बैठी रहें। कर्नल हिंकू ने आपके लिए यह अभय सन्देश भेजा है। आपकी, आपकी राजधानी और आपके द्वीप की रक्षा उसका पहला कर्त्तव्य है।"

वासंथी बोली, "सुन्दरम्, तुम न जाने कहाँ बात को खींच ले गये ?"

"हाँ, मैं कह रहा था जापान ने विज्ञान की सहायता से ही सब कुछ किया। वैसी ही औद्योगिक क्रान्ति हमें भी चाहिए।"

"लेकिन कैसे ?"—वासंथी ने पूछा।

"जापान हमारी मदद करने को तैयार है।"

रानी ने कहा, "नहीं, नहीं, मुझे इस सभ्यता के अभिशाप की आवश्यकता नहीं है।"

वासंथी बोली, माँ, तुम बूढ़ी हो चलीं। सुन्दरम्, मैं सुनूँगी तुम्हारी बात। कहो, कर्नल हिंकू और क्या कहता है ?"

"वह इस द्वीप के साथ अपनी मित्रता की स्मृति में हमें एक हवाई जहाज़ उपहार देने के लिए आपकी स्वीकृति चाहता है।"

रानी ने कुछ सोचकर कहा, "नहीं, यह उसकी कोई कूट चाल है।

मैने उससे यहाँ तक हवाई जहाजों का यातायात न रखने को कहा और वह उसका इस प्रकार उत्तर देता है।"

वासंथी बोली, "मन्त्री, लेकिन उसे चलावेगा कौन? तुम तो पानी के जहाज़ के कप्तान थे।"

"एक नौकर रख लिया जायगा।"—सुन्दरम् ने उत्तर दिया।

रानी बड़े असमंजस में पड़ गई। सुन्दरम् बोला, "उसी जहाज में थोड़ी-थोड़ी मशीनरी हमारे यहाँ आती रहेगी।"

"मोटर! बाइसिकिल! रेल! बिजली-भाप के एंजिन! मिल-मशीनरी! खेत खोदने, बोने-लवाने, तेल पेरने, कपड़ा सीने की मशीनें।"—वासंथी की कल्पना में उन मशीनों के चलने की तरह-तरह की ध्वनियों का सम्मिश्रण हुआ, "सचमुच में माँ, लेकिन क्या यह सब चीज़ें जापान हमें उपहार में दे देगा? क्यों वह इतना उदार है?"

"उदारता की कोई बात नहीं। न वह देगा और न हम उससे भीख ही माँग सकेंगे। ये तो बाद की समस्या है। इस समय ये जो युद्ध के काले बादल सिर पर मँडराए हैं!"—सुन्दरम् ने आकाश की ओर देखा।

रानी ने पूछा, "लेकिन हम खरीद कैसे सकते हैं?"

वासंथी बोली, "हमारे यहाँ कोई सिक्का तो चलता ही नहीं।"

"नारियल कहाँ तक दे सकेंगे?"

कुछ देर सभी चुप रहे। मन्त्री ने स्तब्धता तोड़ी, "सोना?"

"यहाँ उसकी कोई खान नहीं है। हमने बहुत खोज की।"—रानी ने जवाब दिया।

"और कोई बहुमूल्य खनिज पदार्थ?"—सुन्दरम ने पूछा।

"क्या हो सकते हैं वे?"—आशान्वित होकर रानी बोली।

"हीरा आदि जवाहरात से लेकर ताँबा, जस्ता, सीसा आदि धातुएँ भी तो।"—सुन्दरम् ने पूछा।

"और किसी चीज का नाम लो।"

"मोती नहीं निकलते यहाँ ?"— सुन्दरम् ने जिज्ञासा की।

"पहले तो निकलते थे, फिर यह क्रम टूट गया।"—रानी ने जवाब दिया।

"क्यों टूट गया ?"

"गोताखोरों की जाति नष्ट हो गई।"

"दूसरे तैयार नहीं हो सके ?"

"वह साँस को रोकने का अभ्यास था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता था।"

वासंथी बोली, "सुन्दरम्, मैंने पढ़ा है सीप निकालने के लिए कुछ वैज्ञानिक उपाय हैं। उनके द्वारा चाहे जितनी देर तक मनुष्य पानी के नीचे रह सकता है। उसे नलियों से साँस लेने के लिए हवा पहुँचा दी जाती है।"

सुन्दरम् ने पूछा, "एक चीज़ और है रेडियम।"

"रेडियम क्या हुआ ?"—रानी ने पूछा।

"वह भी एक तरह की धातु है। इस विज्ञान के युग में उसकी बड़ी माँग है। वह बहुत थोड़ी मात्रा में मिलता है, इसलिए उसकी क़ीमत बहुत ज्यादा है। यदि वह यहाँ उपलब्ध हो जाय तो हमारे भाग खुल जायँ। फिर बिना किसी का एहसान लिये ही हमारा द्वीप संसार के नक़शों में चमक उठेगा।"—सुन्दरम् बोला।

वासंथी उसका हाथ पकड़कर चिल्ला उठी, "तुम पहचानते हो उसे ?"

"कुछ वर्ष विज्ञान का अध्ययन किया तो है मैंने। रेडियम विशुद्ध रूप में नहीं मिलता। वह यूरेनियम आदि दूसरे सम्मिश्रणों में से साफ़ करना पड़ता है।"

"उसके दो-चार बोझ भी मिल जाते तो ?"—वासंथी बोली।

"रेडियम के ? उसकी तो एक चुटकी भर से ही हम माला-माल हो जाते। वह तो संसार-भर में कुछ थोड़े-से चम्मच-भर ही है।"

"नहीं, मेरा मतलब यूरोनियम से है।"

"तो भी तुम्हारी गलत कल्पना है। लगभग पाँच हजार टन यूरेनियम को साफ कर कहीं दो पौण्ड रेडियम मिलेगा।"

रानी ने पूछा, "रेडियम किस काम आता है?"

"यह एक अद्भुत वस्तु है, यह हजारों वर्ष तक गरमी और प्रकाश देता रहता है और प्रायः वैसा ही रहता है। न राख में बदलता है न अपने संभार में कम होता है।"

"आश्चर्य!"

"कैंसर की केवल यही एकमात्र प्रमाणित औषधि है।"

"काश! इसकी कोई खान निकल आती हमारे द्वीप में। सुन्दरम्, तुम पहचान सकोगे उसे?"—वासंथी ने पूछा।

"भगवान की कृपा होने पर सब कुछ हो सकता है वासंथी, पर इस समय तो सारा ध्यान युद्ध पर ही केन्द्रित करना है। इसके बाद देखा जायगा। वैज्ञानिकों का विश्वास है यह रहस्यमयी धातु विज्ञान के रुद्ध द्वारों की चाबी है। इसके द्वारा कीमिया की अबूझ पहेली हल हो सकेगी। यह मनुष्य के हाथों में अणु की महान् शक्ति को सौंप देगा और मनुष्य प्रकृति का स्वामी होकर धरती पर एक नए ही विश्व की रचना कर देगा।"—सुन्दरम् ने उल्लसित होकर कहा।

२२

प्यार की बलि

उद्यमशील जापानियों ने कुछ ही दिनों में कर्णद्वीप के उस तट की सारी काया-पलट कर दी। वे अपने साथ सभी प्रकार के औज़ार और हथियार लाये थे। लकड़ी वहाँ प्रशस्त थी। उन्होंने भाँति-भाँति का सामान बनाकर रख दिया। बहुत सा उपयोगी फरनीचर बनाकर उन्होंने झोंपड़ियों को सजा दिया। उठने-बैठने के लिए समुद्री तट पर कई तरह के मंच और कुर्सी-बैंचों का निर्माण कर दिया। खाली बैठना तो जानते ही न थे। सुबह से शाम तक किसी-न-किसी काम में लगे ही रहते थे। व्यर्थ की बातों में समय खोना और कोरे मनोरंजन को बड़ा पाप समझते थे।

उन्होंने अनेक नमूनों की कई नावें बना लीं और उनमें निर्भय होकर दूर-दूर चले जाते। मछलियों का शिकार कर लाते थे और अपनी सामरिक चेष्टाओं के लिए भी देख-भाल करते थे। कर्णद्वीप के भी चारों तरफ समुद्र था, लेकिन उसके निवासी समुद्र से खौफ़ खाते थे—उसकी उग्रता को उसका दानवी रूप समझते थे। जापानी भी द्वीप-वासी थे, पर वे समुद्र के वक्ष को माता की गोद समझते थे। हमारे मन के रूप बाहरी जगत् में विस्तारित हैं। एक ही चीज़ भिन्न-भिन्न भावनाओं पर दो जातियों के लिए दो रूप रख लेती है।

सुन्दरम् ने बड़े कौशल के साथ रानी के द्वीप और कर्नल हिंकू के दल के बीच के सम्बन्ध उज्ज्वल और दृढ़ कर दिये। जापानी बड़े आदर के साथ द्वीप के प्रतिबन्धों पर जमे रहे। उनके कैम्प और द्वीप के बीच में जो सीमा बनाई गई थी उन्होंने कभी भूलकर भी उसका अतिक्रमण नहीं किया। उस सीमा में स्थान-स्थान पर प्रहरियों के लिए ऊँचे लट्ठे

गाड़कर उनमें चौकियाँ बनाई गई थीं।

रानी ने जापानियों को कई प्रकार के और सुभीते दे दिये। धीरे-धीरे उनके कैम्प की सीमा बढ़ा दी गई। उन्हें महीने में दो हवाई जहाजों को यहाँ ले आने की आज्ञा भी दे दी गई। द्वीप के समुद्री तट का उनके निकट का पूरा एक जंगल भी उन्हें दे दिया गया ताकि वे लोग उसकी लकड़ी का उपयोग कर सकें।

दो ही महीने बाद एक दिन सुन्दरम् ने रानी से कहा, "जापानियों ने सिंगापुर ले लिया है।"

जापानियों के उस बढ़ते हुए बल की तरफ़ रानी आकर्षित हो गई और उनके लिए जो संशय रखती थी वह दूर होने लगा। धीरे-धीरे जापानियों की प्रगति की तरफ़ रानी की हमदर्दी हो गई।

फिर जब दस ही दिन के अन्तर से एक दिन सुन्दरम् ने कहा, "महारानी जी, अंग्रेज़ों के पैर बर्मा में भी उखड़ गये हैं। वे रंगून खाली कर भाग गये।"

अब तो रानी को जापानियों की विजय में कोई सन्देह नहीं रहा। सुन्दरम् कई दिन से यह अनुरोध कर रहा था कि कर्नल हिंकू को राज-भवन में निमन्त्रित किया जाय और वह महारानी के सामने उपस्थित किया जाय। रानी सुन्दरम् के इस प्रस्ताव को बराबर टालती जा रही थी। अब वह स्वयं ही राज़ी हो गई। वह कर्नल हिंकू से भेंट करने और उससे बातें करने के लिए तैयार हो गई।

एक दिन तय कर कर्नल हिंकू को इसकी सूचना दे दी गई। राज-भवन का सभा-कक्ष सुचारु रूप से सजा दिया गया। एक ऊँचे सिंहासन पर रानी बैठी और उसके साथ ही वासंती। चार दासियाँ बड़े-बड़े पंखे लेकर उनकी सेवा में खड़ी थीं। द्वारों पर उतने ही सेवक खड़े थे हाथों में ढाल और भाले लेकर। दास और दासी अपनी कमरों में पत्तों के आवरण पहने हुए थे। मध्यस्थ और दुभाषिये की स्थिति में सुन्दरम् राजभवन से कुछ दूर पर अतिथि के स्वागत के लिए बनाये गये तोरण-

द्वार पर खड़ा था। उसके साथ राज्य के कुछ कर्मचारियों के साथ बाजे वाले भी थे।

नियत समय में कर्नल हिंकू आ पहुँचा। उसके साथ द्वीप के चार निवासी थे जो उपहार की चीजों का भार सँभाले हुए थे। उसके फाटक पर आते ही तुरहीवालों ने तुरहियाँ बजानी शुरू कीं। सुन्दरम् ने हिंकू के गले में फूल की माला पहनाकर कहा, "जापान और कर्णद्वीप की मैत्री की जय!" इसके बाद वे दोनों गले मिले। बाजे बन्द हो गये। और दोनों साथ-साथ राजभवन को चले।

वहाँ से लेकर राजभवन तक का सारा मार्ग फूल-पत्तियों से सजाया गया था और नीचे वस्त्र बिछाये गये थे। मार्ग के दोनों तरफ द्वीप के निवासी स्त्री-पुरुष कमर पर पर्ण धारण किये, सीप-मूँगे और फूलों के अलंकार पहने, मीठी मुसकानों से उस परदेशी अतिथि के ऊपर फूलों की वर्षा कर उसका स्वागत कर रहे थे।

सुन्दरम् और वासंथी ने कई दिन पहले से उस सभा-भवन को सजाया था। रानी ने नंगी तलवारें लेकर अंगरक्षिकाओं की आवश्यकता बताई थी, लेकिन अतिथि को शंका-मुक्त करने के लिए सुन्दर ने उस पुराने दस्तूर को अलग रख दिया था। सभा के प्रवेश-द्वार पर पहुँचते ही फिर बाजे बज उठे। द्वार पर खड़ी कुछ दासियों ने सुगन्धित जल की वर्षा कर अतिथि का अभिषेक किया।

आगे-आगे चलकर सुन्दरम् कर्नल हिंकू का हाथ पकड़कर उसे भीतर ले गया। बाजे बन्द हो गये। रानी के निकट पहुँचकर सुन्दरम् ने दोनों हाथ ऊँचे उठाकर कहा, "द्वीप की महारानी की जय!"

हिंकू को भी उसने पहले ही से रटा रक्खा था। वह भी बोला, "द्वीप की महारानी की जय!" फिर सब ने कहा, "जापान और कर्णद्वीप की मैत्री की जय!"

कर्नल हिंकू ने अनुचरों के सिरों पर से भेंट की चीजें उठाकर नीचे महारानी के चरणों के समीप रख दीं। मंच के नीचे एक तरफ हिंकू

और दूसरी ओर सुन्दरम् के बैठने के लिए कुरसियाँ रख दी गई थीं। सुन्दरम् ने हाथ जोड़ सिर झुकाकर रानी से निवेदन किया, "जापानी अभियान के संचालक, कर्नल हिंकू, महारानी के अभिनन्दन के लिए उनके सामने खड़े हैं।"

रानी ने मीठी मुस्कान द्वारा इसकी स्वीकृति दी, साथ ही वासंथी ने भी। रानी ने उपहार की ओर देखा। उनमें बहुत सी साज-सज्जा की चीज़ें थीं। सुन्दरम् ने कहा, "ये सब चीज़ें यहीं बनाई गई हैं। इनके निर्माण की यह लकड़ी सब आपके द्वीप की उपज है।"

"हाँ मन्त्री, पहले भी तो इन लोगों ने बहुत-सा फ़र्नीचर हमारे लिए भेजा था। वह हमारे उपयोग में आया, उससे हमारे राजभवन की शोभा भी बढ़ी और उसने हमारी प्रजा की आँखों के आगे एक नवीन आदर्श भी रख दिया। उन्हें यह जान पड़ा किस तरह प्रकृति की उपज को मनुष्य अपनी कला से सुन्दर बना सकता है। परिश्रम की और बारीकियों की ओर उनकी दृष्टि जावेगी।"—रानी ने एक ढके हुए उपहार के थाल की तरफ़ इशारा किया।

सुन्दरम् ने उसके ऊपर पड़ा हुआ रेशम का आवरण हटाया। मनोहर रंगों में चमकते हुए उपहार खुल पड़े। उनमें एक हवाई जहाज, एक रेल का ऐंजिन, एक मोटर और एक ट्रैक्टर के छोटे-छोटे मॉडल थे। तीनों चाबी भरकर चलनेवाले थे। हिंकू ने कहा, "ये अभी द्वीप के भविष्य के शिशु-रूप में हैं। युद्ध की विजय के बाद ये सब अपने असली रूप में होकर अपनी शक्ति से यहाँ चलने-फिरने लगेंगे।"

सुन्दरम् ने यह रानी पर व्यक्त किया। रानी ने कहा, "हमारी ओर से इन्हें धन्यवाद दो। निःसन्देह हमारे द्वीप में जो औद्योगिक क्रान्ति होने वाली है, ये सब उसके बीज-रूप हैं।"

उस थाल में कुछ सुवर्ण के आभूषण, कुछ रेशम के वस्त्र, कुछ मिठाई के टीनों के साथ एक असली रिवाल्वर, एक रेडियो और एक टॉर्च भी थे। सुन्दरम् ने उन्हें दिखाकर कहा, "ये खिलौने नहीं हैं।"

रानी हँसने लगी। कर्नल ने कहा, "हमने महारानी के लिए एक छोटा-सा डायनेमो भी मँगा रक्खा है, बिजली की फिटिंग और बल्ब तथा पंखे भी। अब आने वाले हवाई जहाज़ में वह ज़रूर आ जायगा। इधर वे लोग नये अधिकृत देशों की व्यवस्था में लग गये हैं। इसलिए शान्ति के समय की जाने वाली चीज़ों की बारी उन्होंने बाद को लगा दी।"

सुन्दरम् ने यह रानी पर व्यक्त किया। वासंथी ने पूछा, "वह कहाँ लगाया जायगा?"

सुन्दरम् ने कहा, "राजभवन में। आपके सब कमरे प्रकाश से जगमगा उठेंगे और पंखों से वे शीतल भी हो सकेंगे।"

रानी बोली, "कुछ प्रजा के लिए भी तो?"

सुन्दरम् बोला, "वह तो होगा ही महारानी जी! आपने बताया है, यहाँ बड़े-बड़े जल-प्रपात हैं। उनसे जल-विद्युत बना ली जायगी। उससे आपकी प्रजा की प्रत्येक झोंपड़ी जगमगा उठेगी और उसी शक्ति से द्वीप के तमाम उद्योगों को प्रगति प्राप्त होगी।"

"लेकिन," महारानी ने कुछ निराशा की अभिव्यक्ति के साथ कहा, "लेकिन जल-प्रपात तो उन जंगलियों की भूमि पर हैं।"

सुन्दरम् ने बड़े जोश के साथ कहा, "वह सारी मानवता के उपयोग की चीज़ है। हम उसमें उनको भी भाग दे देंगे।"

"तुम उन्हें नहीं जानते सुन्दरम्, वे कैसे लोग हैं?"

"महारानी जी, हम उन्हें सभ्य बना लेंगे।"

"तुम कैसे समझाओगे उन्हें? हम में से कोई उनकी बोली नहीं जानता।"—रानी ने कहा।

कुछ सोचकर सुन्दरम् बोला, "क्यों कुल्लूटक स्वामी तो हैं। मुझे मालूम है वे द्वीप की सभ्य और असभ्य दोनों आबादियों के जोड़ पर है। ठीक ऐसे ही जैसे मैं आप और इन जापानियों के बीच की सन्धि पर हूँ।"

रानी झल्लाकर बोली, "नहीं सुन्दरम्, वह बड़ा खतरनाक मनुष्य है, उससे हम कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे। हमें उससे बदला लेना है।"

वासंथी बोली, "बिजली का उत्पादन हो जाने पर वे उसकी शक्ति से भयभीत हो जावेंगे। फिर कभी सिर उठाने की उनकी हिम्मत ही न होगी।"

सुन्दरम् ने जल-विद्युत के प्रस्ताव पर कर्नल से बातें कीं। उस मार्ग की अड़चन का भी उसने ज़िक्र किया। हिंकू बोला, "समय आने पर सब प्रबन्ध कर दिया जायगा।"

रानी बोली, "आप लोगों को बैठ जाना चाहिए। सुन्दरम्, तुमने जापानी सेना-नायक को यह अच्छा दण्ड दे दिया।"

सुन्दरम् ने रानी की यह इच्छा कर्नल पर प्रकट की और वह बोला, "मैं एक साधारण सिपाही से आज इस पद पर पहुँचा हूँ। कठिनाइयों के बीच में ही सिपाही का कर्तव्य रहता है। मुझे युद्ध-क्षेत्र में कभी-कभी रात-रात और दिन-दिन भर खड़ा ही रहना पड़ा है। महारानी के इस अतिदुर्लभ सहयोग में, इस सुन्दर राजभवन के भीतर मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं जान पड़ती।"

सुन्दरम् ने उसे आग्रहपूर्वक बैठा दिया और स्वयं भी उसने आसन ग्रहण कर लिया।

हिंकू ने रानी को देखा, वासंथी को देखा और देखा उसने उनके राजभवन को। वह देखता ही रह गया। द्वीप की वह मजदूर प्रजा, जो उनकी झोंपड़ियों के लिए लकड़ियाँ काटकर लाई थी, जिसने उनके बल्ले गाड़ने के लिए भूमि में गड्ढे खोदे थे, उन्हें देखकर हिंकू ने सोचा था, कुछ थोड़ी-सी चढ़ती हुई कला में होगी इनकी रानी।

लेकिन जब उसने रानी और राजकुमारी को उस राजभवन में देखा तो उसे अपनी सारी भावना बदल देनी पड़ी। केवल एक बिजली नहीं थी और सभ्य जगत् के सारे संस्कार हिंकू को उस कक्ष में दिखाई

पड़ गये। टेलीफोन नहीं था, पर दूर एक कोने में एक ऊँची तिपाई पर रक्खा हुआ रेडियो अपने मन्द्र स्वरों में राजभवन के उस शान्त वातावरण में संगीत की श्रुति-मधुर लहरें प्रसारित कर रहा था।

उसने वासंथी को देखा, वह अप्रतिभ रूप की प्रतिमा! रानी के ही सदृश उसकी आकृति। अपने यौवन में रानी ऐसी ही दिखाई देती होगी—ऐसा अनुमान किया उसने। कर्नल देखने को इधर-उधर देख रहा था, पर उसका सारा ध्यान वासंथी पर ही केन्द्रित था और वासंथी उसे देखकर सोच रही थी, "अभी तो यह बिल्कुल नवयुवक है। इतने ही छोटे समय में इसने पलटन की नौकरी में बहुत बड़ी तरक्की कर ली। अभी उन्नति के लिए सारा विस्तार इसके सामने ही पड़ा है। वासंथी हिंकू के प्रति उसके सामरिक शौर्य पर इतनी आकर्षित नहीं हुई थी, जितना वह उस पर टूट पड़ी थी—उसके दिखाये हुए विज्ञान के सपनों पर!

रानी ने कर्नल से पुछवाया, "एशिया की एकता से आपका क्या मतलब है?"

कर्नल ने जवाब दिया, "उसके भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच में सामाजिक और व्यापारिक सम्बन्ध, साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा सद्भावना का विनिमय। अगर यह हो जाय तो विदेशी यहाँ से स्वयं ही चल देंगे।"

रानी ने फिर कहलवाया, "मैंने सुना है, जापान के कई होटलों के द्वार पर लिखा है—'कुत्ते और भारतीयों को भीतर जाने की आज्ञा नहीं।' क्या यही एशियायी राष्ट्रों के बीच की सद्भावना का नमूना है?"

हिंकू के चेहरे पर कुछ घबराहट के चिह्न प्रकट हुए। लेकिन शीघ्र ही उसने अपनी नाड़ियों में साहस भरकर कहा, "यह जरूर हमारे शत्रुओं की उड़ाई हुई खबर है। मूर्खों ने इसे विस्तारित कर दिया। इसके विरुद्ध मैंने तो सुना है, ऐसा विज्ञापन सिंगापुर के राइफल क्लब के द्वार पर लगा है।"

सुन्दरम् ने कहा, "कर्नल, चूँकि अब सिंगापुर पर जापान का अधिकार हो गया है...।"

"वह तख्ती जरूर टूटकर सिपाहियों के बूटों के नीचे आ गई होगी।"—हिंकू ने हँसते हुए कहा।

कुछ देर तक और इधर-उधर की बातें होती रहीं। इसके अनन्तर एक दूसरे कमरे में उस अतिथि का स्वागत किया गया। वहाँ चारों ने मिलकर एक समान धरातल पर बैठ चाय-पान किया। हिंकू को अधिक निकट से रानी और वासंथी को देखने का अवसर मिला। शब्दों के माध्यम से तो नहीं, हाँ, भावना के उद्रेक से और मुद्राओं की चालना से हिंकू वासंथी के हृदय के कपाट खटखटाने लगा।

हिंकू की भेंट चाय-पान के बाद समाप्त हो गई। रानी और वासंथी उसे सिंह-द्वार तक पहुँचाने गईं। वहाँ तक फ़र्श पर मखमल बिछाया गया था। हिंकू विदा होने लगा।

वासंथी ने अपने अंचल के भीतर से कुछ निकालकर हिंकू की ओर बढ़ाया। हिंकू ने बड़े आदर से उसे ग्रहण कर सुन्दरम् की तरफ़ देखा। सुन्दरम् ने समझाया, "आपकी कृपा और उदारता की स्मृति में द्वीप की ओर से यह भेंट है।"

हिंकू बोला, "यह क्या बोधिसत्व की प्रतिमा है?"

सुन्दरम् ने कहा, "हाँ, सारे पूर्वी एशिया के एकीकरण का यही प्रतीक है। यह सत्य, समता और अहिंसा का देवता क्यों नहीं सारे जगत् की एकता का प्रतीक हो?"

हिंकू ने उसे अपने माथे और छाती से लगाया, "इस प्रतिमा को बड़े आदर-पूर्वक रक्खूँगा मैं।"

हिंकू ने सुन्दरम् के साथ हाथ उठाकर रानी का जयनाद किया, और वह राजभवन से विदा हो गया। सुन्दरम् उसके साथ-साथ चला। द्वीप के दो और सैनिक भी कर्नल के आदर के लिए उन्हें पहुँचाने को गये।

मार्ग में हिंकू ने कहा, "सुन्दरम्, तुम्हारी रानी तो पूरी सभ्य और सुसंस्कृत है। सिर्फ एक अंग्रेज़ी नहीं आती।"

सुन्दरम् हँसने लगा, "अंग्रेज़ों के गुण की कभी उपेक्षा न की जायगी। अंग्रेजी की भाषा भी उनका एक गुण है, उनके काव्य-साहित्य के लिए नहीं, उसकी विश्व-भाषा होने की सामर्थ्य के लिए। नहीं, हिंकू, मैं तुम्हारे कथन को अतिशयोक्ति नहीं मानता।"

"राजा और प्रजा के बीच का अन्तर संसार में कम होता जा रहा है सुन्दरम्! तुम्हारी रानी को अभी इसका खटका नहीं जान पड़ा। तुम्हारी प्रजा अभी पक्की राजभक्त है।"

सुन्दरम् बोला, "बिजली और विज्ञान से इसीलिए तो हमारी रानी घबराती हैं। वे वासंथी के साथ भारत की यात्रा कर चुकी हैं। उन्होंने सभ्य संसार को देखकर भी उसे अपनाया नहीं है इसीलिए।"

कुछ अचरज में पड़कर कर्नल हिंकू ने पूछा, "किस लिए सुन्दरम्?"

"मशीन और बिजली ने मज़दूरों का तमाम श्रम अपने ऊपर ले लिया और उन्हें अपने मालिकों के लिए विद्रोह करने को समय मिल गया।"—सुन्दरम् ने कहा।

हिंकू हँसने लगा। सुन्दरम् बोला, "मित्र, इतनी देर से सिगरेट नहीं पी। कुछ बाधा रानी जी का सम्मान रखने में पड़ी और कुछ—हाँ तुम्हें मालूम है, मेरी नाड़ी तुम्हारे काबू में आई है। मेरी सिगरेटें समाप्त हो गई हैं।"

"राज भण्डार से नहीं मिलतीं?"

"वहाँ का स्टाक भी समाप्त हो गया है।"

"रानी नहीं पीतीं?"

"नहीं।"

"राजकुमारी?"

"नहीं।"

"सुन्दरम्, एक बात तो बताओ।"—हिंकू ने सुन्दरम् को एक सिगरेट दी और उसे अपने लाइटर से सुलगा दिया, "राजकुमारी का विवाह हो गया ?"

"नहीं।"

"कब होगा ?"

"मैं नहीं जानता।"

"किस से होगा ? विवाह योग्य तो हो गई है वह।"

"मैं नहीं जानता इस बारे में कुछ।"

हिंकू ने बड़े गौर से इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सुन्दरम को देखा। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और उसकी कलाई पर के स्पंदन गिनने लगा। सुन्दरम् हँसने लगा।

"मित्र, एशिया की एकता के लिए हमें उसनो भिन्न-भिन्न जातियों को विवाह के सामाजिक बंधनों में भी एक करने की परम आवश्यकता है।"

सुन्दरम् ने घबराकर अपने जापानी मित्र की ओर देखा। हिंकू ने उसका हाथ छोड़कर कहा, "सुन्दरम्, क्या तुम भी इतने रुढ़ि-ग्रस्त हो ? क्यों तुम्हें कोई संशय हो ?"

सुन्दरम् दुविधा में पड़ा कुछ नहीं कह सका। उसने अपने मन से प्रश्न किया, "क्यों तुझे कोई आपत्ति क्यों हो ?"

हिंकू बोला, "विज्ञान ने धरती के चारों कोने समेटकर एक ही जगह रख दिए हैं। दूर-दूर बिखरी हुई जनता पास-पड़ोस में आ गई है। एशिया की सन्तान ऐसे निकट सम्पर्क में कभी नहीं आई जैसी इस युद्ध-काल में। पर्वत और सागरों के भेद ने सारे पूर्व को छिन्न-भिन्न कर रक्खा था—वह अब एक कल्पना-सी जान पड़ती है। सुन्दरम्, यदि हम अन्तर्जातीय विवाहों द्वारा एक हो गये तो हमारी तमाम संस्कृतियों का मंथन होकर एक नई संस्कृति का जन्म हो जायगा। वह मानव की कल्याणकारिणी होगी।"

सुन्दरम् ने अपने मन में सोचा—'इस कर्नल की आँखों में जरूर हमारी राजकुमारी पड़ गई है।' उसने अपनी शंका के निराकार के लिए पूछा, "हिंकू, तुम्हारा विवाह हो गया या नहीं ?"

"मैं पहले देश का ऋण चुकाने के पक्ष में हूँ। इसके बाद ही गृहस्थी का धर्म।"

"तो इसका मतलब है, अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ।"

"नहीं।"

हिंकू को उस समय वासंथी की चर्चा के सम्बन्ध में ही सूझ रहा था। सुन्दरम् ने कई बार बातचीत के सिरे अन्यत्र मिला दिये थे। लेकिन हिंकू खींच-खींच कर सूत्र को फिर वासंथी पर ही केंद्रित कर दे रहा था। उसने वासंथी के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न कर डाले। सुन्दरम् उठा और उससे विदा माँगने लगा। दोनों अब जापानी कैम्प में आ गये थे।

हिंकू जबर्दस्ती कर उसे अपने कमरे में ले गया और बोला, "चाय पीकर जाओगे न !"

"नहीं, बिल्कुल इच्छा नहीं है।"

"तब कुछ और पीना होगा।"—हिंकू ने घंटी देकर कैंटीन के बैरा को बुलाकर कहा, "दो गिलासों में···।"

सुन्दरम् मित्र के अनुरोध को न टाल सका। हिंकू का आतिथ्य ग्रहण करना ही पड़ा उसे, मदिर आँखों से हिंकू ने सुन्दरम् का हाथ पकड़कर पूछा, "वासंथी के सम्बन्ध में तुम्हारे क्या विचार हैं ?"

वह एक सुसंस्कृत गुण-सम्पन्न सुन्दरी है। उसे अंग्रेजी नहीं आती लेकिन मानवी भाषा जानती है।"

"तुम प्यार करते हो उसे ?"

इस अजीब प्रश्न का भार सह न सका उसका हृदय उसने। काँपती हुई आवाज़ में पूछा, "तुम्हारा मतलब ?"

"मतलब कुछ भी हो।"—उसने जोर से सुन्दरम् का हाथ दबा

लिया, "तुम्हें सच-सच बताना होगा।"

"अभी नहीं मित्र, बाद को इसका जवाब दूँगा।"

"बाद को नहीं, मैं अभी इसका उत्तर चाहता हूँ।"

"तब झूठ बोलनी पड़ेगी।"

"हमारी मित्रता अभी समाप्त हो जायगी।"

"यह क्या कहते हो? मेरे एक व्यक्तिगत प्रश्न पर तुम अपने इतने बड़े अभियान को ठहरा दोगे क्या? अगर मैंने तुम्हारे मन के अनुकूल जवाब न दिया तो क्या वह तुम्हारा एशिया की एकता का मन्त्र ध्वस्त हो जायगा?"

"अभियान अपने मार्ग पर चल चुका है, वह चलेगा ही और एशिया की एकता भी तो। मेरे प्रश्न का उत्तर दो।

"एक सिगरेट और! मैं उसके धूएँ पर चढ़कर अपने विचार का निश्चय जानना चाहता हूँ।"

हिंकू ने तुरन्त ही उसकी सिगरेट जला दी—"सिगरेटों का अखण्ड स्रोत बहा सकता हूँ तुम्हारे सामने से।"

सुन्दरम् ने कश-पर-कश खींची सिगरेट की। एकाएक वह उठ खड़ा हुआ। उसने सिगरेट फ़र्श पर डालकर उसे अपने बूट से कुचलकर कहा, "हिंकू, मैं वासंथी को प्यार नहीं करता।"

हिंकू ने तपाक से हाथ मिलाकर मित्र को विदा देते हुए कहा, "मित्र, हमारी दोस्ती अटूट और अभिन्न है।"

२३

जादू-भरी पुकार

वासंथी दिन-दिन सुन्दरम् की ओर खिंचने लगी। उस द्वीप में उसके प्रेम की पूजा के लिए केवलमात्र एक देवता सुन्दरम् ही था। राज-कर्मचारियों की आबादी में राजकुमारी के रूप-गुण की बराबरी में कोई न था। द्वीप के बाहर के किसी सम्बन्ध के लिए महारानी तैयार न थीं। वासंथी के लिए सुन्दरम् की उपयुक्तता रानी को भी मंजूर थी। सुन्दरम् को इसकी साक्षी कई बार मिल चुकी थी।

लेकिन जब से उसने हिंकू के सामने अपने प्रेम की बलि दे दी थी तब से वह इस मार्ग पर लौट चुका था। द्वीप के श्रेय के लिए उसने ऐसे ही क़दम उठाने में भलाई समझी।

उस दिन आधी रात के समय जब सारा द्वीप सो रहा था। केवल ज्वार पर चढ़ा हुआ महासागर पूनों के चाँद को छूने के लिए व्यर्थ परिश्रम कर रहा था। द्वीप के बालू, उसकी खेती और झोंपड़ियों पर चाँदनी चमक रही थी। नारियल के ऊँचे पेड़ों पर हवा सनसना रही थी।

युद्ध के उमँडते हुए बादलों की चिन्ता में बड़ी देर में सुन्दरम् सोने को चला गया था। उसने रेडियो में भारत के सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का समाचार सुना और महात्मा गांधी तथा उनके तमाम प्रमुख सहकारियों की क़ैद की खबर भी उसे मिल गई थी। उसका मन जन्मभूमि की तरफ़ खिंच गया। वहाँ की जनता के ऊपर क्या बीत रही होगी? इन्हीं विचारों में बड़ी देर तक डूबा रह गया वह। फिर उसे नींद ही नहीं आई। उसने जो भी चेष्टा की व्यर्थ गई।

अचानक उसे बोध हुआ, कोई धीरे-धीरे उसका द्वार खट-खटा

रानी झल्लाकर बोली, "नहीं सुन्दरम्, वह बड़ा खतरनाक मनुष्य है, उससे हम कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे। हमें उससे बदला लेना है।"

वासंथी बोली, "बिजली का उत्पादन हो जाने पर वे उसकी शक्ति से भयभीत हो जावेंगे। फिर कभी सिर उठाने की उनकी हिम्मत ही न होगी।"

सुन्दरम् ने जल-विद्युत के प्रस्ताव पर कर्नल से बातें कीं। उस मार्ग की अड़चन का भी उसने ज़िक्र किया। हिंकू बोला, "समय आने पर सब प्रबन्ध कर दिया जायगा।"

रानी बोली, "आप लोगों को बैठ जाना चाहिए। सुन्दरम्, तुमने जापानी सेना-नायक को यह अच्छा दण्ड दे दिया।"

सुन्दरम् ने रानी की यह इच्छा कर्नल पर प्रकट की और वह बोला, "मैं एक साधारण सिपाही से आज इस पद पर पहुँचा हूँ। कठिनाइयों के बीच में ही सिपाही का कर्तव्य रहता है। मुझे युद्ध-क्षेत्र में कभी-कभी रात-रात और दिन-दिन भर खड़ा ही रहना पड़ा है। महारानी के इस अतिदुर्लभ सहयोग में, इस सुन्दर राजभवन के भीतर मुझे कुछ भी कठिनाई नहीं जान पड़ती।"

सुन्दरम् ने उसे आग्रहपूर्वक बैठा दिया और स्वयं भी उसने आसन ग्रहण कर लिया।

हिंकू ने रानी को देखा, वासंथी को देखा और देखा उसने उनके राजभवन को। वह देखता ही रह गया। द्वीप की वह मज़दूर प्रजा, जो उनकी झोंपड़ियों के लिए लकड़ियाँ काटकर लाई थी, जिसने उनके बल्ले गाड़ने के लिए भूमि में गड्ढे खोदे थे, उन्हें देखकर हिंकू ने सोचा था, कुछ थोड़ी-सी चढ़ती हुई कला में होगी इनकी रानी।

लेकिन जब उसने रानी और राजकुमारी को उस राजभवन में देखा तो उसे अपनी सारी भावना बदल देनी पड़ी। केवल एक बिजली नहीं थी और सभ्य जगत् के सारे संस्कार हिंकू को उस कक्ष में दिखाई

पड़ गये। टेलीफोन नहीं था, पर दूर एक कोने में एक ऊँची तिपाई पर रक्खा हुआ रेडियो अपने मन्द्र स्वरों में राजभवन के उस शान्त वातावरण में संगीत की श्रुति-मधुर लहरें प्रसारित कर रहा था।

उसने वासंथी को देखा, वह अप्रतिम रूप की प्रतिमा! रानी के ही सदृश उसकी आकृति। अपने यौवन में रानी ऐसी ही दिखाई देती होगी—ऐसा अनुमान किया उसने। कर्नल देखने को इधर-उधर देख रहा था, पर उसका सारा ध्यान वासंथी पर ही केन्द्रित था और वासंथी उसे देखकर सोच रही थी, "अभी तो यह बिल्कुल नवयुवक है। इतने ही छोटे समय में इसने पलटन की नौकरी में बहुत बड़ी तरक्की कर ली। अभी उन्नति के लिए सारा विस्तार इसके सामने ही पड़ा है। वासंथी हिंकू के प्रति उसके सामरिक शौर्य पर इतनी आकर्षित नहीं हुई थी, जितना वह उस पर टूट पड़ी थी—उसके दिखाये हुए विज्ञान के सपनों पर!

रानी ने कर्नल से पुछवाया, "एशिया की एकता से आपका क्या मतलब है?"

कर्नल ने जवाब दिया, "उसके भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के बीच में सामाजिक और व्यापारिक सम्बन्ध, साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा सद्भावना का विनिमय। अगर यह हो जाय तो विदेशी यहाँ से स्वयं ही चल देंगे।"

रानी ने फिर कहलवाया, "मैंने सुना है, जापान के कई होटलों के द्वार पर लिखा है—'कुत्ते और भारतीयों को भीतर जाने की आज्ञा नहीं।' क्या यही एशियायी राष्ट्रों के बीच की सद्भावना का नमूना है?"

हिंकू के चेहरे पर कुछ घबराहट के चिह्न प्रकट हुए। लेकिन शीघ्र ही उसने अपनी नाड़ियों में साहस भरकर कहा, "यह जरूर हमारे शत्रुओं की उड़ाई हुई खबर है। मूर्खों ने इसे विस्तारित कर दिया। इसके विरुद्ध मैंने तो सुना है, ऐसा विज्ञापन सिंगापुर के राइफल क्लब के द्वार पर लगा है।"

सुन्दरम् ने कहा, "कर्नल, चूँकि अब सिंगापुर पर जापान का अधिकार हो गया है...।"

"वह तख्ती जरूर टूटकर सिपाहियों के बूटों के नीचे आ गई होगी।"—हिंकू ने हँसते हुए कहा।

कुछ देर तक और इधर-उधर की बातें होती रहीं। इसके अनन्तर एक दूसरे कमरे में उस अतिथि का स्वागत किया गया। वहाँ चारों ने मिलकर एक समान धरातल पर बैठ चाय-पान किया। हिंकू को अधिक निकट से रानी और वासंथी को देखने का अवसर मिला। शब्दों के माध्यम से तो नहीं, हाँ, भावना के उद्रेक से और मुद्राओं की चालना से हिंकू वासंथी के हृदय के कपाट खटखटाने लगा।

हिंकू की भेंट चाय-पान के बाद समाप्त हो गई। रानी और वासंथी उसे सिंह-द्वार तक पहुँचाने गईं। वहाँ तक फर्श पर मखमल बिछाया गया था। हिंकू विदा होने लगा।

वासंथी ने अपने अंचल के भीतर से कुछ निकालकर हिंकू की ओर बढ़ाया। हिंकू ने बड़े आदर से उसे ग्रहण कर सुन्दरम् की तरफ देखा। सुन्दरम् ने समझाया, "आपकी कृपा और उदारता की स्मृति से द्वीप की ओर से यह भेंट है।"

हिंकू बोला, "यह क्या बोधिसत्व की प्रतिमा है?"

सुन्दरम् ने कहा, "हाँ, सारे पूर्वी एशिया के एकीकरण का यही प्रतीक है। यह सत्य, समता और अहिंसा का देवता क्यों नहीं सारे जगत् की एकता का प्रतीक हो?"

हिंकू ने उसे अपने माथे और छाती से लगाया, "इस प्रतिमा को बड़े आदर-पूर्वक रक्खूँगा मैं।"

हिंकू ने सुन्दरम् के साथ हाथ उठाकर रानी का जयनाद किया, और वह राजभवन से विदा हो गया। सुन्दरम् उसके साथ-साथ चला। द्वीप के दो और सैनिक भी कर्नल के आदर के लिए उन्हें पहुँचाने को गये।

मार्ग में हिंकू ने कहा, "सुन्दरम्, तुम्हारी रानी तो पूरी सभ्य और सुसंस्कृत है। सिर्फ एक अंग्रेजी नहीं आती।"

सुन्दरम् हँसने लगा, "अंग्रेजों के गुण की कभी उपेक्षा न की जायगी। अंग्रेजी की भाषा भी उनका एक गुण है, उनके काव्य-साहित्य के लिए नहीं, उसकी विश्व-भाषा होने की सामर्थ्य के लिए। नहीं, हिंकू, मैं तुम्हारे कथन को अतिशयोक्ति नहीं मानता।"

"राजा और प्रजा के बीच का अन्तर संसार में कम होता जा रहा है सुन्दरम्! तुम्हारी रानी को अभी इसका खटका नहीं जान पड़ा। तुम्हारी प्रजा अभी पक्की राजभक्त है।"

सुन्दरम् बोला, "बिजली और विज्ञान से इसीलिए तो हमारी रानी घबराती हैं। वे वासंथी के साथ भारत की यात्रा कर चुकी हैं। उन्होंने सभ्य संसार को देखकर भी उसे अपनाया नहीं है इसीलिए।"

कुछ अचरज में पड़कर कर्नल हिंकू ने पूछा, "किस लिए सुन्दरम्?"

"मशीन और बिजली ने मजदूरों का तमाम श्रम अपने ऊपर ले लिया और उन्हें अपने मालिकों के लिए विद्रोह करने को समय मिल गया।"—सुन्दरम् ने कहा।

हिंकू हँसने लगा। सुन्दरम् बोला, "मित्र, इतनी देर से सिगरेट नहीं पी। कुछ बाधा रानी जी का सम्मान रखने में पड़ी और कुछ—हाँ तुम्हें मालूम है, मेरी नाड़ी तुम्हारे काबू में आई है। मेरी सिगरेटें समाप्त हो गई हैं।"

"राज भण्डार से नहीं मिलतीं?"

"वहाँ का स्टाक भी समाप्त हो गया है।"

"रानी नहीं पीतीं?"

"नहीं।"

"राजकुमारी?"

"नहीं।"

"सुन्दरम्, एक बात तो बताओ।"—हिंकू ने सुन्दरम् को एक सिगरेट दी और उसे अपने लाइटर से सुलगा दिया, "राजकुमारी का विवाह हो गया?"

"नहीं।"

"कब होगा?"

"मैं नहीं जानता।"

"किस से होगा? विवाह योग्य तो हो गई है वह।"

"मैं नहीं जानता इस बारे में कुछ।"

हिंकू ने बड़े गौर से इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सुन्दरम को देखा। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और उसकी कलाई पर के स्पंदन गिनने लगा। सुन्दरम् हँसने लगा।

"मित्र, एशिया की एकता के लिए हमें उसनी भिन्न-भिन्न जातियों को विवाह के सामाजिक बंधनों में भी एक करने की परम आवश्यकता है।"

सुन्दरम् ने घबराकर अपने जापानी मित्र की ओर देखा। हिंकू ने उसका हाथ छोड़कर कहा, "सुन्दरम्, क्या तुम भी इतने रुढ़ि-ग्रस्त हो? क्यों तुम्हें कोई संशय हो?"

सुन्दरम् दुविधा में पड़ा कुछ नहीं कह सका। उसने अपने मन से प्रश्न किया, "क्यों तुझे कोई आपत्ति क्यों हो?"

हिंकू बोला, "विज्ञान ने धरती के चारों कोने समेटकर एक ही जगह रख दिए हैं। दूर-दूर बिखरी हुई जनता पास-पड़ोस में आ गई है। एशिया की सन्तान ऐसे निकट सम्पर्क में कभी नहीं आई जैसी इस युद्ध-काल में। पर्वत और सागरों के भेद ने सारे पूर्व को छिन्न-भिन्न कर रक्खा था—वह अब एक कल्पना-सी जान पड़ती है। सुन्दरम्, यदि हम अन्तर्जातीय विवाहों द्वारा एक हो गये तो हमारी तमाम संस्कृतियों का मंथन होकर एक नई संस्कृति का जन्म हो जायगा। वह मानव की कल्याणकारिणी होगी।"

सुन्दरम् ने अपने मन में सोचा—'इस कर्नल की आँखों में जरूर हमारी राजकुमारी पड़ गई है।' उसने अपनी शंका के निराकार के लिए पूछा, "हिंकू, तुम्हारा विवाह हो गया या नहीं?"

"मैं पहले देश का ऋण चुकाने के पक्ष में हूँ। इसके बाद ही गृहस्थी का धर्म।"

"तो इसका मतलब है, अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ।"

"नहीं।"

हिंकू को उस समय वासंथी की चर्चा के सम्बन्ध में ही सूझ रहा था। सुन्दरम् ने कई बार बातचीत के सिरे अन्यत्र मिला दिये थे। लेकिन हिंकू खींच-खींच कर सूत्र को फिर वासंथी पर ही केंद्रित कर दे रहा था। उसने वासंथी के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न कर डाले। सुन्दरम् उठा और उससे विदा माँगने लगा। दोनों अब जापानी कैम्प में आ गये थे।

हिंकू जबर्दस्ती कर उसे अपने कमरे में ले गया और बोला, "चाय पीकर जाओगे न!"

"नहीं, बिल्कुल इच्छा नहीं है।"

"तब कुछ और पीना होगा।"—हिंकू ने घंटी देकर कैंटीन के बैरा को बुलाकर कहा, "दो गिलासों में···।"

सुन्दरम् मित्र के अनुरोध को न टाल सका। हिंकू का आतिथ्य ग्रहण करना ही पड़ा उसे, मदिर आँखों से हिंकू ने सुन्दरम् का हाथ पकड़कर पूछा, "वासंथी के सम्बन्ध में तुम्हारे क्या विचार हैं?"

वह एक सुसंस्कृत गुण-सम्पन्न सुन्दरी है। उसे अंग्रेजी नहीं आती लेकिन मानवी भाषा जानती है।"

"तुम प्यार करते हो उसे?"

इस अजीब प्रश्न का भार सह न सका उसका हृदय उसने। काँपती हुई आवाज़ में पूछा, "तुम्हारा मतलब?"

"मतलब कुछ भी हो।"—उसने जोर से सुन्दरम् का हाथ दबा

लिया, "तुम्हें सच-सच बताना होगा

"अभी नहीं मित्र, बाद को इसका जवाब दूँगा।"

"बाद को नहीं, मैं अभी इसका उत्तर चाहता हूँ।"

"तब झूठ बोलनी पड़ेगी।"

"हमारी मित्रता अभी समाप्त हो जायगी।"

"यह क्या कहते हो? मेरे एक व्यक्तिगत प्रश्न पर तुम अपने इतने बड़े अभियान को ठहरा दोगे क्या? अगर मैंने तुम्हारे मन के अनुकूल जवाब न दिया तो क्या वह तुम्हारा एशिया की एकता का मन्त्र ध्वस्त हो जायगा?"

"अभियान अपने मार्ग पर चल चुका है, वह चलेगा ही और एशिया की एकता भी तो। मेरे प्रश्न का उत्तर दो।

"एक सिगरेट और! मैं उसके धूएँ पर चढ़कर अपने विचार का निश्चय जानना चाहता हूँ।"

हिंकू ने तुरन्त ही उसकी सिगरेट जला दी—"सिगरेटों का अखण्ड स्रोत बहा सकता हूँ तुम्हारे सामने से।"

सुन्दरम् ने कश-पर-कश खींची सिगरेट की। एकाएक वह उठ खड़ा हुआ। उसने सिगरेट फ़र्श पर डालकर उसे अपने बूट से कुचलकर कहा, "हिंकू, मैं वासंथी को प्यार नहीं करता।"

हिंकू ने तपाक से हाथ मिलाकर मित्र को विदा देते हुए कहा, "मित्र, हमारी दोस्ती अटूट और अभिन्न है।"

२३

जादू-भरी पुकार

वासंथी दिन-दिन सुन्दरम् की ओर खिंचने लगी । उस द्वीप में उसके प्रेम की पूजा के लिए केवलमात्र एक देवता सुन्दरम् ही था। राज-कर्मचारियों की आबादी में राजकुमारी के रूप-गुण की बराबरी में कोई न था। द्वीप के बाहर के किसी सम्बन्ध के लिए महारानी तैयार न थी। वासंथी के लिए सुन्दरम् की उपयुक्तता रानी को भी मंजूर थी। सुन्दरम् को इसकी साक्षी कई वार मिल चुकी थी।

लेकिन जब से उसने हिंकू के सामने अपने प्रेम की बलि दे दी थी तब से वह इस मार्ग पर लौट चुका था। द्वीप के श्रेय के लिए उसने ऐसे ही क़दम उठाने में भलाई समझी।

उस दिन आधी रात के समय जब सारा द्वीप सो रहा था। केवल ज्वार पर चढ़ा हुआ महासागर पूनों के चाँद को छूने के लिए व्यर्थ परिश्रम कर रहा था। द्वीप के बालू, उसकी खेती और झोंपड़ियों पर चाँदनी चमक रही थी । नारियल के ऊँचे पेड़ों पर हवा सनसना रही थी।

युद्ध के उमँडते हुए बादलों की चिन्ता में बड़ी देर में सुन्दरम् सोने को चला गया था । उसने रेडियो में भारत के सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का समाचार सुना और महात्मा गांधी तथा उनके तमाम प्रमुख सहकारियों की क़ैद की खबर भी उसे मिल गई थी। उसका मन जन्मभूमि की तरफ़ खिंच गया। वहाँ की जनता के ऊपर क्या बीत रही होगी ? इन्हीं विचारों में बड़ी देर तक डूबा रह गया वह । फिर उसे नींद ही नहीं आई। उसने जो भी चेष्टा की व्यर्थ गई।

अचानक उसे बोध हुआ, कोई धीरे-धीरे उसका द्वार खट-खटा

रहा था पहले उसने उसे हवा समझा फिर उसने धीमी पुकार सुनी, "सुन्दरम् ! सुन्दरम् . ' वह उठ गया । राजभवन म अन्त.पुर के निकट ही तिमंजले पर अब उसे जगह दी गई थी ।

"द्वार खोलो ।"

सुन्दरम् को आवाज़ पहचानते देर न लगी । उसने द्वार खोलकर कहा, "सुन्दरम्, सोये नहीं तुम ?"

"कैसे ? रेडियो पर के मातृभूमि के समाचारों ने बेचैन कर दिया है । माता की बड़ी आर्त पुकार समुद्र-पार से आ रही है वासंथी । नींद कैसे आवे ?"

"ओह ! यही हाल मेरा भी है सुन्दरम् ! तुम मेरा साथ न दोगे ?"

"कैसा साथ ?"—बड़े विस्मय से मन्त्री ने पूछा ।

"इस द्वीप में एक भयानक जादूगर रहता है ।"

"हाँ, मुझे मालूम है ।"

"तुमने केवल सुना-ही-सुना है । तुमने उसे देखा कहाँ है ? सुनो, वह मुझे पुकार रहा है ।"—दूर पर उँगली दिखाकर वासंथी बोली, "सुन रहे हो न ? रात को यह आवाज बहुत साफ़ सुनाई देती है । जादू-भरी पुकार !"

सुन्दरम् ने कुछ सुनने की चेष्टा की, कुछ नहीं सुना । उसने कह दिया, "मैं कुछ नहीं सुनता हूँ ।"

बड़ी निराशा से वासंथी बोली, "फिर तुम कैसे मन्त्री हो ? बाहर चलो ।"—वह उसे बाहर बरामदे में ले गई । उसने द्वीप के भीतरी भाग की ओर दिखाकर कहा, "उधर कान दो ।"

सुन्दरम् ने कानों पर हाथ रखकर कुछ देर एकाग्र हो सुना, "नहीं मुझे तो कुछ नहीं सुनाई दे रहा है ।"

तुम्हारे कान दुर्बल हैं या तुम्हें नींद का नशा चढ़ा है । कितना साफ़ वह पुकार रहा है ! वासंथी ! वासंथी ! शायद हमें वहीं तक जाना पड़ेगा तभी तुम्हें विश्वास होगा ।"

"वह क्यों तुम्हें पुकार रहा है ?"

"वह अघोर तांत्रिक है। वह मनुष्यों की बलि देता है। वह कुमारियों की बलि देता है।"

"रानी जी को यह ज्ञात नहीं है क्या ? वह उसे पकड़कर फाँसी पर क्यों नहीं लटका देतीं ?"

"वे डरती हैं उससे।"

"ऐसा भी क्या डरना ? मैं कर्नल हिंकू से कहकर कल ही को उसका इलाज करा दूँगा। रात बहुत बीत गई, इस समय सो रहो सुन्दरी !"

"कैसे नींद आवेगी ? जब प्राणों में यह काँटा गड़ा है तो ?" वासंथी ने फिर बाहर की ओर संकेत किया, "वह जादू जानता है, वह मन्त्र जानता है। सुन्दरम्, मैं उधर खिंची जा रही हूँ, मुझे बचाओ ! मैं नहीं जाना चाहती उसके पास।"—वासंथी इधर-उधर दौड़कर अपनी घबराहट जताने लगी। उसकी अजीब हालत हो गई थी।

सुन्दरम् बड़ी चिन्ता के साथ कहने लगा, "रानी जी को सूचना दूँ ?"

"नहीं, वे रोना शुरू कर देंगी।"—वासंथी राजभवन से नीचे की ओर देखने लगी। सहसा उसे कुछ याद आया। वह बोली, "सुन्दरम् जापानियों ने जो हमें वह रेशम की डोरी दे रक्खी है वह किस काम की है ?"

"वह सीढ़ी है। राजभवन में कभी कोई घटना हो जाय तो उसकी सहायता से नीचे उतर सकते हैं।"

वासंथी बोली, "यह क्या घटना नहीं है ?" वह सीढ़ी ले आई और उसने उसे राजभवन की लकड़ी से बाँध दिया।

"वासंथी ! तुम यह क्या कर रही हो ?"—सुन्दरम् ने पूछा।

"बाहर जाने के लिए मार्ग बना रही हूँ। प्रहरी न जाने देंगे। वे महारानी को जगा देंगे, यही तो सबसे बड़ी बाधा है। मैं आज इस

बात का फैसला कर लेना चाहती हूँ सिर्फ तुम ही मेरे सहायक हो, सुन्दरम् : चलो मेरे साथ।"—

"इस रात में ?"

"हाँ, इसी समय तो उसका जादू जागता है। चलो, नहीं तो मैं अकेली ही चल दूँगी।"—वह रस्सी की सीढ़ी पर लटकने लगी।

सुन्दरम् उसके आग्रह को न टाल सका। वह दौड़कर अपने सिरहाने से अपना रिवाल्वर ले आया। वासंथी बोली, "मैं समझी थी तुम डर गये।"

"नहीं, मैं चलने को तैयार हूँ। बहुत दिन से मैं भी उस तांत्रिक को देखना चाहता हूँ।"

"ठहरो, पहले मुझे उतर जाने दो।"—वासंथी उस सीढ़ी की सहायता से नीचे उतर गई और मार्ग ढूँढ़ने लग गई।

सुन्दरम् ने भी नीचे धरती पर पैर रख दिये, "किधर ?"

"शायद इधर।"—वह एक ओर को दौड़ने लगी।

सुन्दरम् उसके पीछे दौड़ता हुआ बोला, "वासंथी, ठहरो-ठहरो, तुम्हें नींद का ही नशा है, तुम एक विभ्रम में पड़ी हो। यह मार्ग द्वीप के भीतरी भाग का नहीं है।"

"चले आओ, चले आओ, सुन्दरम् ! कैसी मदभरी यह निशा है ! इस प्रफुल्ल चाँदनी में कौन मार्ग भूल सकता है !"

वासंथी उस चाँदनी में दौड़ी जा रही थी। सिर पर उसकी बिखरी रेशमी केश-राशि उसकी दिशा के विरुद्ध हवा में उड़ी जा रही थी, वैसे ही उसके काषाय परिकर का संकुचित घेर !

ऊपर से दुग्ध श्वेत चाँदनी सुधा बरसा रही थी धरती पर। सारा द्वीप निद्रा की मोहनी में पड़ा बेसुध था। गुफाओं में वनमानुष और पशु, कोटरों में पक्षी एवं फूलों में सुरभि भी तो।

वासंथी भागती जा रही थी। अब चन्द्र-किरणों में चमकते हुए सैकत-कणों पर उसके पैर धँसने लगे। उसका अनुसरण करते हुए

सुन्दरम् ने चिल्लाकर कहा, "वासंथी, तुम मार्ग भूल गईं! तुम तो यह महा समुद्र के तट पर आ गईं! तुम तो उस तांत्रिक की गुफा को चलने के लिए कहती थीं। ठहरो, ठहरो—अब कहाँ जाती हो? उधर अगाध गहराई है!"

वासंथी को फिर भी होश नहीं हुआ। वह बोली, "क्या हुआ फिर? कितनी सुन्दर ये लहरें चमक रही हैं चाँदनी में। मैं क्या तैरना नहीं जानती हूँ? तुम जहाज के कप्तान होकर कैसी बातें करते हो?" वह समुद्र में कूद गई!

सुन्दरम् ने भी पानी में कूदकर उसका हाथ पकड़ लिया। वासंथी द्रुत गति से अपना हाथ छुड़ाकर बोली, "मुझे मेरे जीवन का मोह छोड़ लेने दो सुन्दरम्!"

उसने फिर उसका हाथ पकड़ लिया, "तुम्हारा मस्तिष्क विकृत हो गया क्या? लेकिन मैं बचाने को आया हूँ तुम्हें।"

"तुम बचाओगे मुझे—मैं ऐसा विश्वास करूँ?"

"क्यों नहीं?"

"ऐसे ही जीवन भर के लिए मेरा हाथ पकड़ लो सुन्दरम्! तब मैं क्यों मरना चाहूँगी? मेरा यह संसार और वह लोक—क्यों न दोनों तुम्हारे चरणों में समर्पित हो जायँ!"

सुन्दरम् ने वासंथी को सूखे तट पर ले जाकर उसका हाथ छोड़ दिया, "वासंथी, तुम यह क्या बक रही हो? कहाँ है वह जादूगर?"

पानी में तैरने से उसके मन में चेतना लौटी। उसने उठकर सुन्दरम् का हाथ पकड़ लिया, "सारा विश्व-संसार उसके जादू से व्याप्त हो उठा। मैं ऐसी उस मोहनी में पड़ गई। थल और जल का कोई अन्तर ही समझ में नहीं आ सका। ठीक ऐसे ही जैसे उस स्वप्न और इस जागृति के बीच के सम्बन्ध को पहचान ही नहीं सकी। तुमने फिर उस जादूगर की याद दिला दी। मैं इस महासिन्धु से नहीं डरी। फिर भय लगने लगा मुझे।" वासंथी ने सुन्दरम् की गर्दन में दोनों हाथ पहनाकर सिर

उसकी छाती पर रख दिया।

उसकी वह दशा देखकर सुन्दरम् को बड़ी दया आ गई। वह क्या करे और क्या न करे—कुछ निश्चय नहीं कर सका। अचानक वह सिसक-सिसककर रोने लगी। सामने लहरों में थिरकती हुई अथाह जलराशि, ऊपर नक्षत्रों से जड़ा, चन्द्रिका से उद्भासित नील-धवल आकाश, पीछे निद्राविभूत द्वीप की धरती, जल और थल की संधि पर खड़े थे वे दोनों—सुन्दरम् एक नवयुवक, उसकी छाती पर सिर रक्खे एक सुन्दरी बाला।

"मुझे बचाओ सुन्दरम् !"

सुन्दरम् उसे और आगे भूमि पर ले गया। दोनों सूखी बालू पर एक शिला के सहारे बैठ गये। सुन्दरम् ने कहा, "तुम्हें बचा लाया हूँ।"

"ऐसा ही विश्वास है मुझे।"—वासंथी ने अपना निराधार मस्तक सुन्दरम् के कंधे पर रख दिया, "सुन्दरम्, मैं न-जाने तुम्हें कब से प्यार कर रही हूँ। आज उस प्रेम की प्रतिध्वनि माँगती हूँ मैं तुम से !"

सुन्दरम् घबराकर बोला, "क्या इसी लिए इतना धोखा देकर तुम मुझे इस सूने तट पर ले आईं ?"

"उत्तर दो इस सागर और वसुन्धरा के सामने ! कोटि-कोटि नक्षत्रों से भरे आकाश के सामने मुझ से कह दो, तुम मुझे प्यार करते हो !"

सुन्दरम् ने उसे अपने स्पर्श से अलग कर दिया। वह सामने क्षितिज पर एक काले धब्बे को देखकर अनुमान लगाने लगा—'कदाचित् कोई जहाज है !'

"क्यों सुन्दरम् कहते क्यों नहीं ? किस दुविधा में पड़ गये ? सारी सृष्टि प्यार करने के ही निमित्त बनाई गई है। प्यार ही उसके मूल की धरती है, प्यार ही उसके विकास का प्रकाश और प्यार ही उसकी भूख और प्यास है। फिर क्यों तुम चिन्ता में पड़ गये। कहते क्यों नहीं ? सृष्टि का सारा विस्तार उसे प्रतिध्वनित कर घनीभूत कर देगा।"—वासंथी ने सुन्दरम् का हाथ अपने हाथ में ले लिया और उसकी प्रत्येक उँगली अपनी उँगली में।

सुन्दरम् का ध्यान क्षितिज पर की उस कालिमा ने आकृष्ट कर रक्खा था, वह बढ़ती ही जा रही थी। उसने अपना हाथ छुड़ा लिया।

"क्यों क्या प्यार करना पाप है ?"—वासंथी ने पूछा।

"नहीं, प्रेम के आकर्षण पर ही धरती और आकाश ठहरे हुए हैं।"

"फिर किस अंधकार में पड़ गये ?"

सुन्दरम् ने उसे क्षितिज का संकेत कर कहा, "काली-काली क्या है ? नावें ही तो हैं। इस आधी रात में पहचानो तो सही।"

"कोई भी हों ! मुझे तुमसे मतलब है सिर्फ।"

"जापानी जान पड़ते हैं ये ! कर्नल हिंकू का दल !" सुन्दरम् ने अपने मन में सोचा, "अगर इनमें हिंकू भी हुआ तो ? कुसमय में वह राजकुमारी के साथ मुझे देखकर क्या कहेगा ? मैंने उसे कुछ वचन दिए हैं।"—वह उठकर खड़ा हो गया।

वासंथी भी उसका अनुकरण कर उठ गई।

"चलो राजभवन को भाग चलें।"—वह दौड़ने लगा।

वासंथी भी उसके पीछे दौड़ती हुई बोली, "तुम प्यार करते हो न मुझे ?"

"सृष्टि के एक प्राणी को जैसा दूसरे को प्यार करना चाहिए ऐसे ही।"

"नहीं सुन्दरम् ! इतने से सन्तोष क्यों हो ?"

सुन्दरम् ने दौड़ते हुए कहा, "ये जापानियों की नावें हैं।"

"ये हमारे मित्र होकर आये हैं। तुम क्यों डरते हो इनसे ?"

"ऐसी शून्य रात में एक युवक और एक कुमारी को अकेले देखकर इनके मन में कई संशय उठ जावेंगे।"

"तुम बड़े दुर्बल हो सुन्दरम् !"

इसी समय बड़ा तेज सर्चलाइट की तरह एक शक्तिशाली प्रकाश स्तंभ नाव पर से उनकी ओर बढ़ा। दोनों का मुंह उस तरफ खिंच गया। आँखों में चकाचौंध उत्पन्न हो गई तो दोनों ने अपना मुंह

फिरा लिया, वासंथी बोली, "कहाँ से आ रहे हैं ये ?"

"नौका-विहार से या शिकार से।"—सुन्दरम् तेजी से राजभवन की ओर दौड़ा।

नाव वाले पीछे से प्रकाश फेंक रहे थे। वासंथी के मन में डर पैदा हो गया और वह भी चाल बढ़ाकर सुन्दरम् के साथ हो ली।

रात में रानी की भी नींद खुल गई। उसने हाथ बढ़ाकर देखा, राजकुमारी की शय्या सूनी थी। वह चिंतित होकर उठ गई। भीतर की ओर के कमरे में दासियाँ सो रही थीं। उस तरफ़ का द्वार बन्द था। बरामदे का द्वार खुला था। रानी मन्त्री को भी उसके कमरे में न पाकर कुछ चिंतित हुई पर कुछ धीरज भी हुआ। फिर बरामदे से बँधी नीचे की लटकती रस्सी देखी उसने। कुछ और सामने को दृष्टि गई तो उन दोनों को राजभवन की ओर आते हुए देख लिया उसने।

कुछ ओट में चली गई वह। सुन्दरम् रस्सी के सहारे जैसे ही ऊपर चढ़ा तो रानी ने प्रश्न किया, "वासंथी कहाँ है ?"

वासंथी भी रस्सी पर चढ़कर आ गई थी, बोली, "आ पहुँची।"

महारानी ने कहा, "अगर ऐसे ही निशा-विहार के लिए जाना था तो मुझ से पूछ लिया होता। मेरा मन कितनी ही चिन्ताओं में पड़कर जर्जरित हो गया। अब भविष्य में ऐसा न होने पावे।"

सुन्दरम् घबराया हुआ था। न-जाने रानी इस घटना पर कैसी दृष्टि डाले। इतनी सरलता से उसे ले लेने पर उसने सोचा—'वासंथी के इस मुक्त प्रेम में माता की मौन सम्मति है।' वह बड़ी बेचैनी से अपने कमरे में चला गया।

वासंथी महारानी के साथ-साथ चली। महारानी ने कहा, "युद्ध के ऐसे भयानक दिन हैं। ऐसी रात में बाहर निकलने का विचार कैसे हुआ ?"

"मैं किसी दूसरे की आकांक्षा से खिंचती-सी चली गई। सम्भव है उसी तान्त्रिक की। असहाय होकर मैंने सुन्दरम् को जगा लिया। महारानी

अब तो उस जादूगर का आतंक खतम कर देना चाहिए।"

महारानी ने कहा, "देखा जायगा अब इस समय सो रहो।"

सुन्दरम् की समझ में नहीं आई वह घटना। वह सोचने लगा—'अजीब रहस्यमय है यह नारी। उसके मस्तिष्क में बड़ी उथल-पुथल हो गई। किसी प्रकार फिर उसे नींद नहीं आई।

प्रभात हुआ। सूर्योदय के अनन्तर सारा द्वीप एक हवाई जहाज की आवाज से प्रतिध्वनित हो उठा। देखते-देखते वह जापानी पड़ाव की ओर उतरने लगा। सबको निश्चय हो गया, वह जापानियों का ही है। सबको धीरज हुआ। उसकी खोज-खबर के लिए उसी समय सुन्दरम् को वहाँ जाना पड़ गया।

उसके पैर उधर जाते हुए न-जाने क्यों भारी पड़ने लगे। पर जब वह हिंकू के निकट पहुँचा तो उसकी भावना में उसने कुछ भी अन्तर नहीं पाया, हिंकू के सिपाहियों ने मिनटों में ही जहाज को खाली कर दिया था।

बड़े प्रेम से हिंकू ने उसकी ओर सिगरेट केस बढ़ाकर कहा, "लो मित्र, बड़ी बढ़िया ताजी सिगरेटें आई हैं।"

सुन्दरम् ने सिगरेट के लिए हाथ बढ़ाया लेकिन उसके मन में अधिक उत्साह नहीं था।

"क्यों क्या बात है? रात बड़ी देर तक जागते रहे क्या? आँखों में सुर्खी है और मुँह में जमुहाइयाँ?

"हाँ कर्नल, मेरी मातृभूमि आग के बीच से गुजर रही है। शासकों का दमन-चक्र चल रहा होगा उस पर। नींद कैसे आती?"

"बलिदान ही स्वतन्त्रता का मूल्य चुका सकता है। इसमें चिंतित होने की क्या बात है?"—हिंकू ने सुन्दरम् के कंधे पर हाथ रखा और उसे अपने कमरे की ओर ले जाने लगा।

सुन्दरम् हवाई जहाज से उतरे हुए सामान पर नजर डालने लगा हिंकू ने उसका हाथ खींच लिया, "चलो, यही खाने-पीने की चीजे

आई हैं और कुछ माइनें।"

"और माइनें फिर, किस लिए?"

"हिंद महासागर में बिछाने के लिए।"

"क्यों?"

"शत्रुओं का मार्ग रोक देने को।"

"मित्रों का मार्ग?"

"मित्र हम हैं। हमें ज्ञात है मार्ग।"

"माइनों से द्वीपवासियों को तो कोई क्षति न पहुँचेगी?"

"क्यों पहुँचेगी? मीलों दूर बिछाई गई हैं। चलो व्यर्थ की झंझटों में क्यों विचार को उलझाते हो?"

"जहाज़ कब लौट जायगा? महारानी जानना चाहती हैं?"

"जापान के पूर्वी द्वीपों, बर्मा और मलाया प्रायद्वीप में इतनी बड़ी विजय देखकर भी तुम्हारी रानी को संतोष नहीं होता। मित्र के रूप में जापान को देखने में अब भी संकोच कर रही हैं वे! ताज्जुब है! जहाज़ आज ही लौट जायगा। अगर उन्हें कुछ मँगाना है तो मँगा दिया जायगा।"

"कोई और लोग भी आए हैं इसमें?"

"यहाँ उतरकर रहने के लिए अभी कोई नहीं आया।"

"हिकू सुन्दरम् को अपने कमरे में ले गया। उसने उसकी पीठ पर एक प्रेम की धप जमाकर कहा, "मातृभूमि की बड़ी भक्ति हो गई है तुम्हें! कहो तो तुम्हें इस हवाई जहाज़ में भारत पहुँचा दूँ, जिससे तुम उसके कठिन समय में अपनी सेवाएँ समर्पित कर सको।"

हँसकर सुन्दरम् बोला, "इसके तट पर पहुँचने से पहले ही टुकड़े-टुकड़े, उड़ा दिए जावेंगे।"

"और भी कोई कारण था तुम्हारे जागरण का?"

"हाँ, था।"—साहस के साथ सुन्दरम् ने कहा।

"क्या? सुनूँ भी तो।"—कौतूहल के साथ हिकू ने प्रश्न किया।

"चाँदनी से चमकती हुई रात और लहरों से निनादित महासमुद्र की कल्पना करो मित्र ! सूना एकान्त ! सारी सृष्टि निद्रा के मोह में पड़ी हुई !"—सुन्दरम् ने इतनी भूमिका बनाकर हिंकू की भावना को देखा।

"जब तक इस दृश्य में कोई पात्र न हो तब तक क्या···?"

"पात्र मैं, और मेरी गोद में इस द्वीप की सबसे सुन्दरी बाला।"

"नाम क्या है उसका ?"—बिना किसी भावातिरेक के हिंकू ने पूछा।"

"वासंथी !"—सुन्दरम ने बिना कुछ अपने पास रखकर कह दिया।

"तुम किसी स्वप्न का वर्णन कर रहे हो सुन्दरम् , लेकिन तुम कह रहे थे, तुम्हें रात-भर नींद ही नहीं आई।"

"नहीं, स्वप्न नहीं, बिल्कुल तृतीय परिमाण के जगत की घटना।"—सुन्दरम् ने इतना कह देने पर अनुभव किया, मानो उसके मस्तक की सारी पीड़ा, अंग का सारा खुमार उतर गया।

"तब इस द्वीप में सबसे भाग्यशाली तुम हो सुन्दरम् !"—हिंकू ने सिगरेट के सिरे पर की राख तोड़ते हुए कहा।

"नहीं, शायद भयानक कठिनाइयों के दलदल में फँसा हुआ एक प्राणी।"

"मैं कैसे समझ लूँ ? एक सुन्दरी नवयौवना को तुम उसके घर और अभिभावकों से दूर एकान्त में बहका ले गये। सुन्दरम् ! तुम्हारी जबान में कोई जादू है, भले ही तुम्हारी प्रतिज्ञा के शब्दों में सच्चाई न हो।"

"मित्र, वही बहका ले गई मुझे। मैं अपनी प्रतिज्ञा के लिए अब भी अटल हूँ।

"मैं नहीं मान सकता तुम्हारी यह बात।"—हिंकू का मुख तमतम उठा। धीरे-धीरे उस पर रोब का प्रभाव दिखाई देने लगा। वह चुप हो गया।

बड़ी शान्ति के साथ सुन्दरम् बोला, "जब समय आवेगा तो तुम्हें माननी ही पड़ेंगी यह बातें। झूठ ठहर नहीं सकता, सच्चाई छिप नहीं सकती।"

"कैसे मान लूँ मैं, वह तुम्हें बहका ले गई?"

"इस द्वीप में एक तान्त्रिक रहता है। उसने इस सारे राज-कुटुम्ब को आतंकित कर रखा है। राजा और पूर्व मन्त्री की हत्या में भी उसका हाथ बताया जाता है। मैं नहीं जानता, यह उसी के आतंक से रात को जाग पड़ी या इसने कोई भयानक स्वप्न देखा। इसने मुझसे गिड़गिड़ा कर सहायता की प्रार्थना की।"

"और तुम एक नारी के साथ चल पड़े सूनी रात में एकान्त की खोज में। मुझे क्या शिकायत हो सकती है? नारी के हृदय पर बल-पूर्वक छेनी चलाकर कोई नाम अंकित नहीं कर सकता। तुम बधाई के पात्र हो। एक सुन्दरी के हृदय पर अधिकार कर सकने की मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।

"हे भगवान् सत्य को प्रकट कर!"—सुन्दरम् ने बिना किसी आग्रह और बनावट के साथ कहा।

"लेकिन तुम्हारी सच्चाई का मैं कायल हूँ। हम लोग रात को माइनें बिछाने गये थे। लौटते समय हमने तुम्हें देखा, दूरबीन से देखा, हमने तुम्हारे ऊपर प्रकाश डालकर अपने शक मिटा लिये थे, लेकिन सुन्दरम्, तुम नहीं मिटा सके मेरे संशय।"

"अगर ऐसा है तो तुमने सत्य को देख लिया है, तुम्हारे मन में संशय नहीं रहेगा। तुमने क्या देखा?"

"तुम आगे-आगे भाग रहे थे और वासंथी तुम्हारे पीछे-पीछे।"

"क्या इससे यह स्पष्ट नहीं है, मैं उसको नहीं चाहता।"

"लेकिन वह चाहती है तुम्हें?"

"इसी दलदल में फँसा हूँ।"

२४

पुरानी बीमारी

अन्त में सुन्दरम् ने अपनी कठिनाई के बीच में से मार्ग निकाल लिया। दूसरे दिन प्रभात-समय वह शय्या से उठा ही नहीं। वह रोज सुबह की चाय रानी और वासंथी के साथ पीता था। जब उसे आने में देर हो गई तो रानी ने एक दासी को भेजा।

दासी ने कमरे में जाकर देखा, सुन्दरम् आँखें बन्द किये सोया था। जोर-जोर से उसकी साँस चल रही थी। दासी की पुकार का जब उसने कोई जवाब नहीं दिया, उसने झकझोरकर उठाया उसे। उसका भी कोई असर नहीं हुआ। दासी दौड़ती हुई रानी के पास जा पहुँची।

रानी और वासंथी वहाँ गईं। सुन्दरम् की दशा देखकर चिंतित हो गईं। राजवैद्य को बुलवाया गया। उन्होंने एक चम्मच में कुछ घोलकर उसे पिलाना चाहा तो उसका मुँह खुला ही नहीं। दोनों जबड़े मिलकर एक हो गये थे। किसी तरह कुछ दवा डाल दी गई।

वैद्य जी बोले, "यह तो कोई भूत-बाधा जान पड़ती है।"

मछुवों का सरदार जुफू बुलाया गया। छोटी-मोटी भूत-बाधा को दूर करने में वह उस्ताद था। उसने एक बर्तन आग का मँगवाया और एक घड़ा समुद्र का जल। वह कुछ पढ़कर सुन्दरम् के सिर पर घुमाने लगा और उस आग में डालता गया। एक अजीब तरह की गंध का धुआँ निकलने लगा। रानी और वासंथी को वह असह्य हो उठा, वे वहाँ से चली गईं बाहर।

सात-आठ बार ऐसा ही करने पर जुफू ने पानी की धार देनी शुरू की सुन्दरम् के सिर पर। वह जागकर चिल्लाया, "ओह! कैसी

बदबू भर गई मेरे कमरे में !" वह भागकर बाहर चला गया।

वासंथी ने उसे पकड़कर कहा, "सुन्दरम्, क्या हो गया था तुम्हें ?"

रानी ने पूछा, "अब कैसे हो ?"

वासंथी बोली, "तुम कई रातों से लगातार जाग ही रहे हो, उसी की खुश्की है।"

"नहीं, यह मेरी एक बड़ी पुरानी बीमारी है। आज कई दिन बाद उसका दौरा हुआ है।"

रानी ने वासंथी को चुपके से खींचकर अलग कर दिया, "तुमने इसका इलाज नहीं कराया ?"

जुफ़ू बोला, "यह समुद्री भूत है, समुद्र में डूबकर किसी आत्महत्या करनेवाले का। एक-दो वक्त झाड़ दूँगा, भाग जायगा।"

सुन्दरम् हँसा, "हाँ जुफ़ू।"

"डाक्टरों ने क्या बीमारी बताई है ?"

"दिल और दिमाग की। बस अब मैं ठीक हो गया हूँ।"

"चलो चाय पीने।"—वासंथी बोली।

"नहीं, कुछ देर आराम कर लो। चाय यहीं भिजवा दी जायगी।" —रानी ने कहा।

सुन्दरम् आराम करने चला गया। मार्ग में रानी ने वासंथी से कहा, "बड़ी भयानक बीमारी है मन्त्री को। वासंथी, तुम्हें उससे मेल-जोल नहीं बढ़ाना चाहिए। अगर कहीं तुम्हें भी हो गई तो बड़ी कठिनाई हो जायगी।"

"लेकिन अंतर्जातीय संसर्ग बढ़ाने के लिए मैं जो अंग्रेज़ी उनसे सीख रही हूँ उसका क्या होगा ?"

"उसे जारी रखना, पर सावधानी से।"

चाय पीने के बाद जब वासंथी अपने अंग्रेज़ी के अध्ययन के लिए सुन्दरम् के पास पहुँची तो उसने अपने और वासंथी के बीच की दूरी को कुछ बढ़ा हुआ पाया। सुन्दरम् को अपने प्रयास में सफल हो

जाने की खुशी हो गई। उसने कहा, "वासंथी, कोई भाषा पुस्तक के माध्यम से इतनी जल्दी नहीं आती जितना उस समाज में आने-जाने से।"

वासंथी कहने लगी, "वह समाज यहाँ कहाँ मिलेगा? इसका अर्थ है मैं इस लालसा को छोड़ दूँ?"

"मैं बताता हूँ, मेरे साथ कर्नल हिंकू के पास चलो। हम दोनों अंग्रेज़ी ही में बातें करते हैं। वहाँ तुम्हें इस सुयोग के सिवा, अन्तर्जातीय राजनीति के भी दाँव-पेच देखने-सुनने को मिलेंगे। तुम द्वीप की भावी रानी हो और द्वीप को संसार के नक्शों में अपनी जगह बनानी है। महारानी से इस बात की आज्ञा लो।"

महारानी की आज्ञा लेकर वासंथी उस समय सुन्दरम् के साथ जापानियों के कैम्प में पहुँची। उसे देखकर सुन्दरम् के लिए हिंकू की भावना सर्वथा शुद्ध हो गई। उसने बड़ी प्रसन्नता से राजकुमारी का स्वागत किया और कहा, "मैं राजकुमारी की क्या सेवा करूँ?"

वासंथी ने कहा, "मैं विज्ञान के चमत्कारों में बड़ी दिलचस्पी रखती हूँ, खासकर बिजली और बेतार की तारबर्की में।"

हिंकू ने वायरलेस-रूम में ले जाकर सब-कुछ दिखाया और कहा, "युद्ध के समाप्त होते ही हम आपके राजभवन और आपके द्वीप को तमाम वैज्ञानिक प्रगतियों से परिपूर्ण कर देंगे।"

वासंथी इसके बाद बोली, "मैं माइन देखना चाहती हूँ।"

हिंकू ने माइन दिखाकर कहा, "ये मैगनेट माइन हैं। एक खास दूरी पर जहाज़ के आ जाने पर ये जहाज़ पर अपने-आप खिंच जाती हैं और उसको टुकड़े-टुकड़ों में विभाजित कर देती हैं। इनको देखने में ये साधारण-सी ही जान पड़ती हैं, पर प्रभाव बड़ा भयानक है इनका!"

"इनका प्रभाव देखने की भी मेरी इच्छा है। रात-दिन लड़ाई के भयानक दृश्यों के अनुमान लगाती हूँ। कर्नल, तुम कभी तोप और

बमों की अग्नि-वर्षा के बीच से भी गुजरे हो ?"

"वह तो अपना व्यवसाय ही है।"

"मैं भी देखने को लालायित हूँ। कर्णद्वीप के एक टुकड़े में हवाई जहाज़ों से बम-वर्षा देख पाती तो यह जन्म कृतार्थ हो जाता।"

हिंकू ने पूछा, "कर्णद्वीप के किस टुकड़े में ?"

सुन्दरम् ने मन में समझा—'कुल्लूटक स्वामी का आश्रम होगा।'

वासंथी ने कहलवाया, "किसी भी टुकड़े में सही, नहीं तो बम-वर्षा और कैसे देख पाऊँगी ?"

"तुम वीर नारी हो। मृत्यु की उपेक्षा से ही मनुष्य वीर बनता है। जीवन का मोह कायर का अवगुण है। हर समय मृत्यु हमारे ऊपर गिद्ध-सी मँडला रही है और प्रत्येक क़दम मौत के फणों पर रखते हुए चले जा रहे हैं हम। यही वीर की भावना है, यही उसका दर्प है।"

सुन्दरम् ने हिंकू की इस गर्जना का अब वासंथी को अनुवाद सुनाया तो उसने कहा, "यदि बिना माध्यम के मैं इस सैनिक की वाणी को हृदयंगम कर सकती तो बड़ा आनन्द आता।"

सुन्दरम् अपने मन में उदास होकर सोचने लगा—'मैंने अपने हाथ से हिंकू को अपनी निधि सौंप दी।' उसने वासंथी से कहा, "वासंथी, तुम्हें मेरी मध्यस्थता खलने लग गई ?"

"नहीं, अभी जब तक मुझे अंग्रेज़ी नहीं आ जाती…"

लेकिन सुन्दरम् ने जान-बूझकर ही इस तीर पर अपनी छाती खोल दी थी। वह हँस पड़ा।

वासंथी ने पुछवाया, "हिंकू का सबसे बड़ा सामरिक अनुभव कहाँ का है ?"

हिंकू हँस पड़ा, "प्राणों को हथेली में लेकर युद्ध की अग्नि में जूझ पड़नेवाले सैनिक के सभी अनुभव बढ़े-चढ़े हैं। तब मृत्यु उसे देखकर भाग जाती है। राजकुमारी, यह सब क्या एक छोटी-सी भेंट में इस तरह दुभाषिए के माध्यम से कही जाने की बात है ? अगर यह

सुनने की साध है तो मेरे साथ सीधे बात करो।"

"मैं अंग्रेजी सीख रही हूँ। इसीलिए तुम दोनों की बातें सुनने यहाँ आई हूँ।"

"माध्यम को साथ लाकर परवशता रहेगी। साहस कर अकेली ही आओगी तो जल्दी सीख लोगी।"

वासंथी सोच में पड़ गई और हिंकू हँसकर बोला, "आज बड़ी खुशखबरी आई है। बर्मा होती हुई मनीपुर से हमारी सेना ने हिन्दुस्तान में द्वार तोड़ दिया है। वह इंफाल पहुँच गई है।"

सुन्दरम् के मुख पर चिन्ता के भाव झलक पड़े, "क्यों मित्र, किस मतलब से?"

"साम्राज्य की स्थापना के लिए नहीं, स्वतन्त्रता के लिए छटपटाने वाले भारतीयों की मदद के लिए। उन्हें आतताइयों के पंजे से छुड़ाने के लिए।"

"लेकिन क्यों वे तुम्हारी मदद लेने लगे?"—सुन्दरम् ने कहा।

"एक खुशखबरी और भी है। भारत के बाहर भारतीय सेना ने हथियार डाल दिये हैं। कुछ तो युद्ध-बन्दियों में परिगणित हो गये है और अधिकांश 'भारतीय राष्ट्र-सेना' में संगठित हो गये हैं।"

इस खुशी के उपलक्ष्य में हिंकू ने उन दोनों को खूब भारी चाय-पार्टी दी। चाय पीते हुए हिंकू ने सुन्दरम् से पूछा, "मित्र, तुम इस अनुपम सुन्दरी को प्यार नहीं कर सके? क्या सचमुच तुम्हारा हृदय नारी के प्रेम के लिए मरुस्थल है?"

सुन्दरम् उस प्रश्न का उत्तर सोचने लगा तो वासंथी ने उससे पूछा, "क्यों सुन्दरम्, कर्नल ने क्या कहा?"

"यह मेरे दिल और दिमाग़ की बीमारी के लिए पूछते हैं। वह कितने समय से है, तथा मैंने क्या-क्या इलाज उसका कराया है?"

वासंथी उस व्यक्तिगत प्रश्न पर अधिक दिलचस्पी न ले सकी। सुन्दरम् ने हिंकू से कहा, "मुझे एक दौरे की बड़ी जीर्ण बीमारी है,

डॉक्टरों ने मुझे शादी न करने की सख्त ताकीद की है ”

‘विवाह न करते न सही . प्रेम तो दूसरी चीज़ है .”

“मुझे दिल की बीमारी है।”

“तुम दिमाग़ से भी प्रेम कर सकते हो, बिना दिल दिये ही।”

सुन्दरम् कुछ सोचने लगा।

हिंकू बोला, “सुन्दरम्, प्रेम ही तो वह विद्युत् की धारा है, जिसकी शक्ति से मनुष्य अपने कर्तव्य को पूर्णता देता है। इसलिए कहता हूँ, अगर तुम्हारे हृदय में प्रेम ही न होगा तो तुम क्या करोगे?”

सुन्दरम् को कहना पड़ा, “लेकिन तुमने···”

“मैंने क्या तुमसे यह कहा कि तुम किसी से प्रेम न करो।”

वासंथी पूछने लगी, “सुन्दरम्, तुम क्या बातें कर रहे हो?”

“उसी के इलाज के बारे में।”

“सुन्दरम्, कुल्लूटक स्वामी तुम्हारा इलाज कर सकता है। वह दवाएँ भी जानता है और मन्त्र भी। हिंकू से और कोई दूसरी बातें करो।”—वासंथी ने कहा।

सुन्दरम् बोला, “कर्नल, प्रेम अवश्यमेव एक शक्ति है लेकिन त्याग उससे भी बड़ी शक्ति है।”

“लेकिन त्याग में पछतावा नहीं होना चाहिए।”

“नहीं, कोई पछतावा नहीं है।”

हिंकू ने सुन्दरम् को शाबाशी दी। चाय पी चुके थे वे लोग। वासंथी ऊब उठी और राजभवन को लौट जाने की जल्दी मचाने लगी।

हिंकू बहुत दूर तक उन्हें पहुँचाने गया। यद्यपि वासंथी से वह सीधे कोई बात नहीं कर सका था, पर उसे इस बात का विश्वास हो गया था कि वह जापानियों के कैम्प से बहुत प्रभावित हुई है।

हिंकू जब वासंथी से विदा हुआ तो उसने उसे एक अजीब भावना से देखा। वह अनेक युद्धों का सिपाही एक नारी की दृष्टि की चोट खा पराजित होकर लौटा।

२५

उसी की प्रतिध्वनि

रुकू स्वामी जी की गुफा में आकर राजधानी के मोह में पड़ गई। वहाँ अक्सर वहाँ के लोग आते-जाते रहते थे। स्वामी जी ने तो उससे कुछ नहीं कहा था। उसके हृदय में ही एक संकोच पैदा हो जाता और वह गुफा के भीतर चली जाती। वहाँ से छिपकर वह उनको देखती तथा उनकी बातें सुनती थी।

उनके चले जाने पर वह स्वामी जी से पूछती, "ये कौन लोग हैं?"

"ये राजधानी के लोग हैं।" स्वामी जी हाथ के संकेत से उसे बताते और रुकू बड़ी उत्कण्ठा-भरी दृष्टि से उधर देखती। स्वामी जी कहते, "उधर क्या देखती हो?"

रुकू पूछती, "ये कैसे आप से बातें करते हैं, मेरी समझ ही में नहीं आता।"

"इनकी दूसरी ही बोली है।"

"और ये कमर में पत्ते क्यों पहने रहते हैं, इन्हें उलझन नहीं होती उनसे?"

कुल्लूटक स्वामी हँसने लगते, "और अगर तुम ऐसे ही बिना कमर में पत्ते लपेटे उनके नगर में चली जाओगी तो, वे चारों ओर से पत्थर फेंककर तुम्हारी जान निकाल देंगे।"

रुकू दोनों गालों पर हाथ रखकर चिल्लाई, "ओह! ये बड़े निर्दयी लोग हैं। मैं कभी न जाऊँगी इनकी राजधानी में।"

लेकिन कभी-कभी वह इसके विपरीत दूसरा ही विचार लेकर स्वामी जी से कहती, "आप कभी नहीं जाते राजधानी में?"

"नहीं"

"क्यों ?"

"वे लोग समझते हैं मैंने उनके राजा को मरवा दिया। इसलिए वे कहीं मुझे भी न मार डालें। मैं इस डर से नहीं जाता।"

"मैं सोच रही थी, मैं आपके साथ वहाँ जाती। अकेली नहीं जा सकती ?"

"वे अपने राजा के खून का बदला अगर तुम से लेने लगे तो ?"

रुकू बोली, "लेकिन सुलक ने मुझ से कहा था—उनके राजा को उसी ने मारा था।"

"पर तुम कैसे यह उन लोगों को बताओगी। वे कुछ नहीं समझेंगे और तुम्हें नंगी देखकर पत्थरों से मार डालेंगे। लेकिन सुलक फिर नहीं आया अपनी नाक की दवा माँगने के लिए। रुकू, तुम्हें उससे भी खबरदार रहना होगा।"

"क्यों ?"

"वह जरूर तुम से बदला लेने के अवसर ढूँढ़ रहा होगा। तुमने उसकी नाक काटकर उसकी शक्ल बिगाड़ दी। अब कोई लड़की उसके साथ शादी करने को तैयार भी न होगी। तुम्हें सावधान रहना चाहिए, वह किसी दिन धोखे से आकर तुम्हारे ऊपर प्रहार कर जायगा।"

"आप मुझे डराते हैं स्वामी जी !"

"डराने की क्या बात है ? मैं नहीं डरूँगी।"—वह दौड़कर गुफा के भीतर गई और एक पुराना धनुष और तीरों से भरा हुआ एक तरकस निकाल लाई।

कुल्लूटक बोला, "उसका सामना करोगी ? लेकिन यह धनुष बहुत पुराना है।"

"मैं इसकी डोरी बदलकर इसे फिर नया बना लूँगी।"

"सुलक का निशाना अचूक है।"

"मैं भी अभ्यास से अपना निशाना वैसा ही बना सकूँगी।

शिकार मारकर लाने की भी तो यहाँ आवश्यकता पड़ गई है।"

"दूर मत जाना।"

"राजधानी की तरफ़ न जाऊँगी।"

"वहाँ तो जाना ही नहीं है। इस नदी के पार मैदान के किसी भाग में जाने से प्राणों में कीमत चुकानी पड़ेगी और पहाड़ों पर भी नहीं।"

"इधर भी नहीं उधर भी नहीं, तो मैं फिर अपना तीर चलाने का अभ्यास कहाँ करूँगी?"

"गुफ़ा के आस-पास काफ़ी जगह है। मेरी दृष्टि जहाँ तक पहुँचती है, उसके भीतर जब तक तुम रहोगी, तब तक तुम्हारे लिए कोई खटका नहीं है। उसके बाद मैं नहीं जानता।"

"यही होगा गुरुदेव!"

कुल्लूटक अपने मन में सोचने लगा—'लेकिन कब तक? अब यह आयु पर आ गई है। जीवन और यौवन की उद्दाम लालसाएँ इसको उड़ा-उड़ा ले जावेंगी, मैं कहाँ तक इसे रोक सकूँगा?'

सुन्दरम् की कूट चाल चल पड़ी। उसकी बीमारी के दौरे से फिर उसके और वासंथी के बीच की दूरी बढ़ गई। अब वह पहले की भाँति बार-बार तरह-तरह के बहाने बनाकर उसके पास नहीं आती थी। जब कभी आती तो हिंकू के ही उद्देश्य से आती थी। या तो उसके पास चलने की बात होती या उसके बीच के भाषा के परदे को तोड़ देने के लिए अंग्रेजी का अध्ययन होता।

वासंथी हिंकू की ओर आकृष्ट हो गई। जब वह महारानी के सामने उसके कौशल, उसके शौर्य की प्रशंसा करती तो वह कहती, "ये नाटे कद के भौंडी नाक और पतली आँखों वाले पीले मनुष्य…भयानक

"उस सुडौल गौर-वर्ण से ही क्या लेना है अगर उसके भीतर रोगों का घर है तो…"

महारानी कुछ सहमकर बोली, "लेकिन मेरा मतलब है, वह

बिल्कुल ही विजाति का है। हमारा-उसका धर्म एक नहीं, संस्कृति में समानता नहीं और भाषा तो बिल्कुल ही भिन्न है।"

"महारानी जी, एशिया की एकता के लिए तुम्हारे ये विचार बड़े घातक हैं। हमारा धर्म कैसे एक नहीं है? भारत में उत्पन्न हुए बुद्धदेव की वाणी से ही तो उनकी धर्मप्राणता है, उसी भारत के प्रति अपने वंश, जाति, वर्ण, धर्म और भाषा के ऋणी हैं हम। संस्कृति, सबसे बड़ी मानवता की है—दया-दाक्षिण्य, सत्य और अहिंसा उसकी मूल पहचान है। महारानी जी, मैं उनकी भावना तक पहुँच जाने के लिए अंग्रेजी का अध्ययन कर रही हूँ।"

महारानी ने फिर वासंथी से कुछ नहीं कहा। वह नियमित रूप से सुन्दरम् के पास अंग्रेजी के अध्ययन के लिए जाती। उसने थोड़े ही समय में बहुत उन्नति कर ली थी।

सुन्दरम् अपने मन में सोचता—'अंग्रेजी में थोड़ी-बहुत प्रगति प्राप्त कर लेने पर शायद फिर उसे वासंथी की छाया भी देखने को न मिलेगी।'

जितनी देर वासंथी उसके पास अंग्रेजी के अध्ययन के लिए बैठी रहती, उतनी देर वह उसे एक दूसरे की चीज समझकर अपने मन को समझाता। उसके चले जाने पर फिर उसका वह मुख उसे चारों ओर दिखाई देने लगता। वह सोचता—'कर्नल हिंकू ने यह मुझ से कभी नहीं कहा था कि मैं वासंथी से प्यार न करूँ। उसने तो सिर्फ यही पूछा था कि क्या मैं उसे प्यार करता हूँ। मैंने अपने ही हाथ से अपने प्रेम की प्रतिमा विसर्जित कर दी। किसी का क्या दोष?' उसने एक दीर्घ साँस छोड़ी।

वासंथी अपने अध्ययन के लिए उसके सामने बैठी हुई थी। उस दिन भी उसके ध्यान में अपनी सत्ता भूलकर न जाने क्या-क्या देख रहा था वह? देख रहा था—सागर में स्नान के लिए साथ-साथ चले जाते थे वे दोनों। एक-दूसरे पर जल के छींटे फेंककर क्रीड़ा करते थे।

कभी मछली मारने जाते, कभी आखेट के लिए जाते और कभी फल-संग्रह करते।

सभी बातों के ऊपर उस रात की वह घटना तो बड़ी साफ़ होकर उसके मस्तिष्क में पड़ गई थी। 'तुम्हें कब से प्यार कर रही हूँ। आज उस प्रेम की प्रतिध्वनि माँगती हूँ मैं तुम से।'—उसे वासंथी के ये शब्द फिर सुनाई दिये। स्मृति की दूरी पर के धूसरित ध्वनि में नहीं, साफ सामने ही, मानो काल सुन्दरम् की स्वीकृति के लिए प्रतीक्षा करने लगा था।

'कोटि-कोटि नक्षत्रों से भरे आकाश के सामने मुझसे कह दो, तुम मुझे प्यार करते हो।'—फिर वही उसी के शब्द ! बार-बार वह उन्हे सुनता रहता था। मानो उसके हृदय पर वह ध्वनि की लीक बड़ी गहराई में खुद गई थी, जैसे ग्रामोफ़ोन के रेकार्ड पर किसी गीत की रेखा या फ़िल्म के पार्श्व पर अंकित ध्वनि का मार्ग। समय-असमय में वे बज उठते थे। सुन्दरम् का उस पर कोई अधिकार रह नहीं गया था।

'क्यों नहीं मैंने उससे कह दिया—वासंथी, मैं भी तुम से प्रेम करता हूँ, मैं सारी सृष्टि को उसका साक्षी बनाता हूँ।'—सुन्दरम् फिर इस दिवास्वप्न में डूब रहा था। उसे ध्यान ही नहीं रहा—वासंथी उसके सामने कुरसी पर बैठी अंग्रेज़ी का सबक याद कर रही है।

वासंथी ने उसका स्वप्न तोड़ते हुए कहा, "मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।"

सुन्दरम् चौंककर अपनी कुरसी छोड़कर खड़ा हो गया। उसने अपने मन में सोचा—'यह फिर उसी की आवृत्ति होने लगी क्या ? सुन्दरम् इस बार बहुत सोचकर अपना निश्चय प्रकट कर ताकि फिर तुझे पछताना न पड़े।' उसने बड़े विस्मय से वासंथी की तरफ़ देखा। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा था।

वासंथी बोली, "मैं तुम्हें प्यार करती हूँ—इसका अंग्रेज़ी अनुवाद क्या हुआ ?"

सुन्दरम् आकाश से शरविद्ध पक्षी की भाँति फिर अपनी कुरसी पर गिर पड़ा—"हाँ वासंथी !" उसके मुँह से ठंडी साँस निकल पड़ी। उसने अपना सिर कुरसी की पीठ पर रख दिया, उसने आँखें बन्द कर लीं।

वासंथी घबराकर बोली, "सुन्दरम !" उसने उठकर उसके सिर पर हाथ रखा।

सुन्दरम् ने आँखें खोलकर बड़े प्यार से कहा, "वासंथी, कुछ देर रहने दो यह हाथ मेरे माथे पर। वह उत्तप्त है न ?"

"शायद।" उसने हाथ हटा लिया, "मैं समझी फिर उसी दिन का सा दौरा हो गया।

"हाँ वासंथी, उसी दौरे के कारण मैं लुट गया। तुमने ठीक ही किया जो अपना हाथ हटा लिया। वह बड़ा प्रिय और शान्त जान पड़ता था, पर कब तक ?"

"तुम यह कैसी बातें कर रहे हो ? मेरी समझ में तुम्हें अपना इलाज करा लेना चाहिए जल्दी ही।"

"हाँ, मैं भी समझ रहा हूँ, मुझे कुल्लूटक तांत्रिक को द्वीप की राजनीति के सम्बन्ध में भी देखना जरूरी है।"

"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ—इसका अंग्रेजी अनुवाद ?"

वासंथी, बुरा न मानना, फिर-फिर यह उसी वाक्य की आवृत्ति हो रही है।"

"किस वाक्य की ?"—मानो वासंथी सब कुछ भूल गई थी।

"वह मदिर रात्रि, वह चाँदनी, वह सागर-तट।"

"मुझे कुछ याद नहीं पड़ता सुन्दरम् !"

"उस रात के मेरे एक ही वाक्य में आज मेरा दूसरा ही जीवन होता। तुम कहती हो तुम्हें कुछ याद ही नहीं, और मैं समझता हूँ, मैंने तुम्हें द्वीप के कल्याण के लिए विसर्जित कर दिया। मैंने अपने हृदय पर एक गहरी चोट खा ली और तुम्हें याद भी नहीं है ?

आश्चर्य !"

"हाँ सुन्दरम्, मुझे याद आ गई। मैं नींद के नशे में थी।"

"वही चोट!"

"क्या तभी से तुम्हें यह दौरा शुरू हो गया। जुफू कहता था, तुम्हारी यह पुरानी प्रेत-बाधा है।"

"होगी।"

"आज मेरे अध्ययन में बड़ी बाधा पड़ गई। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, बताओ न इसका समानार्थी अंग्रेज़ी वाक्य।"

"इस प्रतिध्वनि ही से मुझे सन्तुष्ट हो जाने दो। जी चाहता है, मैं तुम्हें इसकी अंग्रेज़ी न बताऊँ।"

"न बताओ।" अनखाकर वासंथी बोली, "तो क्या तुम समझते हो इससे मेरा प्यार समाप्त हो जायगा, या मैं उसे अपने देवता को समर्पित न कर सकूँगी।"

सुन्दरम् ने सोचा, "एक दिन वह देवता मैं था, मैंने अपने हाथ से उस मूर्ति को खंडित कर दिया।" वह बोला, "बताऊँगा वासंथी, जी चाहता है उसी वाक्य को आजन्म जपते हुए अपने पाप का प्रायश्चित कर डालूँगा।"

"बताते क्यों नहीं फिर?"

"फिर एक बार कहो।"

"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।"

"आइ लव यू। आइ लव यू।"

"फिर कहो अभी मेरे मन में गढ़ा नहीं।"

"आइ लव यू।"

"आइ···"

"आइ लव···"

"आइ लव···"

"आइ लव यू।"

"आइ लव यू !" वासंथी विजयिनी होकर अपनी कुरसी पर से उठ खड़ी हो गई—"आइ लव यू ! वाइ ! वाइ !"

वह चली गई और सुन्दरम् आँखों में आँसू भरकर उसे देखता ही रह गया—"शायद अब बहुत कम मुझे उसके दर्शन प्राप्त होंगे। इस वाक्य के द्वारा मैंने उसे कर्नल हिंकू के हृदय में प्रवेश करने की चाबी दे दी । इसी एक वाक्य पर मैं इसके हृदय की चाबी पा सकता था ।' वह बहुत उदास होकर अपनी कुरसी पर बैठा रह गया।

रुकू ने रस्सियाँ बट लीं । उसने चमड़े और रस्सी की मदद से उस पुराने धनुष की मरम्मत कर डाली । वह स्वामी जी की गुफा के आस-पास अपने तीर चलाने का अभ्यास करने लगी।

स्वामी जी का आश्रम ऊँची पहाड़ी पर था। पहाड़ी पर राजधानी केवल एक ही मार्ग से सम्बद्ध थी। वह मार्ग उनकी गुफा से साफ दिखाई देता था। पहाड़ का वही भाग ऐसा था, जो संधि के नियमों का अपवाद-रूप था। वहाँ द्वीप के राज-वंश, राज-कर्मचारी या प्रजा में से सभी जा सकते थे। गुरुवार को जाने का प्रायः नियम था, लेकिन संकट या और किसी आवश्यक काम से सप्ताह के बाकी दिनों का भी उपयोग हो सकता था।

रात्रि सिर्फ वनवासियों के लिए सुरक्षित थी। रात्रि को किसी दिन भी बिना स्वामी जी की अनुमति के कोई भी नहीं जा सकता था। गुरुवार को छोड़कर और दिन रुकू स्वच्छन्द होकर अपना अभ्यास करती थी। चाँदनी रातों में बड़ी देर तक उसका अभ्यास जारी रहता था।

कुल्लूटक स्वामी ने सोचा—'चलो ठीक है, किसी काम में इसका मन उलझा रहेगा तो ठीक ही होगा।'

धीरे-धीरे जड़ लक्ष्यों पर उसका अभ्यास हो गया । स्वामी जी की कुटी के आस-पास के तमाम पेड़ों के तने उसने छेद डाले। स्वामी जी बोले, "रुकू, क्या तुम मेरे आश्रम के तमाम पेड़ों को सुखा दोगी ?"

रुकू बोली, "नहीं गुरुदेव, अब मैंने अपने संधान की दिशा बदल

दी है। देखिए।"

उसने एक नारियल के पेड़ पर तीर छोड़ा। उसका तीर उस पेड़ पर अटक गया और नारियल भी भूमि पर नहीं गिरा।

स्वामी जी हँस पड़े। रुकू उस पेड़ पर चढ़ गई और नारियल भूमि पर गिराकर अपना तीर निकाल लाई। फिर उसके मन में साहस नहीं हुआ दूसरा तीर छोड़ने का। स्वामी जी ने कहा, "क्यों रुकू, फिर अभ्यास करो, नारियल जरूर गिर पड़ेगा भूमि पर।"

"तीर अटक गया तो फिर मुझे पेड़ पर चढ़ना पड़ेगा।"

"कई बार ऐसा भी होगा, पर अभ्यास तमाम कठिनाइयों और बाधाओं पर अंत में विजय पा लेता है।"

"थोड़ी देर थकान मिटा लेती हूँ, और धनुष की डोरी भी ढीली पड़ गई है, इसे कस लेती हूँ।"—वह पास ही एक घनी झाड़ी के कुञ्ज में बैठ गई।

उस दिन वासंथी के ध्यान में निमग्न सुन्दरम् राजधानी के कार्यों से फुरसत पाकर एकान्त की शरण में चला। कुल्लूटक स्वामी के आश्रम का कुछ पता था उसे। वैसा ही मानचित्र उसकी आँखों के सामने आया तो वह उस चढ़ाई पर चढ़ने लगा। साथ ही यह खटका भी उसे हो गया कि कहीं वह निषिद्ध भूमि पर तो नहीं जा रहा है। उसने अपने कमर पर की पेटी में स्थित रिवाल्वर की मूँठ पर हाथ जमाया और साहस के साथ आगे को बढ़ता गया।

उसकी आँखों में वासंथी का मुख समाया हुआ था। वह चारों ओर प्रकृति के भाँति-भाँति के विस्तार में उसी को समाया हुआ देखता चला आ रहा था। इस शून्य एकान्त में ही उसे यह तन्मयता प्राप्त हुई और वासंथी से भिन्न वासंथी को इतना स्पष्ट यहीं देखने का अवसर उसे मिला।

धरती की छाया में, पेड़ों की हरियाली और फूलों में, आकाश के बादलों के रूप में, नदी और झरनों के प्रतिबिम्बों में, पहाड़ की गहराइयों

में वह वासंथी की छवि देखता हुआ चला जा रहा था। जब कोई पक्षी कूज उठता, या कोई पहाड़ी नदी की ध्वनि उसे सुनाई पड़ती तो वह उनमें वासंथी की आवाज़ सुनता—'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।'

निराशा की साँस लेकर वह कहता—'अब क्या होगा ? नहीं, इस बार अब धोखा न खाऊँगा।'

वह सारी शून्य प्रकृति को संबोधित कर बोला, "मैं भी तुम्हें प्यार करता हूँ।" प्रकृति के जादू में वह इतना खो गया था कि उसका विचार शब्द बनकर बाहर आ गया—'मैं भी तुम्हें प्यार करता हूँ।'

पास की एक झाड़ी में पत्तों की खड़खड़ाहट सुनी उसने। केवल उसने उसका मुख-ही-मुख देखा और शेष अंग उस विवसना का हरी पत्तियों में छिप गया था। बिल्कुल पत्थर की प्रतिमा बनकर सुन्दरम् उस मुख को देखता ही रह गया। बिल्कुल वासंथी का सा मुख ! क्षण-भर के लिए उसे यही विश्वास हो गया, वह वासंथी ही है। वह फिर उसको प्यार करने के लिए पश्चात्ताप करने लगा। वह भी उसे देखती रह गई।

सुन्दरम् सोचने लगा—'शिला-पाषाण होकर यहीं जमा रह जाता तो क्या बुरा था ?'

इसी समय ऊपर पहाड़ पर से एक आवाज़ आई—"रुकू !"

उस सुन्दरी ने अपना मुख फिराकर उधर देखा जहाँ से आवाज़ आई थी।

फिर कोई कुछ बोला, जिसका सुन्दरम् एक अक्षर भी न समझ सका और वह सुन्दरी बिना उसका कोई उत्तर दिए तेज़ी से भाग गई। पेड़ों की ओट से सुन्दरम् न उस सुन्दरी को ही देख सका कि वह कहाँ गई और न उस आवाज़ देने वाले का ही पता पा सका। कुछ देर तक वहीं खड़ा रह गया सुन्दरम् ! फिर आगे को बढ़ गया।

थोड़ी देर बाद वह स्वामी जी की गुफा में पहुँच गया। स्वामीजी नंग-धड़ंग एक पेड़ के तने के सहारे बैठे हुए थे। सुन्दरम् ने जाकर

उन्हें प्रणाम किया।

"कौन है रे तू? यहाँ क्यों आया है?"

"महाराज, मैं आपकी सेवा में आपके दर्शनों को आया हूँ।"

"क्या संकट पड़ा है तेरे सिर पर, जो तू गुरुवार को छोड़कर आज आया?"

"महाराज! संकट बहुत बड़ा पड़ा है। मैं बीमार हूँ।"

"झूठ बोलता है, तू मेरी परीक्षा के लिए आया है। क्या बीमारी है? कौन है तू?"

"महाराज! मैं इस द्वीप की रानी का मन्त्री हूँ। मुझे दिल की बीमारी है।"—सुन्दरम् ने कहा, "लोगों ने आपकी सेवा में जाने की राय दी है।"

"दिल की बीमारी है, तू नौजवान है। तेरी शादी हो गई?"

"नहीं महाराज!"

कुल्लूटक स्वामी हँसने लगा। सुन्दरम् ने अन्धकार में उसकी गुफा में फिर वही मुख देखा, मानों चारों ओर से काले बादलों को हटाकर चन्द्रमा-सा चमकने लगा। सुन्दरम् की आँखें उधर खिंच गईं। वह मन में सोचने लगा—'बिल्कुल वही है। वासंथी की इसे प्रतिध्वनि कहूँ या प्रतिबिम्ब?'

कुल्लूटक स्वामी सुन्दरम् को उधर देखता हुआ देखकर बोला, "वहाँ क्या रक्खा है? शादी क्यों नहीं कर लेता? रानी के एक राजकुमारी तो है। कर ले उसी से। मंत्री तो है ही, फिर इस द्वीप का राजा भी हो जायगा।

"नहीं महाराज!"—सुन्दरम् ने फिर गुफा की ओर देखकर नज़र हटा ली।

"क्यों नहीं? तेरी रानी मुझसे घृणा करती है, क्योंकि मैं नंगा रहता हूँ। वह मुझे बदमाश समझती है। जब तक राजा था मैं राजभवन में जाता था, पर अब कोई नहीं बुलाता मुझे। अगर कभी मेरी

रानी से भेंट हो गई तो मैं तेरी सिफ़ारिश कर दूँगा। क्यों ठीक है न ?"

"नहीं स्वामी जी !"—सुन्दरम् ने फिर उस रूपसी को देखा, वह वहीं पर अटल थी।

"फिर और कोई इलाज नहीं है तेरी बीमारी का। हाँ, ये जो बड़ी-बड़ी चिड़ियाँ उतरने लगी हैं तेरी रानी के द्वीप में, ये किसी को जिंदा भी रहने देंगी या नहीं ?"

कुछ देर बाद सुन्दरम् ने समझकर कहा, "गुरुदेव, वे जापानी हवाई जहाज़ हैं। वे सारे एशिया को एक करने के लिए यहाँ आए हैं।"

"सारा एशिया एक हो जायगा ? वह क्या नमक और पानी है, जो घुलकर एक हो जायगा ? वह क्या बालू और पानी है जब तक तूफान रहता है, एक हो जाता है। तूफ़ान के स्थिर हो जाने पर फिर तू-तू—मैं-मैं ! लेकिन मुँह मेरी तरफ़ कर तू उधर क्या देख रहा है।"

"कुछ नहीं, महाराज !" सुन्दरम् ने उनके पैरों पर सर रख दिया, "महाराज, मैं आपकी शरण हूँ।"

"किसने कह दिया ? तेरे दिल की बीमारी की दवा मेरे पास है ?"

"राजकुमारी ने।"

"तब जान पड़ता है वह तुझे प्यार नहीं करती। क्या तू उसे प्यार करता है ?

"नहीं महाराज !"

"जा फिर कोई और जगह देख, अगर वहाँ कोई नहीं है तो हवाई जहाज़ से मँगा ले। लेकिन यहाँ दवा के लिए न आना।"—स्वामी जी आँख बन्द कर ध्यान करने लगे।

सुन्दरम् ने फिर गुफा में देखा, वह सुन्दरी फिर उसी तरह उस पर आँख गड़ाए खड़ी थी। केवल उसका मुख ही गुफा की एक शिला पर दिखाई दे रहा था। स्वामी जी ने अचानक आँख खोल दी और फिर सुन्दरम् को पकड़कर कहा, "कह रहा हूँ, उधर मत देख ! वह मेरी लड़की है। बड़ी भोली-भाली है। वह तुम्हारी सभ्यता को नहीं जानती

है। अगर तूने कहीं उससे प्रेम कर लिया तो तेरी सारी ज़िन्दगी धोखे में पड़ जायगी। अभी परसाल उसने सुलक की नाक चबा ली थी। अगर कहीं तेरे ऊपर भी वैसी ही बीत गई तो मुश्किल हो जायगी। और मन्त्री की नौकरी भी। नकटे को फिर कोई मन्त्री नहीं बनावेगा।

सुन्दरम् ने फिर उधर नहीं देखा।

"इसलिए तू चुपचाप चला जा और कभी यहाँ न आना।"

"महाराज! आपके दर्शनों को···"

"हाँ, हाँ, मैं तेरा मतलब समझता हूँ। सुलक अपना अपमान अभी तक नहीं भूला है, वह फिर यहाँ के चक्कर लगाने लगा है। रुक्‌ अभी उससे भयभीत होकर भाग आई है। उसके तीर बड़े पैने और ज़हर के बुझे हुए हैं। साँप का ज़हर चढ़ते ज़रा देर लगती है। पर उसके तीर लगते ही प्राण हर लेते हैं। रानी से पूछना, राजा की क्या दशा हुई थी?"

"महाराज, आप आज्ञा दें तो मैं आपके शत्रु को अभी समाप्त कर दूँ।"—सुन्दरम् ने अपनी कमर से पिस्तौल निकालकर दिखाई।

"जा भाई जा, कहना मान ले मेरा, अगर तुझे यहाँ आना ही है तो गुरुवार को आना। जा, इस समय चला जा। वह अभी यहीं किसी शिला या पेड़ की ओट में होगा। वह तुझे देख रहा होगा, लेकिन तू जब उसे देख ही नहीं सकेगा तो गोली किस पर चलावेगा।"—कुल्लूटक ने उसे उठाकर कहा।

सुन्दरम् ने उन्हें प्रणाम किया और जाने लगा। उसने फिर गुफा के प्रवेश पर देखा, वहाँ कोई न था।

कुल्लूटक बोला, "जा, तू सीधा उतर जा इस मार्ग में। कह रहा हूँ तुझ से खटका है। जा, मैं देखता रहूँगा तुझे। जा जल्दी कर।"

सुन्दरम् उस उतराई पर चला गया। उसने फिर पीछे की तरफ़ देखा, स्वामी जी की उस पर एकटक दृष्टि जमी हुई थी। वह और नीचे उतर गया, उसने मज़बूती से रिवाल्वर अपने हाथ में पकड़ रक्खा था।

२६

कृष्णाभिसारिका

कई दिन बीत गये। सुन्दरम् उस स्वामी की गुफा में जिस रूप को देख आया था उसने वासंथी की जगह ले ली। वह सोचने लगा, "कैसे इतनी सानुरूपता हो गई? मानो एक ही हाथ और आदर्श पर बनाई गई दोनों प्रतिमाएँ? क्या उसी के लिए प्रकृति ने मुझ से वासंथी के त्याग की प्रेरणा दी या उस त्याग का ही यह फल मिला मुझे?"

"रुकू!"—वह एक पुकार जो वन में प्रतिध्वनित हुई थी उस दिन, जिस आवाज को सुनकर उस वन-देवी ने अपना मुख फिरा लिया था। सुन्दरम् को यह पूरा विश्वास हो गया वही उसका नाम था। "रुकू! रुकू!" वह ध्वनि उसके मानस में बार-बार ध्वनित होने लगी। उसका रूप उसकी समस्त कल्पना के ऊपर छा गया।

वह फिर दूसरे दिन भी गुरुदेव के आश्रम में जाने के लिए बेचैन हो गया था, लेकिन स्वामी जी के निषेध और उस प्रतिहिंसक सुलक के भय से उधर उसके पैर बढ़े नहीं। उसने अपने पूर्व दिन की यात्रा और उस सुन्दरी के दर्शन की बात सबसे छिपाकर रखी। फिर कई दिन तक वह घनीभूत युद्ध के वातावरण के कारण समय नहीं निकाल सका और गुरुवार की प्रतीक्षा करने लगा।

फिर एक दिन आधी रात को वासंथी को वही विक्षेप जाग उठा। वह कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात थी। वह बिल्कुल निर्भय होकर उसी जापानियों की दी हुई रेशम की सीढ़ी की सभ्यता से अपने भवन के बाहर कूद पड़ी। तमाम प्रहरियों की आँख बचाती हुई चल दी।

कहाँ को? कहने को कहती थी वह कुल्लूटक स्वामी अपने मन्त्र

के बल से उसे खींच लेता है लेकिन इस बार वह जापानियों के कैम्प की तरफ़ बढ़ी।

अकेली ? हाँ, साथ में और कोई नहीं; केवल 'आइ लव यू !' यही अंग्रेजी अनुवाद का एक वाक्य। बार-बार की आवृत्ति से यह उसके अधरों पर सजीव हो उठा था। इसी के प्रकाश में वह चली गई।

कैम्प के पिछले हिस्से से उसने प्रवेश किया। काँटों के तार में सावधानी से अपने अंग और वस्त्रों को बचाती हुई उसने बाहर के प्रहरियों की आँखों में धूल डाल दी। बारूद के गोदाम के पहरेदार की भी पीठ होते ही वह हिंकू के कमरे की ओर चली गई।

"सुन्दरम् ने कहीं मुझे धोखे में तो नहीं डाल दिया। मैं अपनी अंग्रेजी की शिक्षा की परीक्षा दूँगी आज। कर्नल हिंकू इस अँधेरी रात में मुझे अपने कैम्प और अपने हृदय के इतने सन्निकट पाकर ज़रूर आश्चर्य में डूब जावेंगे। जिस तरह मैं तमाम प्रहरियों का जाल तोड़, उनके प्रबन्ध का उपहास कर उनके पास पहुँच गई, ऐसे ही क्या मैं तमाम भाषा के प्रतिबन्धों को तोड़कर अपना हृदय उनके समीप न रख दूँगी।"—वासंथी ने हिंकू के द्वार पर पहुँचकर धीरे-धीरे अपनी अँगूठी के नग से उसे बजाया।

हिंकू युद्ध के नकशे देखने में व्यस्त था। उसका ध्यान द्वार पर की 'खट-खट' पर गया। वह उसे समझने की चेष्टा करने लगा। इतने में बाहर से आवाज़ आई—'हिंकू ! हिंकू !'

ऐं! इतने इकहरे व्यक्तिगत नाम से पुकारने की हिम्मत किसे हुई—इस भेद को जानने के लिए हिंकू ने द्वार खोला। बाहर बालू के पृष्ठ पर प्रतिफलित वासंथी के अंग की छायामई रेखाओं पर उसने अपने मानस में नाचनेवाली मूर्त्ति का अभ्यास पाया। वह पुलक में भर गया। क्या कहे उससे ? शत-शत भावनाएँ उसके मन में उदित हो गईं, लेकिन भाषा के अवरुद्ध द्वार पर वे सब-की-सब खड़ी रह गईं।

इतने ही में मंद्र स्वरों में वासंथी ने कहा, "हिंकू, आइ लव यू।"

उसका उद्देश्य पूरा हो गया सबसे छिपाकर यही कहने के लिए तो ऐसे भयानक अंधकार को चीरती हुई वह चली आई थी । उसने पहले ही लौट जाने के मार्ग को देख लिया था।

हिंकू कोई दूसरा ही स्वप्न देखने लगा था। वासंथी बिजली की चाल से ऊपर से कूदकर न जाने कहाँ को चली गई। एक क्षण उस अप्रत्याशित घटना के लिए देकर हिंकू भी नीचे कूद गया। इतने ही में न-जाने वह कृष्णाभिसारिका कहाँ को चल दी।

"वासंथी ! वासंथी !"—इधर-उधर पुकारता हुआ हिंकू भी उसके पीछे-पीछे दौड़ा। लेकिन उस छायामई का कोई पता नहीं मिला।

कर्नल को इस प्रकार एक अज्ञात वस्तु के पीछे दौड़ते देखकर कैम्प के सभी प्रहरी भागते हुए आ पहुँचे सभी दिशाओं से और पूछने लगे, "कौन ? कहाँ ? किधर ?"

"कहीं नहीं।"—हिंकू ने हँसकर कहा, "खाली एक वहम हो गया। शायद कोई हवा थी या कोई छाया।"

एक सिपाही बोला, "हजूर, कोई भूत-प्रेत होगा।"

"नहीं, भूत-प्रेत का क्या काम इस गोली-बारुद के ढेर में !" उसने आज्ञा दी. "सैनिको, ड्यूटी पर लौट जाओ।" वह भी अपने कमरे में चला गया ।

लौटते हुए एक सिपाही ने कहा, "भूत के पीछे भागने की मूर्खता में कर्नल ने खूब छिपाया।"

दूसरा बोला, "नहीं जी, मैं तो समझता हूँ, कर्नल रात-भर लड़ाई के नक़्शों को सोचता है। हेडफ़ोन सिर से बाँधकर सोता है, उसी में कोई आवाज़ आई होगी ।"

तीसरे ने कहा, "बहुत ज़्यादे पीने लग गया है ये आजकल।"

चौथे की बारी आई, "सब कह चुके हो न तुम अपनी-अपनी। हो तुम सब-के-सब बुद्धू ही ! अरे कर्नल एक नारी के फेर में पड़ गया है। मैंने उसे इधर आते हुए देख लिया था। शायद कुछ नाराज़ होकर

भाग गई। जाते हुए नहीं देखा भाई।"

× × ×

वासंथी जब राजभवन में वापस आई तो उसने सुन्दरम् के कक्ष में प्रकाश देखा। वह सीधे दबे पैर उधर ही चली गई। उसने छिपकर सुना।

रानी सुन्दरम् से कह रही थी, "लेकिन मन्त्री, तुम्हें ज्ञात होना चाहिए वासंथी कहाँ गई?"

"नहीं, महारानी जी, अब उनकी कल्पना को मेरा कुछ भी भरोसा नहीं है?"

"क्यों? मैंने समय-असमय उसे तुम्हारे पास अंग्रेजी के अध्ययन के लिए आते देखा है। फिर कहाँ चली गई वह? ऐसी अँधेरी रात में अकेली ही निकल जाने की बुरी बात हो गई उसके।"

"मैं समझता हूँ, यह कोई मानसिक विकार है।"

"बहुत समय से वह नींद में चौंक-चौंककर कहती थी, उसे कोई बुला रहा है दूर कहीं से। मुझे इस तांत्रिक के जादू का शक था। सुन्दरम्, देखती हूँ यह हिंकू उससे भी बड़ा जादूगर है। ये धीरे-धीरे मेरा द्वीप तो अधिकार में ला ही चुके हैं; जान पड़ता है, यह हिंकू मेरी लड़की को भी मुझ से बिछुड़ा ले जायगा। मन्त्री, जाओ देखो, वह वहीं गई है। उसे बुला लाओ चुपचाप, किसी को कानों-कान खबर न हो।"

"कौन बिछुड़ा ले जायगा?"—वासंथी कमरे में चली आई।

"तू ने सुन लिया! मैं कुछ चोरी से कह रही थी क्या? वह हिंकू और कौन?"

"नहीं, उसे तुम क्यों चोर समझती हो? मैं एशिया के एकीकरण के लिए स्वयं अपने को विसर्जित कर रही हूँ।"

"तू अपनी कुल-परम्परा का सत्यानाश कर देगी?"

"कुल से राष्ट्रीयता बड़ी है। राष्ट्र के कल्याण के लिए कुल की अन्ध रूढ़ियाँ टूट जावेंगी।"

महारानी ने सुन्दरम् की ओर देखकर कहा, "क्यों सुन्दरम् ?"

"हाँ महारानी जी, युद्ध जहाँ दो दलों के बीच में एक विभाजक रेखा , वहाँ बहुतों की एकता का साधन है। उसकी तपी हुई हाँडी में तरह-तरह की सामाजिकता मिलकर एक दूसरा ही रूप धारण कर लेती । अनेक धार्मिक मतभेद टूट जाते हैं और झूठे अहंकार नष्ट हो जाते हैं।"

महारानी सुन्दरम् को भी विपक्ष में पाकर चुप रह गई और वासंथी को लेकर अपने कक्ष में चली गई।

बड़ी प्रतीक्षा के बाद गुरुवार आ पहुँचा। सुन्दरम् उस दिन बिना किसी से कुछ कहे-सुने लुकता-छिपता कुल्लूटक की गुफा की तरफ चल दिया। एक कपड़े में कुछ फल-फूल बाँधकर उसने अपने साथ रख लिये।

उसी समय रुकू भी कंधे पर तीरों से भरा हुआ तरकस बाँधकर गुफा से निकली और कुल्लूटक स्वामी के पास आकर खड़ी हो गई।

"क्या है ?"—स्वामी जी ने मुक्त हास के साथ उससे पूछा।

उसने गुफा से अन्यत्र दिशा की ओर संकेत किया।

"नहीं, मुलक छिपा-छिपा फिरता है झाड़ियों में।"

रुकू ने अपना धनुष तानकर कहा, "मेरा निशाना भी तो अब व्यर्थ नहीं जाता।"

"हाँ, मुझे मालूम है, तेरा निशाना भी अब व्यर्थ नहीं जाता। तूने उस दिन राजधानी के एक जीव को बड़ी कठिनाई में डाल दिया। वह फिर तो नहीं आया ?"

रुकू हँसकर बोली, "कौन ?"

"मुझे ठीक तो मालूम देता है वह । उसे देखकर मेरी चिन्ताएँ चली गई हैं। लेकिन तुम एक-दूसरे के लिए गूँगे हो जाओगे।"

रुकू कहने लगी, "मैं आखेट के लिए जाती हूँ, आज खाने-पीने को कुछ नहीं है।"

"कहाँ जाती है, आज गुरुवार है। राजधानी से बहुत से लोग

आयेंगे आज। क्या वे सब खाली हाथ ही आवेंगे। लेकिन उनको लड़ाई से ही फुरसत नहीं है। सुना है, जापानियों ने चारों ओर से समुद्र में आग बिछा दी है।"

"खाली बैठे यहाँ मन नहीं लगता।"

"क्यों लगेगा? जा फिर, नवीन कामनाओं से भरी हुई नवयौवना, तुझे कौन रोक सकता है? लेकिन आखेट सावधानी से करना।"

रुकू धनुष-बाण लेकर चली गई। वह आश्रम के निकट ही एक शिलाखण्ड पर बैठकर राजधानी से आनेवाले मार्ग पर दृष्टि डालकर बैठ गई। सहसा उसकी दृष्टि नीचे नदी पर पहुँची। वहाँ उसने उसी नवयुवक को देखा, जिसे वह आज कई दिन से ढूँढ़ रही थी। बड़ा धीरज हुआ उसे देखकर।

"क्या कर रहा है यह नदी के तट पर?"—वह ध्यानपूर्वक देखने लगी।

सुन्दरम् घर ही से छद्मवेशी बनकर जाने का निश्चय कर चुका था ताकि कोई प्रजा का मनुष्य मिल जाने पर उसे पहचान न सके। नदी के पार मार्ग छोड़कर जंगल में दूसरों की भूमि में छिपते हुए जाने की उसकी हिम्मत न हुई।

उसने अपने कपड़े खोलकर एक पेड़ की जड़ में छिपा दिये और अपनी कमर में पत्तों को एक रस्सी में गूँथकर बाँध लिया।

सुन्दरम् का कपड़ों से आच्छादित वेश रुकू को ज़रा भी पसन्द नहीं था। जब वह कमर में पत्ते लपेटकर अर्द्धनग्न हुआ तो कुछ संतोष हुआ उसे। फल-फूलों की चादर में सुन्दरम् एक नकली दाढ़ी भी रख लाया था। उसने उसे पहनकर जल में अपनी परछाईं देखी और वह अपनी सफलता पर खुश हो गया।

ऊपर से रुकू ने उसकी यह हरकत देखी और वह खिलखिलाकर हँसने लगी, "देखूँ, अब यह क्या करता है?"

सुन्दरम् धीरे-धीरे उस पहाड़ी पर चढ़ने लगा, रुकू उसको कहीं

पकड़ लेने का अवसर देखती रही वह जहाँ पर बैठी थी वहाँ से उठ गई , उसने कंधे पर का तरकस उतारकर वहाँ पर रख दिया था, वह सुन्दरम् के विचार में ऐसी उलझ गई थी कि सिर्फ धनुष ही उठाकर चल पड़ी।

अचानक झाड़ियों की सरसराहट और भूमि पर के पत्तों की खड़-खड़ाहट सुनकर उसकी दृष्टि पीछे को हो गई तो उसने देखा—सुलक शर-संधान किये उसके पीछे चला आ रहा है । उसने घबराकर अपने कंधे पर हाथ दिया तो तरकस गायब !

वह चिल्लाकर भागी सुन्दरम् की ओर। सुन्दरम् अपनी कल्पना में चला जा रहा था। अचानक उसने देखा एक वस्त्रविहीन नारी उसकी ओर दौड़ी चली आ रही है। यह विचित्र दृश्य देखकर वह उसकी राह से हटने लगा। लेकिन वह उसी के उद्देश्य से आ रही थी। उसने सुन्दरम को पकड़कर कुछ कहा, जो उसकी समझ में जरा भी न आया।

फिर उसने संकेत से दूरी पर किसी को दिखाया और अपने धनुष की डोरी खींची। सुन्दरम् समझ गया, वह अपने शत्रु को दिखा रही है। उसने सावधान होकर अपनी पिस्तौल गठरी में से निकाल ली। वह चौकन्ना होकर शत्रु को देखने लगा।

अचानक धनुष सँभाले सुलक दिखाई पड़ा। वह बड़ी जोर से न जाने क्या चिल्लाया। रुकू भी सुन्दरम् के कंधे पर हाथ रखकर जोर से चिल्लाई और उससे गोली छोड़ने का संकेत करने लगी । सुन्दरम् ने उसके तीर के छूटने से पहले ही रिवाल्वर दाग दिया । गोली की आवाज़ पर ही वह भूमि पर गिर पड़ा। रुकू अट्टहास कर नाच उठी।

वह सुन्दरम् को उधर खींचकर ले जाने लगी, लेकिन वह दूसरे की भूमि पर नहीं गया । रुकू वहाँ अकेली ही चली गई और सुलक को मरा पाकर बहुत खुश हो तुरन्त ही लौट आई।

वह दौड़कर सुन्दरम् के पास जा पहुँची। वह उस निर्लज्जा को

देखकर कुछ कह न सका। जो-कुछ कहा उसने वह उसका एक अक्षर भी न समझा।

उसने अपने मन में कहा—'बिल्कुल दूसरी वासंथी कहाँ से आ गई यह! लेकिन निर्लज्जता की साकार प्रतिमा! उस दिन मैंने केवल इसका मुख-ही-मुख देखा था। मुझे क्या मालूम था, यह ऐसी है!'

रुकू उसका हाथ पकड़कर उसे खींच ले जाने लगी। सुन्दरम् के विरोध करने पर उसने आश्रम की ओर संकेत किया। अब तो उस छद्मवेश में गुरुदेव के निकट जाने में उसे बड़ा संकोच होने लगा। वहाँ उसकी यह पोल खुल जाने पर जरूर गुरुदेव उसे बुरा-भला कहेंगे। लेकिन भीतर से जैसे कोई बोल रहा था—'जाता क्यों नहीं?'

सुन्दरम् ने रुकू से कुछ देर ठहरने का संकेत किया। उसने उसके हाथ के धनुष को छीन लिया। वह न मानी तो उसने अपने रिवाल्वर का सेफ्टी दबाकर उसे बदले में दे दिया। वह खुश हो गई।

सुन्दरम् ने धनुष में बँधी हुई डोरी खोल दी और उसमें पत्तों को गूँथकर उसने उसकी कमर में पहनाकर कहा, "अपर्णा! तुम्हें पर्णा बनना पड़ेगा, तभी मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ।"

रुकू ने हँसकर कुछ विरोध किया। उसके अनभ्यस्त अंग में वे चुभने लगे थे। अन्त में वह सुन्दरम् के आग्रह पर विवश हो गई।

फिर सुन्दरम् ने भी उसकी मनमानी मान ली। वह हाथ पकड़कर उसे गुरुदेव के पास ले गई और सुन्दरम् को वहाँ उनके पास खड़ा कर हँसने लगी।

गुरुदेव बोले, "यह किस जानवर को पकड़ लाई?"

"गुरुदेव, इसने मेरी जान बचाई है, अगर आज यह न होता तो मैं जरूर सुलक के तीर पर अपनी साँसें समाप्त कर देती। यह देखिए, इस अस्त्र से मारा है इसने सुलक को। लेकिन मैं इसे चलाने की बार-बार कोशिश कर रही हूँ, पर यह नहीं चल रहा है।"

"सुलक को मार भी दिया इसने? तब तो हक इसी का है।

लेकिन उस विचारे का क्या होगा ?

'किसका ?'—रुकू ने पूछा।

"उस गरीब का जो परसों अपने दिल की बीमारी की दवा ढूँढ़ने आया था यहाँ।" हँसकर गुरुदेव बोले, "लेकिन कमर पर यह क्या पहन आई हो तुम ? यहाँ से जाने का विचार है क्या ? कुल्लूटक बिचारे का क्या होगा ?"

"मैं यहीं रहूँगी।"—रुकू ने स्वामी जी को आश्वासन दिया।

"और यह ? इससे तो पूछो।"

"आप ही पूछ दीजिए, यह मेरी भाषा नहीं समझता।"

कुल्लूटक ने पूछा, "क्यों जी, कौन हो तुम ?"

सुन्दरम् ने आवाज बदलकर कहा, "महाराज, मैं आपका सेवक हूँ, मुझे क्षमा कीजिए।"

"तूने तो इनाम पाने का काम किया है, क्षमा किस अपराध की ?" —गुरुदेव ने रुकू से पूछा, "नहीं बताती फिर ? उसका क्या होगा ?"

"कुछ नहीं और होगा क्या ?"

"वह फिर मेरे पास आया तो क्या होगा ?"

"वह नहीं आवेगा।"—रुकू ने सुन्दरम् की दाढ़ी खींचकर अलग फेंक दी। सुन्दरम् कुल्लूटक के चरणों पर गिर गया। उसने पोटली खोलकर फल उनके निकट रख दिये।

"बड़े ठग होते हैं ये अपने को सभ्य कहनेवाले। रुकू, तूने कमर पर ये पत्ते पहन तो लिये हैं, समझ ले कि फिर कहीं पछताना न पड़े।"

"नहीं गुरुदेव, पछताना न पड़ेगा।"

"लेकिन जैसा मैं तुझ से कह चुका हूँ, तुम एक-दूसरे के लिए गूँगे होकर ही रहोगे जन्म-भर।"

"मुझे यह स्वीकार है।"

"धन्य है, प्रेम क्या किसी भाषा का मोहताज है। वह प्राणों की मूक भाषा है। यह प्रकट भाषा तो उसका पाखंड है। अच्छी बात है।

इधर आ।"

रुकू और सुन्दरम् के हाथ मिलाकर गुरुदेव ने कहा, "मन्त्री, क्या नाम है तेरा?"

"सुन्दरम्!"

"इसका नाम रुकू है। तू इसे पर्वत की कन्या न समझना। यह भी उसी रानी की लड़की है, जो मुझ से जन्म का वैर साध रही है।" गुरुदेव ने एक ठंडी साँस लेकर आकाश की ओर देखा, "बादल उठ रहे हैं आज फिर न जाने क्या होगा? मन्त्री क्या होगा? बहुत दिन से कोई हवाई जहाज नहीं आया।"

"लड़ाई भारत में भी जाग गई है।"

"हाँ, सुन रहा है तू, यह वासंथी की जुड़वाँ बहन है। मैं राजा के पिता का भी गुरु था। मैंने गणना करके कह दिया था—इन दोनों बहनों के ग्रह भयानक हैं। एक पिता के लिए और एक माता के लिए अनिष्ट-कारिणी है। एक लड़की राजा ने मुझे दे दी, दूसरी वहीं रह गई। उसका विवाह होते ही माता पर संकट टूट पड़ेगा। आज मैं इस कन्या को तुझे सौंपकर अपने कर्तव्य को समाप्त करता हूँ। जा, तू इसे लेकर चला जा। यह गूँगी है। मैंने तेरा प्यार देखा है। इसके गूँगेपन से तुम्हारे प्यार में कोई कलह न पड़ेगी। इससे इसे कोई अवगुण न समझना। बस यहाँ का विवाह हो चुका। अब राजधानी में पहुँचकर जो तेरी इच्छा हो…"

सुन्दरम् ने विह्वल होकर गुरुदेव के पैर पकड़ लिये और रुकू जोर-जोर से रोने लगी।

गुरुदेव बोले, "जाओ, अब तुम देर न करो। सुलक के कुछ साथियों को उसकी लाश मिल गई तो वे सब यहाँ आकर बलवा मचा देंगे। मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता, मुझे डर तुम्हारा ही है। इसलिए जाओ अब जरा भी देर न करो।"

गुरुदेव उन दोनों को उठाकर ले चले और बहुत दूर तक पहुँचा

आए। विदा होते समय उन्होंने उन दोनों के सिर पर हाथ रखकर कहा, "मैं तुम दोनों को आशीर्वाद देता हूँ—सुखी और सम्पन्न होओ।"

दोनों उन्हें प्रणाम कर चले। सुन्दरम् ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "तू बड़ी दुष्टा है, तुझे मेरे छद्मवेश का रहस्य कैसे ज्ञात हो गया?"

रुकू हँस पड़ी। वह नदी का कूल समीप था जहाँ पर सुन्दरम् ने अपना हुलिया बदला था। रुकू ने उस स्थान को दिखाकर ऊपर एक पहाड़ की चोटी पर उँगली उठाई।

सुन्दरम् समझ गया। वे दोनों वहाँ जाकर कुछ क्षण रुके। सुन्दरम् ने अपने कपड़े पहन लिये और वह फलों वाली चादर उसके कन्धे पर ओढ़ा दी।

दोनों राजधानी की ओर जाने लगे। वे दो-ही-चार क़दम आगे बढ़े होंगे कि जापानी कैम्प से एक हवाई जहाज़ उठकर पहाड़ों की परिक्रमा करने लगा। रुकू उस जहाज़ को देखकर न जाने क्या कहने लगी, सुन्दरम् नहीं समझ सका।

कुछ देर बाद पहाड़ पर ज़ोर का धड़ाका हुआ। धुएँ और मिट्टी-पत्थर का पर्वताकार अंधड़ आकाश में उठकर नीचे को बैठने लगा।

सुन्दरम् चिल्लाया, "हवाई जहाज़ ने यह बम गिरा दिया। शायद गुरुदेव की गुफा में। गुरुदेव समाप्त हो गये!"

रुकू बोली, "शायद गुरुदेव चल दिये, वे आज यही कह रहे थे।"

दोनों ने एक ही मतलब की बात कही लेकिन दोनों एक-दूसरे को न समझ सके। रुकू आश्रम की ओर जाने लगी, वह विह्वल हो उठी।

"उधर क्या मरने को जाओगी फिर? मैं बचाकर लाया हूँ तुम्हें। सुन्दरी, क्यों जीना नहीं चाहती हो?"—सुन्दरम् उसे खींचकर राजधानी को ले जाने लगा।

रुकू ने अपना हाथ छुड़ा लिया और धीरे-धीरे सुन्दरम् के साथ चलने लगी।

२७

गूँगी दीदी

उस दिन जब वासंथी ने माता को कर्नल हिंकू से अधिक मेल-जोल बढ़ा लेने पर असन्तुष्ट पाया तो वह उसे मनाने को गई। वह बोली, "महारानी जी, अगर आप चाहती हैं तो मैं नहीं जाऊँगी कर्नल हिंकू के पास। मेरे साथ के लिए आप सुन्दरम्-जैसे बीमार को ही ठीक समझती हैं तो वही सही।"

"नहीं।"

"फिर एक कमरे में मुझे बन्द कर दीजिये। ठाकुरघर में जैसे आप माला लेकर जप किया करती हैं ऐसे ही मैं भी सही।"

"नहीं, अभी से जोग-वैराग्य की अवस्था है क्या तेरी?"

"फिर मुझे मेरी कल्पना के साथ जाने दीजिये।"

महारानी बोली, "तेरी कल्पना ही तो मेरी समझ में नहीं आ रही है।"

"मैं कर्नल की शक्ति को जाकर देख आई हूँ। वे चाहें तो एक ही क्षण में तुम्हारे अपमान का बदला ले सकते हैं।"

"हाँ, भगवान् से कब से प्रार्थना कर रही हूँ, वे कुछ सुनते ही नहीं।"

"मेरी समझ में अब समय आ गया है। कर्नल इसीलिए तुम्हारे द्वीप में आये हैं। महाराज की कन्या का बदला लेना चाहिए।"

"कैसे लिया जा सकेगा वह?"

इसी समय आकाश में एक हवाई जहाज की घरघराहट सुनाई देने लगी। धीरे-धीरे वह जापानी कैंप की तरफ़ उतरने लगा। वासंथी

बोली, "ऐसे ही किसी हवाई जहाज से एक बम उसकी गुफा पर छोड़ दिया जायगा तो सब ठीक हो जायगा। वह जादूगर भी और उसकी आड़ से खेलने वाले वे जंगली लोग भी।"

"तुम ऐसा कर सकती हो ? लेकिन सुन्दरम् को बुलाओ, वह कहाँ है आज ? मैंने उसे नहीं देखा। उसकी राय लेनी ज़रूरी है।"

वासंथी बोली, "वे जापानी कैंप पर ही गये होंगे। सम्भव है, कर्नल ने उन्हें किसी ज़रूरी काम के लिए बुलाया हो। मैं वहीं उनसे पूछ लूँगी।" वह हिंकू के पास जाने के लिए बड़ी अधीर हो रही थी।

महारानी उसे न रोक सकी। वह एक अजीब तरह की मानसिक दुर्बलता पाकर ठाकुरघर के भीतर जाकर बन्द हो गई।

वासंथी कुछ संकोच के साथ हिंकू के पास जा पहुँची। आने को तो आ गई वह लेकिन अब कर्नल को क्या कहकर अपना मर्म समझावे। कर्नल ने उसे देखकर कहा, "क्यों वासंथी, आज तुम अकेली ही आई हो ?"

वासंथी कुछ नहीं समझी, सुन्दरम् का अभाव खटका उसे। क्या कहती ? चुप रह गई। फिर उसे कुछ स्मरण हुआ। उसने उस आये हुए हवाई जहाज़ की तरफ संकेत किया।

हिंकू ने भी उससे संकेत में पूछा, "क्या उसमें चढ़कर सैर करना चाहती हो ?"

वासंथी ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा और बारूद-घर में जाकर उसने एक बम को भी साथ ले जाने का इशारा किया। कर्नल ने राज-वंश के तथाकथित उस शत्रु के बारे में सुना था। वह समझ गया उसका मतलब।

दो सिपाहियों ने सावधानी से वह बम हवाई जहाज़ पर रख दिया। चालक, उसके सहकारी और एक बम चलाने वाले को हवाई जहाज़ में जाने की आज्ञा दी हिंकू ने। फिर वह वासंथी को लेकर उसमें चढ़ गया।

इधर इशारों में बातें करते हुए एक बहन जा रही थी कुल्लूटक स्वामी की गुफा की तरफ और इसी प्रकार इशारों में बातें करती हुई एक दूसरी बहन आ रही थी उस आश्रम से राजधानी की ओर !

धीरे-धीरे हवाई जहाज़ आकाश में उड़ चला। जीवन का एक नवीन अनुभव प्राप्त हुआ वासंथी को। वह डरने वाली लड़की नहीं थी। फिर आज वह पिता की हत्या का बदला लेने जा रही थी।

हिंकू ने इशारों में उससे पूछा, "कहाँ ?"

वासंथी ने देखा नीचे—पैर के नीचे। उसने द्वीप के पहाड़ी भाग को पहचाना। उसने कुल्लूटक की गुफा पर संकेत कर दिया। जहाज़ उस स्थान पर बहुत ऊँचा चढ़ गया। हिंकू ने बम फेंक दिये जाने की आज्ञा दी।

"वासंथी ने मुँह ढक लिया। उसने कानों में उँगली दे दी। भयानक धड़ाके से बम फटा। गर्द-गुब्बार के बादलों से सारा गिरि-प्रान्त ढक गया। वासंथी ने एक धैर्य की साँस ली। उसे विश्वास हो गया, आज अब महारानी को शान्ति पहुँचेगी। उसके जन्म का बैरी समाप्त हो गया।

हिंकू ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "आइ लव यू !"

वासंथी को उस रात की घटना याद आ गई और उसने भी कुछ लज्जा के साथ कहा, "आइ लव यू !"

फिर हिंकू ने कहा, "वासंथी, यह प्रेम ही है दो हृदयों के बीच में जो बेतार का काम करता है, भाषा कोई चीज़ नहीं। तुम्हारा मतलब मैं बिना बोली के ही समझ गया। कदाचित् तुम्हारा शत्रु अब धरती पर साँस न लेता होगा।

वासंथी ने देखा, नीचे धरती पर धूल बैठ गई थी और कुल्लूटक स्वामी के आश्रम की जो पहचान थी, उसकी शिलाएँ, वृक्ष और झाड़ियाँ सब-की-सब निःशेष हो गई थीं या उनमें व्यतिक्रम पैदा हो गया था।

वासंथी के हर्ष की सीमा न रही। उसने सोचा, "अब प्रतिहिंसा पूर्ण हो गई, अब महारानी को उसके प्रति कोई शिकायत न रहेगी।"

कर्नल ने उसके कंधे पर हाथ रखकर संकेत किया, "अब क्या…?"

वासंथी ने वैसे ही प्रत्युत्तर में इशारा किया, "अब उतर चलो।"

× × ×

सुन्दरम् जब कमर में पत्ते लपेटे उस अर्द्धनग्न रुकू को लेकर राजभवन को लौट रहा था, तो सब लोग इस अचरज में पड़ गये—वासंथी ने आज यह कैसा रूप रख लिया।

रुकू विस्मय-विस्फारित नेत्रों से सुन्दरम् के साथ धीरे-धीरे सभ्य जगत में प्रवेश करने लगी, सब से पहले उसने कुछ खेत देखे। उनके रूप और आकार को देखकर उसे आश्चर्य हुआ, फिर उसने अपनी ही तरह कमर में पत्ते लपेटे स्त्री-पुरुषों को देखा। उसकी तरह-तरह की भावनाएँ जागकर उसी के भीतर विलीन होने लगीं। वह सुन्दरम् से कुछ पूछे भी तो क्या और फिर सुन्दरम् उसे कुछ समझावे भी तो कैसे?

उसके कंधे पर हाथ रखकर वह उसे ले जा रहा था राजभवन की दिशा में। अभी क्या देखा उसने अभी तो आधी सभ्यता की सीमा में थी वह। पहाड़ों की वह नीची-ऊँची भूमि छूट गई थी रुकू अब समतल धरती की एकतानता में थकने लगी। दोनों आगे चलकर एक पेड़ के पास बैठ गये।

एक किसान और उसकी स्त्री में उन्हें जाते देखकर बहस छिड़ गई। किसान बोला, "नहीं, वासंथी नहीं है। राजकुमारी के पहनने के लिए क्या वस्त्रों का अभाव है, जो हमारे-तुम्हारे कपड़े पहने?"

उसकी स्त्री ने कहा, "वही है, तुम चलकर देख आओ। मैंने अच्छी तरह पहचान लिया है उन्हें।"

"ये दोनों ऐसे जा रहे हैं जैसे पति-पत्नी। तुझे नहीं मालूम है, राजकुमारी का विवाह जापानी अफ़सर से होने वाला है।"

"जाकर देख आओ न।"

"मैं क्यों जाऊँ ? तुझे शक है, तू जा।"

"लेकिन खाली हाथ कैसे जाऊँ ?"—किसान की स्त्री ने एक बर्तन में दही जमा रखा था, वह उसे लेकर उन दोनों के पास जाने लगी। फिर कुछ सोचती, फिर कुछ संकोच करती।

उसका पति बोला, "जल्दी क्यों नहीं करती, फिर ये दोनों उठकर चल देंगे।"

किसान की स्त्री ने उनके पास जाकर अपनी भेंट उनके सामने रख दी। सुन्दरम् बोला, "तुम्हें धन्य है, तुमने हमारी आवश्यकता को समझ लिया। ये थक गई हैं, आज गरम भी काफी है। यह दही इन्हें बड़ी शान्ति देगा।"

किसान की स्त्री ने पास के पेड़ों से कुछ पत्ते तोड़कर दो दोने बना लिये और उनको दही से भरकर उन दोनों के सामने रक्खा। रुकू की कुछ समझ में नहीं आया वह क्या करे। सुन्दरम् ने दही उठाकर खाना शुरू किया और रुकू को मार्ग दिखा दिया।

रुकू ने भी खाना आरम्भ किया। जीवन में आज पहले-पहल ही उसने अग्नि के संसर्ग की चीज खाई। वह उसे अत्यन्त स्वादिष्ट जान पड़ी, अतः खाती ही गई। किसान की स्त्री बोली—"और ले आऊँ ?"

रुकू केवल हँसने लगी। किसान की स्त्री ने हाथ जोड़कर उससे कहा, "राजकुमारी, मैं धन्य हुई हूँ। तुमने मेरा आतिथ्य स्वीकार किया।" वह घर पानी लेने गई।

उसका पति बोला, "क्यों, देख आई ?"

"हाँ, राजकुमारी ही है, पत्ते पहनने से कुछ ग्रामीण-सी लग रही है। तुम जाकर देख क्यों नहीं आते ?"—वह जब उनके हाथ-मुँह धुलाने को पानी लेकर गई तो उसका पति भी साथ हो लिया।

वह भी देखकर ठिठका-सा रह गया। कुछ पूछने की हिम्मत दोनों में से किसी को भी न हुई। दोनों उठकर जाने लगे। सुन्दरम् बोला, "हमारे विवाह के शुभ अवसर पर तुमने हमारे लिए जो शकुन किया है,

इससे मेरा मन आप-ही-आप प्रसन्नता से भर उठा है। लो, यह तुम्हारी भेंट है।"—सुन्दरम् ने अपनी उँगली से एक अँगूठी निकालकर किसान की स्त्री को दे दी।

धीरे-धीरे वे राजभवन के कुछ और निकट पहुँचे। राज्य-कर्मचारियों की स्त्रियों ने रुक को घेर लिया। सुन्दरम् उसे वहीं छोड़ उसके उचित स्वागत के लिए रानी और वासंथी को वह शुभ समाचार देने गया।

एक स्त्री ने रुकू का हाथ पकड़कर कहा, "क्यों वासंथी, आज तुमने यह कैसा रूप बनाया है?"

वासंथी की अनुरूपता रखनेवाली के पास वासंथी की भाषा कहाँ थी? वह उन राजधानी की नारियों की वेशभूषा को देखकर अपने ही विचारों में उलझ गई थी। वह बिल्कुल नंगी रहनेवाली सोचने लगी—'ये इतने कपड़ों का भार कैसे सहन कर रही है।'

दूसरी स्त्री बोली, "क्यों राजकुमारी जी आज मौनी हो?"

रुकू क्या कहती, कुछ मुस्कान से उत्तर दिया।

तीसरी स्त्री ने पूछा, "कहाँ गई थीं?"

फिर उसके कोई जवाब न देने पर एक कहने लगी, "स्वामी जी के आश्रम से आ रही हो क्या?"

रुकू उन नागरिकों के बीच में अपने को बड़ी दीन और असहाय-सी देखने लगी। वह इधर-उधर सुन्दरम् को ढूँढ़ने का प्रयास करने लगी। फिर एक स्त्री बोली, "राजकुमारी को क्या हो गया आज?"

उन लोगों के वाद-विवाद से तंग आकर रुकू के मुख से एक आवाज़ निकल पड़ी। उसकी उस अजीब भाषा को सुनकर सब-की-सब खिलखिला उठीं।

उधर सुन्दरम् अन्तःपुर में गया। वासंथी का पता नहीं था। उसने दासियों से पूछा, "राजकुमारी कहाँ है?"

एक ने जवाब दिया, "वे पालकी पर चढ़कर कहीं गई हैं।"

"किस तरफ़?"

"जापानियों के कैम्प की तरफ़।"

"महारानी जी कहाँ हैं ?"

"ठाकुरघर में द्वार बन्द करके पूजा कर रही हैं।"

सुन्दरम् फिर संकोच में पड़ गया, "महारानी जी को यह समाचार दूँ या नहीं ? मालूम नहीं, मेरे इस विवाह को वे किस दृष्टि से देखें ?" उसे बाहर रुकू की आवाज़ आई, वह बाहर को चल दिया।

बाहर स्त्रियों का कौतूहल तब मिटा जब उन्होंने दूर से वासंथी को आते हुए देखा। एक बोली, "वासंथी तो वह आ रही है।"

वासंथी अपनी ही विजय के गर्व में फूली न समाई थी। वह सीधे राजभवन में अपनी माता के पास चली गई। मार्ग में सीढ़ियों पर उसे सुन्दरम् मिला। उसने उसकी भी कोई चिन्ता नहीं की। वह सीधी माता के पास चली गई।

"महारानी जी ! महारानी जी ! द्वार खोलिए। क्या कर रही हैं आप ? मैं आज आपकी इच्छा पूरी कर आई।"

"मेरी क्या इच्छा पूरी की होगी तुमने। हो गया उस जापानी से तुम्हारा विवाह ?"

"द्वार तो खोलिए, मैं आपके लिए बहुत बड़ी ख़ुशख़बरी लाई हूँ।"

महारानी ने द्वार खोलकर पूछा, "क्या है ?"

"महारानी जी, मैंने पिता के ख़ून का बदला ले लिया।"

"बता तो सही।"

"मैंने उस लम्पट अघोरी को उसकी गुफा के साथ ही समाप्त कर दिया !"

"यह क्या कर दिया तुमने ? उसका जादू चुप रह गया क्या ?"

"हाँ, कर्नल ने हवाई जहाज़ पर से बम बरसा दिया उसकी गुफा पर। बस फिर उसके टुकड़े-टुकड़े उड़ गये।"

"हाय ! यह क्या करा दिया तुमने ? मेरी राजकुमारी ?"

सुन्दरम् अपने साथ रुकू को लेकर वहाँ आ पहुँचा, "महारानी जी,

हम दोनों आपको प्रणाम करते है ? मै राजकुमारी को ले आया हूँ '

महारानी रुकू को देखत ही बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ी

वासंथी ने इधर-उधर देखा, । वह निश्चय न कर सकी माता को भूमि पर से उठावे या अपनी दीदी को गले से लगावे। सुन्दरम् महारानी को उठाकर उनके पंखा करने लगा और उसने दासियों से गुलाबजल लाने को कहा।

वासंथी ने रुकू को देखा—बिल्कुल उसके अनुरूप ! उसकी समझ ही में बात नहीं आई, वह दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख रही है या कोई उसके सामने खड़ी है। उसने रुकू की दोनों बाहें पकड़कर हिलाई, "दीदी ! दीदी ! भगवान् का बड़ा धन्यवाद है, तुम आ गईं।" उसकी दोनों आँखें साश्रु हो गईं।

उसकी देखा-देखी रुकू के भी आँसू डबडबा उठे, महारानी की भी चेतना जागी।

आँगन में बहुत-से लोग यह कौतुक देखने के लिए जमा हो गये थे। सुन्दरम् ने आकर कहा, "इस समय महारानी जी की तबीयत खराब है, आप लोग फिर आइए।"

महारानी की चेतना जागी लेकिन उनकी अस्तव्यस्त बातों से बीच-बीच में जान पड़ा उन्हें भारी विक्षेप पहुँच गया है। उन्होंने रुकू को गले लगाकर कहा, "बेटी, तेरा क्या नाम है ?"

सुन्दरम् ने जवाब दिया, "पर्णा।"

वासंथी बोली, "नहीं मैं इनको पर्णा नहीं रहने दूँगी।"—वह रुकू को अपने कमरे में ले गई और थोड़ी ही देर में उसे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषणों में सजाकर ले आई बिल्कुल अपने ही अनुरूप।

अब तो उन दोनों को पहचानने में बड़ी कठिनता पैदा हो गई। महारानी बोली, "कैसी समस्या खड़ी करके रख दी तुमने ! अब मैं कैसे तुम दोनों को पहचानूँगी वासंथी ?"

वासंथी चुप रह गई। उसने जान-बूझकर महारानी का विस्मय

बढ़ाने के लिए मौन धारण कर लिया। महारानी ने कहा, "सुन्दरम् वासंथी कौन है ?"

"महारानी जी, मैं भी ठीक-ठीक नहीं पहचान सकता।"

"तब तुमने इसे यहाँ लाकर एक और पहेली मेरे लिए बनाकर रख दी न ? एक को जरूर कम कर देना पड़ेगा वासंथी !"

वासंथी फिर भी चुप रही।

"अच्छा अगर तू नहीं बोलती तो मैं तेरी दीदी की शादी कर देती हूँ उस जापानी के साथ।"

वासंथी बोल उठी, "महारानी जी, हमारा विवाह हो चुका है।"

"कब ?"

"आज ही, हवाई जहाज पर हो गया। पिता के शत्रुओं को भस्म करने के लिए जो अग्नि उत्पन्न की उसी को साक्षी से किया मैंने।"

महारानी ने रोष में आकर उसकी ओर पीठ कर ली, "सुन्दरम्, मैं तुम्हारे साथ इसका विवाह करूँगी। बेटी, तूने अपना नाम नहीं बताया ?"

सुन्दरम् ने कहा, "इसका नाम रुकू है।"

"यह बोलती क्यों नहीं ?"

"यह गूँगी है।"

"गूँगी क्यों हो गई ?"

"जंगलियों की बोली जानती तो है, लेकिन जब वह हमारे लिए अबूझ है, तो फिर इसे गूँगी क्यों न कहें ?"

"सुन्दरम्, तुमने वासंथी को अंग्रेजी सिखाकर हमारे हाथ से निकल जाने में सहायता दे दी, रुकू को अपनी भाषा सिखाकर हमारी न बना लोगे ? अगर तुम ऐसा कर लेने का वचन दो तो मैं इसका विवाह तुम्हारे साथ कर दूँ और जो तुम्हारे भयानक दिल की बीमारी है, उसको भूल जाऊँ।"

"महारानी जी, मेरी बीमारी अब अच्छी हो गई है, और मैंने भी

रुकू के साथ विवाह कर लिया है।"

"किसने कर दिया इसका विवाह ?"

"स्वामी जी ने किया।"

"दो लड़कियाँ ! दोनों लूट ली गईं मुझ से बिना विवाह किए ही। मुझे खुशी मनाने का कोई अवसर ही नहीं दिया गया। क्यों ?"

सुन्दरम् बोला, "आप जब चाहें तब खुशी मना सकती हैं।"

शीघ्र ही शुभ दिन ढूँढ़कर वासंथी और रुकू का विवाह स्थिर किया गया। उस दिन द्वीप में हर्ष और गीतों की ध्वनि जाग उठी। महारानी अपनी दोनों राजकुमारियों को उनके योग्य वरों के हाथों में सौंपकर निश्चिन्त हो गईं। एक गूँगी को कर्नल हिंकू ले गया अपने कैम्प में और दूसरी वहीं राजभवन में रह गई।

उस दिन रात को सुन्दरम् ने रेडियो में सुना, "सिंगापुर, सुमात्रा और मनीला में हवाई हमलों से जापानियों की बड़ी भारी क्षति हुई है। उनके सैकड़ों हवाई जहाज़ नष्ट कर दिये गये।"

उसने जब यह समाचार महारानी को सुनाया तो वे बोलीं, "सुन्दरम्, मैंने तुम से पहले ही कह दिया था। हिन्दुस्तान में भी इनकी सेना हारकर लौट आई थी बहुत पहले ही और जापान में इनका मन्त्रिमण्डल एक बार संकट में पड़ चुका है। अब क्या होगा ? लड़की जा ही चुकी है, अब यह द्वीप भी चला जायगा।"

"चला जायगा, चला जायगा—चला जायगा !"—बड़ी अजीब तरह से रानी अपने कक्ष में नाच करने लगी।

सुन्दरम् उसे समझाने की चेष्टा करने लगा। लेकिन उसकी विक्षिप्तता बढ़ती ही रही। सुन्दरम् ने कक्ष के द्वार बन्द कर दिये जिससे कि वह बात बाहर प्रजा में न फैल जाय।

२८

पहला एटम बम !

लेकिन रानी की विक्षिप्तता बढ़ती ही गई। उसके भीतर मातृत्व को बड़ी भारी चोट पहुँच गई थी। जिस लड़की के साथ वह अपने हृदय के सुख-दुख का आदान-प्रदान कर सकती थी, वह हिंकू से ब्याह दी गई थी। वह उसे बहुत कम राजभवन में जाने देता था। उनके विवाह को हुए एक साल पूरा हो गया था।

इस बीच विश्व-युद्ध की बड़ी-बड़ी फैसला कर देने वाली घटनाएँ हो गईं। उसने अजीब मोड़ ले लिया। पूर्वी द्वीपों में जापान की बड़ी भारी हार हो गई। उसके मन्त्रिमण्डल में फिर संकट उत्पन्न हो गया। मुसोलिनी का वध कर दिया गया और हिटलर ने लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिये। टोकियो बार-बार हवाई हमलों से त्रस्त कर दिया गया। लाखों मनुष्य मारे गये, घायल हो गये और बेघर मारे-मारे फिरने लगे। जापान के और भी दर्जनों नगरों की यही दशा कर दी गई। अमेरिका और ब्रिटेन के हज़ारों बमवर्षक जहाज़ जापान के ऊपर उड़ने लगे।

दिन-दिन इन समाचारों से कर्नल हिंकू के प्राण सूखने लगे। उसके हेड आफ़िस का संसर्ग कभी का टूट चुका था। वह एक तरह से पागल-सा हो गया था। हर वक़्त उसको शत्रुओं के हमले के ही सपने दिखाई देने लगे थे।

उधर रानी का पागलपन बढ़ चला। वह राजभवन के बाहर भाग जाती। कपड़े फाड़कर नंगी हो जाती और बाल नोचने लगती, कभी-कभी दूसरों को भी नोचने लगती।

सुन्दरम् उसे पकड़-पकड़कर बन्द करता। वह कहती—'लाओ, मेरी

लड़की !' यही उसकी रट थी।

सुन्दरम् ने कई बार हिंकू से कुछ समय के लिए वासंथी को यहाँ भेज देने को कहा, लेकिन उसे मन में यही वहम बैठ गया कि उसका वासंथी पर पुराना प्रेम है और वह जरूर उसको उसकी बहन के साथ बदल लेगा। रुकू जिस प्रकार सुन्दरम् के लिए गूँगी थी, ऐसे ही वासंथी उसके लिए। उसके अंग्रेजी के पाठ जारी नहीं रक्खे जा सके थे।

"सुन्दरम, तुम कैसे मन्त्री हो ? वासंथी को नहीं ला सकते, विवाह दी है तो क्या इसका मतलब यह है वह कभी वापस आवेगी ही नहीं ?"

"महारानी जी, अन्तर्जातीय स्थिति बड़ी संकटापन्न हो उठी है। इसी से कर्नल वासंथी को यहाँ भेजने के लिए सम्मत नहीं हैं..."

"तो क्या वासंथी भी गोले-बारूद की चौकसी कर रही है या बेतार के तार पकड़ रही है। अगर कहीं बिजली लग गई तो !"

सुन्दरम् बड़ी कठिनाई में पड़ गया। उसे कुल्लूटक स्वामी की बात याद आई, इन दोनों कन्याओं के ग्रह माता-पिता के लिए बड़े उग्र हैं। लेकिन क्या किया जाता।

रानी बोली, "रुकू कहाँ है ?"

सुन्दरम् उसे ले आया। रानी बोली, "तुम ले तो आये इसे। यह मेरी बेटी है। इसका रूप-रंग सब इस बात की साक्षी है, लेकिन इसकी तरफ से हमारा यह सम्बन्ध मेरी ओर नहीं खुलता। बेटी !" रानी ने उसे छाती से लगाकर कहा।

लेकिन रुकू के मानस का कोई स्नेह का तार झंकृत न हुआ। वह वैसी ही पत्थर की प्रतिमा-सी खड़ी रह गई।

"सुन्दरम्, किसी प्रकार इसे समझाओ न मैं इसकी माता हूँ। इसके एक बार माँ कह देने पर फिर मैं वासंथी का कोई लालच न करूँगी।"

सुन्दरम् क्या समझाता ? वह दिन-रात रेडियो के समाचारों के

लिए व्यग्र रहता था। रानी को बन्द कर समाचार सुनने चला गया। इसी समय रानी किसी प्रकार द्वार खोलकर बाहर निकल गई और जापानियों के कैम्प की ओर जाने लगी वासंथी की खोज में।

उससे पहले वासंथी और हिंकू दोनों एक नाव में चढ़कर जल की राह राजभवन में आ गये थे। वासंथी तेजी से राजभवन की सीढ़ियां पर चढ़कर माता के कमरे में गई। वहाँ कोई न था। वह सुन्दरम् के पास आई, "महारानी कहाँ हैं ?" उसके मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

सुन्दरम् ने पूछा, "क्या खबर है ?"

"बहुत भयानक !"

"कहो भी तो।"

"हिंकू से पूछो, मैं उसकी भाषा नहीं समझती, केवल अन्दाज से कह रही हूँ। वे तुम्हें नीचे बुला रहे हैं। महारानी कहाँ हैं ? मैं उनसे मिलने आई थी।...सुन्दरम, पहले कर्नल के पास चलो और मुझे भी समझा दो बात क्या है ? तुमने मेरे अंग्रेजी के पाठ पूरे न कर मेरा जीवन कंटकाकीर्ण कर दिया।"

"मेरा कोई अपराध नहीं है।"—सुन्दरम् वासंथी के साथ भागता हुआ नीचे उतर गया। किसी भयानक समाचार का सामना करने के लिए उसका हृदय काँप रहा था।

कर्नल ने उसे देखते ही चिल्लाकर कहा, "सुन्दरम, विदा ! हम जा रहे हैं ?

"कहाँ को ?"

"अमेरिका ने हीरोशिमा पर एटम बम गिराकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। जापान ने हथियार डाल दिए हैं।"

सुन्दरम् बोला, "तब क्या होगा ?"

"और अब क्या होगा ? जापान पराजित तो हो चुका। अंग्रेजों की सेनाएँ यहाँ भी आती होंगी। बस, यही हमारी अन्तिम भेंट है। वासंथी को समझा दो।"

सुन्दरम् ने वासंथी को समझा दिया। वह रो पड़ी।

हिंकू बोला, "सुन्दरम्, इससे पूछो क्या यह मेरे साथ जाने को राजी है?"

सुन्दरम् के पूछने पर वासंथी बोली, "कहाँ जाना है?"

हिंकू ने जवाब दिया, "जहाँ से कोई नहीं लौटता।"

वासंथी उस उत्तर को सुनकर कहने लगी, "महारानी कहाँ हैं?"

"महारानी ऊपर नहीं हैं?"

"नहीं!" वासंथी रोती हुई इधर-उधर दौड़ने लगी।

"सुन्दरम्, पूछो, यह मेरे साथ चलने को राजी है?"

सुन्दरम् ने पूछा, "तुम कहाँ जा रहे हो?"

"तब क्या शत्रुओं के हाथ में बंदी बनूँगा? हिंकू हाराकारी करेगा। आत्मसम्मान खोने से पहले की वह मृत्यु! जापानी सिपाही के गौरव की वह चीज! पूछ दो वासंथी चलेगी?"

सुन्दरम् ने वासंथी को समझाया, वह बोली, "हाँ चलूँगी, लेकिन एक बार माता से भेंट करा दो।"

सुन्दरम् ने देखा, इधर-उधर महारानी का कहीं पता ही नहीं था। सेवकों ने कहा, "वह जापानी कैम्प की तरफ चली गई।"

हिंकू बोला, "वासंथी, चलो। अगर माता का प्रेम विवश करता है तो रहने दो।"—वह अकेला ही जाने लगा।

वासंथी ने दौड़कर उसके गले में दोनों हाथ डाल दिए, "आइ लव यू।"

सुन्दरम् ने रुकू को पुकारा। वासंथी उससे गले मिलकर हिंकू के साथ चल दी। वे दोनों भी उनको पहुँचाने समुद्र-तट तक गये। दोनों एक नाव में सवार हो गये।

हिंकू हँसते हुए बोला, "सुन्दरम् विदा! हम उन माइनों के जाल की ओर जा रहे हैं! हमें क्या मालूम था, हमने उन्हें अपने लिए ही बिछाया था।"

वासंथी बोली, "सुन्दरम् विदा ! हिंकू ने यह क्या कहा ?"

सुन्दरम् सोचने लगा। लेकिन हिंकू ने पतवार तेज़ी से चला दिए और नाव दक्षिण को चल पड़ी। वह कुछ न सुन सकी।

कुछ दूर जाने पर वासंथी चिल्लाई, "महारानी ! महारानी ! उस नाव में महारानी हैं !"

महारानी जापानी कैम्प के तट पर एक नाव पड़ी थी, उसमें सवार होकर समुद्र में चली गई थी।

हिंकू ने महारानी को पहचाना, उसने तेज़ी से पतवार चलाने आरम्भ किये। माइनों का जाल आ पहुँचा था। पहला धड़ाका रानी की नाव का हुआ। उसका एक-एक कण बिखर गया ! दूसरा धड़ाका हुआ वासंथी और कर्नल हिंकू की नाव का।

सुन्दरम् ने निराश होकर उस गूँगी की तरफ़ देखा। गूँगी हँसकर कुछ कहने लगी और उसने आकाश की तरफ़ दृष्टि की। सुन्दरम् ने देखा—कई हवाई जहाज़ देखते-देखते द्वीप के ऊपर छा गये।

सुन्दरम् ने कहा, "रुकू, अब हम नहीं बच सकते। ये मित्रराष्ट्रों के जहाज़ हैं। अब ये ज़रूर हमें बंदी बना ले जावेंगे, क्योंकि हमने इनके शत्रुओं को शरण दी।"

रुकू कुछ न समझी और फिर हँसने लगी।

एक नाव किनारे पर पड़ी थी। सुन्दरम् उसमें रुकू को लेकर बैठने लगा। द्वीप के राजकर्मचारी और मछुए-मज़दूर आकर चिल्लाने लगे, "मन्त्री जी, हमें असहाय छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"ऊपर देखो, ये हवाई जहाज़। ये मुझे जीता न छोड़ेंगे।"

"आपका क्या अपराध है ? आपने जापानियों को बुलाया थोड़े था।"

"मैं उन्हें मना भी तो न कर सका।"

जनता बोली, "नहीं, ये जहाज़ चले गये, अब कोई डर नहीं। हम मुश्किल में पड़ जावेंगे बिना राजा के।"

"राजा की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम सब मिलकर एका करो। यह जन-तन्त्र का युग है। अपने बीच में से कुछ लोगों को छाँटकर एक सभा बना लो। उसी के बहुमत से द्वीप का प्रबन्ध करो। मेरा समय, आ गया, मैं चला।"

प्रजा बोली, "आप कहाँ जा रहे हैं?"

"अपनी जन्म-भूमि को।"

"आगे ख़तरा है।"

"माइनें साफ़ हो गई होंगी।"

"इस छोटी-सी नाव में?"

"साहस बड़ा चाहिए।"